भगवान् शिव
और
उनकी आराधना



LORD SIVA AND HIS WORSHIP का हिन्दी भाषान्तर

लेखक

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

8-2 Geand

भगवान् शिव और उनकी आराधना

भगवान् शिव

और

उनकी आराधना

LORD SIVA AND HIS WORSHIP का हिन्दी भाषान्तर

लेखक

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती



अनुवादिका

श्रीमती सुधा भारद्वाज

प्रकाशक

द डिवाइन लाइफ सोसायटी

पत्रालय : शिवानन्दनगर—249192

जिला : टिहरी-गढ़वाल, उत्तरांचल (हिमालय), भारत

मूल्य]　　　　2007　　　　[रु. 90/-

प्रथम हिन्दी संस्करण—२००७ ई.
[१,००० प्रतियाँ]

HS 1

'डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर' के लिए
स्वामी विमलानन्द द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग-वेदान्त फारेस्ट
एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगर, जि.टिहरी-गढ़वाल, उत्तरांचल, पिन
२४९ १९२' से प्रकाशित।



उमा, गौरी या पार्वती
के परम पति तथा
शाश्वत परमानन्द, ज्ञान एवं अमरत्व
के प्रदाता
भगवान् शिव
को
समर्पित



ॐ

दिव्य आत्मन्,

भगवान् शिव प्रेम स्वरूप हैं। उनकी कृपा नि:सीम है। वे मुक्तिदाता हैं, गुरु हैं। वे उमाकान्त हैं। वे सत्यम्, शिवम्, शुभम्, सुन्दरम, कान्तम् हैं। वे आप सबके हृदयों में दीप्त होने वाली परम ज्योति हैं।

उनके स्वरूप का ध्यान करें। उनकी लीलाओं का श्रवण करें। उनके मन्त्र 'ॐ नमः शिवाय' का जप करें। शिवपुराण का स्वाध्याय करें! उनकी प्रतिदिन आराधना करें। समस्त नाम रूपों में उनके दर्शन करें ! वे अपने दर्शन दे कर आपको कृतार्थ कर देंगे।

स्वामी शिवानन्द

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

८ सितम्बर, सन् १८८७ को विश्व-मंच पर प्रथम प्रभात देखा। परिवार के लोग उनको कुप्पुस्वामी कहते थे, जो कालान्तर में स्वामी शिवानन्द सरस्वती के नाम से दिग्विश्रुत हुए। जनता की आधिभौतिक चीत्कार ने उनको मलया बुलाया और वैदिक गीतों की सनातन-परम्परा ने उनको हिमालय की ओर प्रेरित किया। १० साल तक अकट तपश्चर्या कर, आत्म-संयम और आत्म-शुद्धि के वातावरण से अनवरत ध्यान में समाधिस्थ होते हुए उनको ज्ञानोज्ज्वल-प्रज्ञा की अनुभूति हुई।

अपना ज्ञान जनता को देने और निष्काम कर्म-प्रणाली के आधार पर समाज और राष्ट्रों की मानवता का निर्माण करने के लिए सन् १९३६ में उन्होंने 'द डिवाइन लाइफ सोसायटी' की स्थापना की और कालान्तर में सन् १९४८ में 'योग-वेदान्त फारेस्ट एकाडेमी' सदृश अद्वितीय संस्था को उद्यत होते देखा। आज वे ग्रन्थकार के नाते ३०० से अधिक गम्भीर ग्रन्थों के प्राणदाता हैं, जिनमें उनके जीवन की विशाल ज्ञान-ज्योति बिम्बित होती है और जो साधारण-से-साधारण मानव का भी पथ-प्रदर्शन करती है। अपने हृदय को मानव-समाज के विकास के लिए अक्षरों का स्वरूप दे कर वे विशाल विश्व के तीर्थयात्री को मार्ग तो दिखा ही रहे हैं, अन्धकार में नवीन प्रभात तो ला ही रहे हैं, साथ-साथ वे प्रत्येक सत्यशील परन्तु यातना-तप्त साधक के चिर-सहयात्री भी रहे हैं, जिनका शब्द उसे प्रोत्साहन और अभिप्रेरणा देता है, जिनकी कृपाकटाक्षवीक्षणलहरी उसको दिव्य बना देती है, स्वर्णमय कर देती है। आज तो वे विश्व के गुरुदेव हैं जिनकी ब्रह्माण्ड-व्यापिनी विजय-वैजयन्ती के नीचे सभी धर्म, सभी सम्प्रदाय, सभी वर्ण तथा सभी मनुष्य अपना-अपना आश्रय खोज रहे हैं और निःसन्देह भविष्य भी उनकी अवतार-कथा को घर-घर गायेगा। उन्होंने अपने दिग्विजयी व्यक्तित्व को परात्पर-जीवन में तन्मय कर दिया था। वे १४ जुलाई १९६३ को महासमाधि में लीन हुए।

विषय-सूची

अध्याय ३

अध्याय ४

अध्याय ५

अध्याय ६

अध्याय ७

अध्याय ८

अध्याय ९

अध्याय १०

अध्याय ११

अध्याय १२

अध्याय १३

अध्याय १४

अध्याय १५



भगवान् शिव और उनकी आराधना



अध्याय १

शिव मन्त्र तथा स्तोत्र

शिव मन्त्र

१. ॐ नमः शिवाय

ॐ सत्-चित्-आनन्द परब्रह्म है। '**नमः शिवाय**' का अर्थ है—भगवान् शिव को नमस्कार! यह भगवान् शिव का पाँच अक्षरों वाला पंचाक्षर मन्त्र है। यह अत्यन्त शक्तिशाली मन्त्र है और यह मन्त्र, जपने वाले को परमात्मा का परम आनन्द प्रदान करने वाला है।

२. ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥

हम उन यशस्वी परम पुरुष की अनुभूति करते हैं, और उन महान् देव—महादेव का ध्यान करते हैं; वे रुद्र हमें इसकी प्रेरणा दें। यह रुद्र गायत्री मन्त्र है।

३. ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥

मैं उन त्रिनेत्रधारी भगवान् शिव को नतमस्तक प्रणाम करता हूँ जो मधुर सुगन्ध से पूर्ण हैं, जो समस्त प्राणियों को पुष्टि प्रदान करने वाले हैं। वे मुझे मृत्यु से उसी प्रकार मुक्त करें जैसे ककड़ी का फल अपनी लता के बन्धन से सहजता से छूट जाता है। वे मुझे अमृतत्व प्रदान करें। यह महामृत्युंजय मन्त्र है।

शिव-पंचाक्षर-स्तोत्रम्

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय भस्मांगरागाय महेश्वराय।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय तस्मै नकाराय नमः शिवाय॥१॥

कण्ठ में सर्पों के हार वाले, तीन नेत्रों वाले, भस्म से अनुलेपित, दिशाओं के वस्त्र वाले (अर्थात् नग्न), उन शुद्ध अविनाशी महेश्वर 'न' कार स्वरूप शिव को नमस्कार है।

मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय नन्दीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय।

मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूजिताय तस्मै मकाराय नमः शिवाय॥२॥

मैं उन 'म' कार स्वरूप शिव को प्रणाम करता हूँ जो मन्दार तथा अन्यान्य ऐसे ही दिव्य पुष्पों से पूजित हैं, गंगाजल और चन्दन से जिनकी अर्चा हुई है, जो नन्दी के अधिपति और प्रमथ गणों के स्वामी हैं।

शिवाय गौरीवदनारविन्दसूर्याय दक्षाऽध्वरनाशकाय।

श्री नीलकण्ठाय वृषध्वजाय तस्मै शिकाराय नमः शिवाय॥३॥

'शि' कार स्वरूप नीलकण्ठ भगवान् शिव को, दक्ष के यज्ञ को नष्ट करने वाले तथा गौरी के मुख-कमल को विकसित करने वाले सूर्य स्वरूप को, ध्वजा में बैल का चिह्न धारण करने वाले शोभाशाली भगवान् को हमारा नमस्कार है।

वसिष्ठकुम्भोद्भवगौतमार्यमुनीन्द्रदेवाऽर्चितशेखराय।

चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय तस्मै वकाराय नमः शिवाय॥४॥

वसिष्ठ, अगस्त्य तथा गौतम आदि श्रेष्ठ मुनियों ने तथा इन्द्र आदि देवताओं ने सदैव जिनकी पूजा की है, चन्द्रमा, सूर्य व अग्नि जिनके तीन नेत्र हैं, उन 'व' कार स्वरूप, देवों के देव, महादेव को नमस्कार है।

यक्षस्वरूपाय जटाधराय पिनाकहस्ताय सनातनाय।

दिव्याय देवाय दिगम्बराय तस्मै यकाराय नमः शिवाय॥५॥

उन दिव्य सनातन पुरुष, उन दिगम्बर देव 'य' कार स्वरूप शिव को नमस्कार है जिन्होंने यक्ष रूप धारण किया है, जो जटाधारी हैं और जिनके हाथ में पिनाक है।

पंचाक्षरमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ।

शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते॥६॥

जो शिव के सम्मुख इस पवित्र पंचाक्षर का पठन करता है, वह परम शिवधाम को प्राप्त करता है और वहाँ शिव के साथ परमानन्द को भोगता है।

शिव-षडाक्षर-स्तोत्रम्

ॐकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।

कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः॥१॥

हम सदैव उस बिन्दु युक्त 'ॐ' कार को प्रणाम करते हैं, जिसका योगी निरन्तर ध्यान करते हैं और जो समस्त कामनाओं तथा परम मोक्ष को देने वाला है।

नमन्ति ऋषयो देवा नमन्त्यप्सरसां गणा:।
नरा नमन्ति देवेशं नकाराय नमो नम:॥२॥

मनुष्य और सन्त, देवता और अप्सराओं के समूह, उस 'न' कार स्वरूप परमात्मा को नमस्कार करते हैं। हमारा उन्हें बारम्बार नमस्कार है।

महादेवं महात्मानं महाध्यानं परायणम्।
महापापहरं देवं मकाराय नमो नम:॥३॥

'म' कार स्वरूप देदीप्यमान परमात्मा जो लोकातीत है, समस्त पापों का नाशक है, उपासना और ध्यान का श्रेष्ठतम लक्ष्य है—को हमारा बारम्बार प्रणाम है।

शिवं शान्तं जगन्नाथं लोकानुग्रहकारकम्।
शिवमेकपदं नित्यं शिकाराय नमो नम:॥४॥

वह सर्वकल्याणकारी और सर्वशक्तिमान् विश्वनाथ 'शि' कार स्वरूप, जो जगत् को सुख-शान्ति प्रदान करने वाला है, जो एक शाश्वत शिव है, को हमारा बारम्बार प्रणाम है।

वाहनं वृषभो यस्य वासुकि: कण्ठभूषणम्।
वामे शक्तिधरं देवं वकाराय नमो नम:॥५॥

जो बायें हाथ में शक्ति धारण किये हुए है, बैल जिसका वाहन है, सर्पराज वासुकी जिसके कण्ठ का आभूषण है, उन 'व' कार स्वरूप शिव को हम बारम्बार नमस्कार करते हैं।

यत्र यत्र स्थितो देव: सर्वव्यापी महेश्वर:।
यो गुरु: सर्वदेवानां यकाराय नमो नम: ॥६॥

'य' कार स्वरूप उन सर्वव्यापक महेश्वर को, जो साकार भी हैं और निराकार भी, जो समस्त देवताओं के गुरु हैं और हमारे भी गुरु हैं, वे जहाँ-कहीं भी हों उन्हें हमारा बारम्बार प्रणाम है।

षडक्षरमिदं स्तोत्रं य: पठेच्छिवसन्निधौ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते॥७॥

जो इस षडक्षर स्तोत्र 'ॐ नमः शिवाय' का भगवान् शिव के सम्मुख पाठ करता है, वह परम शिवधाम में परम आनन्द को प्राप्त करता है।

लिंगाष्टकम्

ब्रह्ममुरारिसुरार्चित लिंगं निर्मलभाषितशोभित लिंगम्।
जन्मजदुःखविनाशकलिंगं तत्प्रणमामि सदाशिवलिंगम्।।१।।

मैं उन सदाशिव लिंग को प्रणाम करता हूँ जो ब्रह्मा, विष्णु तथा अन्य देवों द्वारा पूजित है, जो निर्मल और पवित्र वाणियों द्वारा प्रशंसित है तथा जो जन्म-मरण के बन्धन को काटने वाला है।

देवमुनि प्रवरार्चित लिंगं कामदहं करुणाकरलिंगम्।
रावणदर्पविनाशनलिंगं तत्प्रणमामि सदाशिवलिंगम्।।२।।

वह लिंग देवताओं और मुनियों द्वारा पूजित है। वह कामदेव को नष्ट करने वाला तथा असीम दया का सागर है। उसी ने रावण के अभिमान का विनाश किया। मैं उस सदाशिव लिंग को प्रणाम करता हूँ।

सर्वसुगन्धिसुलेपितलिंगं बुद्धिविवर्धनकारणलिंगम्।
सिद्धसुरासुरवन्दितलिंगं तत्प्रणमामि सदाशिवलिंगम्।।३।।

मैं उस सदाशिव लिंग को प्रणाम करता हूँ, जो सब प्रकार की सुगन्धियों से विलेपित है और जो बुद्धि की वृद्धि का कारण है तथा जो सिद्धों, देवों और असुरों द्वारा पूजित है।

कनकमहामणिभूषितलिंगं फणिपतिवेष्टितशोभितलिंगम्।
दक्षसुयज्ञविनाशनलिंगं तत्प्रणमामि सदाशिवलिंगम्।। ४।।

मैं उस सदाशिवलिंग को प्रणाम करता हूँ जिसने दक्ष के यज्ञ को विध्वंस किया, जो स्वर्ण तथा महामणि से विभूषित है और जो शेषनाग से वेष्टित हो कर शोभायमान हो रहा है।

कुंकुमचन्दनलेपितलिंगं पंकजहारसुशोभितलिंगम्।
संचितपापविनाशनलिंगं तत्प्रणमामि सदाशिवलिंगम्।।५।।

मैं उस सदाशिवलिंग को प्रणाम करता हूँ जो कुंकुम तथा चन्दन से लेपित है, जो कमल-पुष्पहार से सुशोभित है और वह समस्त संचित पापों को नष्ट करने वाला है।

देवगणार्चितसेवितलिंगं भावैर्भक्तिभिरेवचलिंगम्।
दिनकरकोटिप्रभाकरलिंगं तत्प्रणमामि सदाशिवलिंगम्॥६॥

मैं उस सदाशिवलिंग को नमस्कार करता हूँ जिसकी देवता और भूत गण पूजा व सेवा करते हैं, जो भावपूर्ण भक्ति द्वारा प्रसन्न होता है और जिसका करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाश है।

अष्टदलोपरिवेष्टितलिंगं सर्वसमुद्भवकारणलिंगम्।
अष्टदरिद्रविनाशितलिंगं तत्प्रणमामि सदाशिवलिंगम्॥७॥

मैं उस सदाशिवलिंग को प्रणाम करता हूँ जो आठ प्रकार की दरिद्रता को नष्ट करता है, जो सबकी उत्पत्ति का कारण है और अष्टदल कमल पर आसीन है।

सुरगुरुसुरवरपूजितलिंगं सुरवनपुष्पसदार्चितलिंगम्।
परात्परं परमात्मक लिंगं तत्प्रणमामि सदाशिवलिंगम्॥८॥

मैं उस सदाशिवलिंग को नमस्कार करता हूँ जो परात्पर तथा परमात्मा है, जो देवताओं के गुरु बृहस्पति तथा श्रेष्ठ देवताओं द्वारा देववनों से लाये गये पुष्पों द्वारा पूजित व अर्चित है।

लिंगाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेच्छिव सन्निधौ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सहमोदते॥९॥

जो भी शिवलिंग के सम्मुख भक्तिभाव से इस लिंगाष्टकम् का पाठ करता है, वह परमशिवधाम में कभी न समाप्त होने वाले परमानन्द व स्वर्ग-सुख को प्राप्त होता है।

अर्धनारि–नटेश्वर–स्तोत्रम्

चांपेयगौरार्धशरीरकायै कर्पूरगौरार्धशरीरकाय।
धम्मिल्लकायै च जटाधराय नमः शिवायै च नमः शिवाय॥१॥

जिनका आधा शरीर चमकते हुए स्वर्ण-सा चम्पई वर्ण का देदीप्यमान है तथा आधा शरीर कर्पूर गौरवर्ण का उद्भासित है, उस अलंकृत केशों वाली गौरी को तथा उन जटाधारी भगवान् शिव को हम प्रणाम करते हैं।

कस्तूरिकाकुंकुमचर्चितायै चितारजपुंजविचर्चिताय।
कृतस्मरायै विकृतस्मराय नमः शिवायै च नमः शिवाय॥२॥

कस्तूरि कुंकुम व चन्दन से जिसका शरीर विलेपित है उसके, तथा चिताग्नि भस्म से जिनका शरीर भस्मित है उनके, जो अपने सौन्दर्य से प्रेम प्रसारित करती है उसके, तथा जो काम के देवता को नष्ट करने वाले हैं—उस गौरी और उन भगवान् शिव को हम नमस्कार करते हैं।

चलत्क्वणत्कंकणनूपुरायै मिलत्फणाभास्वरनूपुराय।
हेमांगदायै भुजगांगदाय नमः शिवायै च नमः शिवाय।।३।।

जो क्वण-क्वण की सुन्दर मधुर ध्वनि युक्त नूपुरों से सुशोभित है उसे तथा जिनके चरणकमल सर्पों के नूपुरों से सुशोभित हैं उनको। उसको जिसने स्वर्ण कंगन धारण किये हुए हैं तथा उनको जिन्होंने सर्प के कंगन धारण किये हुए हैं—उस गौरी तथा उन भगवान् शिव को हम प्रणाम करते हैं।

विलोलनीलोत्पललोचनायै विकासिपंकेरुहलोचनाय।
समेक्षणायै विषमेक्षणाय नमः शिवायै च नमः शिवाय।।४।।

नीलकमल के समान जिसके विशाल नेत्र हैं, पूर्ण विकसित कमल के सदृश जिनके विस्तृत नेत्र हैं, समनेत्रों (दो नयन) वाली तथा विषम (तीन नयन) नेत्रों वाले गौरी और भगवान् शिव को हम नमस्कार करते हैं।

मन्दारमालाकलितालकायै कपालमालांकितकन्धराय।
दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय नमः शिवायै च नमः शिवाय।।५।।

जिसके केश मधुर सुगन्धि युक्त दिव्य पुष्पों से शोभित हैं तथा जिनका कण्ठ मुण्डमाल से शोभायमान है, जो अत्युत्तम दिव्य वस्त्राभूषणों से अलंकृत हैं तथा जिनकी अष्ट दिशाएँ ही वस्त्र हैं, उस गौरी तथा उन भगवान् शिव को हम नमस्कार करते हैं।

अम्भोधरश्यामलकुन्तलायै तडित्प्रभाताम्रजटाधराय।
गिरीश्वरायै निखिलेश्वराय नमः शिवायै च नमः शिवाय।।६।।

जिसके केश जलपूर्ण श्यामघन के सदृश हैं तथा जिनकी विद्युत् के समान जटाएँ हैं, जो हिमालय की परम भगवती देवी पार्वती हैं तथा जो समस्त विश्व के ईश्वर हैं, उन गौरी तथा भगवान् शिव को हमारा नमस्कार है।

प्रपंचसृष्ट्युन्मुखलास्यकायै समस्तसंहारकताण्डवाय।।
जगज्जनन्यै जगदेकपित्रे नमः शिवायै च नमः शिवाय।।७।।

जिसके नृत्य से संसार की रचना होती है तथा जिनके नृत्य से सम्पूर्ण विश्व का पूर्णतया संहार हो जाता है, उसे जो जगन्माता है तथा उन्हें जो विश्वपिता हैं, उन गौरी तथा शिव को हम नमस्कार करते हैं।

प्रदीप्तरत्नोज्ज्वलकुण्डलायै स्फुरन्महापन्नगभूषणाय।
शिवान्वितायै च शिवान्विताय नमः शिवायै च नमः शिवाय॥८॥

जिसके रत्नजटित कर्णकुण्डल हैं तथा जो सर्प आभूषण धारण किये हुए हैं, उसे जो सदा भगवान् शिव से संयुक्त हैं तथा उन्हें जो साम्ब सदाशिव हैं, उस गौरी और उन भगवान् शिव को हम बारम्बार प्रणाम करते हैं।

शिवकवचम्

ऋषभ ऋषि ने युवराज से कहा :

ॐ! उमापति भगवान् नीलकण्ठ, त्रिनेत्रधारी, सहस्र भुजाधारी शम्भू, जो अपने शक्तिशाली पराक्रम से शत्रुओं का विनाश कर देते हैं, उनको मेरा नमस्कार है।

अब मैं तुम्हारे हित के लिए सम्पूर्ण तपों के उस भेद को प्रकट करता हूँ, जिसे पा कर तुम समस्त पापों-तापों से छूट कर सदा सफलता को प्राप्त करोगे।

सर्वव्यापक प्रभु शिव की उपासना के पश्चात् अब मैं मानव मात्र के मंगल व कल्याण हेतु शिवकवच के गहन सत्य को प्रकट करता हूँ।

मनुष्य को एकान्त पवित्र स्थान पर शान्तावस्था में बैठ कर समस्त इन्द्रियों का निग्रह करके प्राणों को नियन्त्रित करके उन अविनाशी शिव पर ध्यान लगाना चाहिए। तब उन सर्वव्यापक इन्द्रियातीत को हृदय-कमल पर विराजमान करने के पश्चात् उन सूक्ष्म व अनन्त पर ध्यान लगाना चाहिए।

उसके निरन्तर ध्यान के द्वारा स्वयं को कर्म-बन्धन से मुक्त करके और हृदय को षडाक्षर 'ॐ नमः शिवाय' में निरन्तर लीन करते हुए परमानन्द में पूर्णतया विलीन हो कर स्वयं को शिवकवच द्वारा सुरक्षित कर लेना चाहिए।

वह परम दिव्य शक्ति मुझे संसार के अगाध अन्ध-कूप से उबार ले और उसका दिव्य नाम मेरे समस्त पापों को पूर्णतया नष्ट कर दे।

वह घट-घट वासी, परमानन्द स्वरूप ब्रह्म, जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म और सर्वशक्तिमान् हैं, मुझे सर्वत्र, समस्त भयों से मुक्ति प्रदान करें।

विश्व को धरती के रूप में धारण करने वाले शिव का अष्टगुणी रूप मेरी पार्थिव रोगों से रक्षा करे तथा जल रूप में जीवन दान देने वाले भगवान् शिव मेरे जल से भय को दूर करें।

कल्प के अन्त में संसार का संहार करके ताण्डव करने वाले कालरुद्र वडवाग्नि और वायु से मेरी रक्षा करें।

वह चतुर्मुखीत्रिनेत्रधारी जो विद्युत् और स्वर्ण सदृश देदीप्यमान हैं, मेरी पूर्व में रक्षा करें तथा जो वेद, कुठार, अंकुश, पाश, त्रिशूल तथा माला धारण किये हुए हैं तथा जल युक्त मेघ सदृश चमकीले श्याम वर्ण वाले हैं, वे दक्षिण दिशा में मेरी रक्षा करें।

मैं उनकी उपासना करता हूँ जो कुन्द, चन्द्र, शंख और स्फटिक के समान पवित्र और निर्मल हैं, जो पश्चिम में मेरी सुरक्षा के लिए अपने हाथों में वरदान और अभय के प्रतीक पुस्तक और माला धारण किये हुए हैं तथा जो उत्तर में विकसित कमल की भाँति प्रकाशमान हैं।

स्फटिक सदृश श्वेत वर्ण वाले पंचवक्त्र ईश्वर जो हाथों में अंकुश, पाश, कुठार, मुण्ड, डमरू और त्रिशूल तथा सुरक्षा के प्रतीक पुस्तक और माला धारण किये हुए हैं—ऊपर से मेरी रक्षा करें।

भगवान् चन्द्रमौलि से प्रार्थना है कि वे मेरे सिर की रक्षा करें, भालनेत्र मेरे भाल की रक्षा करें और कामारि मेरे नेत्रों की रक्षा करें।

मैं श्रुतिगीतकीर्ति भगवान् विश्वनाथ, हाथों में कपाल धारण किये हुए कापालि से प्रार्थना करता हूँ कि वे मेरे नाक, कर्णों और कपाल को सुरक्षित करें।

वह पंचवक्त्र भगवान् जिनकी वाणी ही वेद हैं, मेरे मुख और जिह्वा की रक्षा करें।

धर्मबाहू मेरे कन्धों की और 'दक्ष-यज्ञ-विध्वंसी' मेरे वक्ष, भुजाओं की समस्त भयों और दोषों से रक्षा करें।

धूर्जटि, कामदेव के नाशक और गिरीन्द्रधन्वा मेरे कटिप्रदेश, मध्यप्रदेश और पेट की रक्षा करें।

कुबेरमित्र, जगदीश्वर, पुंगवकेतु और परम दयालु मेरी दोनों जाँघों, दोनों घुटनों, दोनों पिण्डलियों और दोनों पैरों की रक्षा करें।

दिन के प्रथम प्रहर में महेश्वर, मध्य प्रहर में वामदेव, तीसरे प्रहर में त्र्यम्बक और अन्तिम चौथे प्रहर में वृषकेतु मेरी रक्षा करें।

शशिशेखर रात्रि के आरम्भ में, गंगाधर अर्धरात्रि में और गौरीपति रात्रि के अन्तिम प्रहर में तथा मृत्युंजय सर्वकाल में मेरी रक्षा करें।

शंकर घर के भीतर मेरी रक्षा करें, स्थाणु बाहर रहने पर, पशुपति बीच में और सदाशिव सब स्थानों पर मेरी रक्षा करें।

'वेदान्तवेद्य' बैठे रहने पर मेरी रक्षा करें। 'प्रमथनाथ' चलते समय और 'भुवनैकनाथ' खड़े रहने पर मेरी रक्षा करें।

'नीलकण्ठ' त्रिपुरारी मार्ग के संकट व भय से और दुर्गम पर्वत शिखरों व घाटियों में मेरी रक्षा करें।

'उदार शक्ति' गहन वन-प्रवास में भयानक वन्य पशुओं से मेरी रक्षा करें।

जिनका प्रबल क्रोध कल्पान्त में यम सदृश भयानक है तथा जिनके प्रचण्ड अट्टहास से जगत् काँपता है, उन भगवान् वीरभद्र से मैं प्रार्थना करता हूँ कि समुद्र के समान भयानक शत्रुसेना के महान् भय से मेरी रक्षा करें!

भगवान् 'मृड' से प्रार्थना है कि वे मुझ पर आततायी रूप से आक्रमण करने वाली चतुरंगिनी सेना के भीषण अस्त्रों से मेरी रक्षा करें।

भगवान् 'त्रिपुरान्तक' अपने प्रलयाग्नि के समान ज्वालायुक्त त्रिशूल व पिनाक धनुष से सिंह, रीछ, भेड़िया आदि हिंस्र वन्य जन्तुओं को सन्त्रस्त करके मेरी रक्षा करें।

वे जगदीश्वर दुःस्वप्नों, अपशगुनों, मानसिक दुर्भावनाओं व दुर्व्यसनों, दुःसह अपयश, उत्पातों, सन्तापों तथा अन्य विविध प्रकार के कष्टों से मेरी रक्षा करें!

मैं उन भगवान् सदाशिव को नमस्कार करता हूँ जो परम सत्य हैं, शास्त्रों का सत्य और सार हैं, ज्ञानातीत हैं। साक्षात् ब्रह्म और रुद्र हैं, सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि जिनके नेत्र हैं, पवित्र भस्म से जिनका शरीर सुशोभित है, जो रत्न-मणि-जटित मुकुट धारण किये हुए हैं, जो अखिल विश्व के एकमात्र कर्ता, भर्ता और संहारक हैं, जो दक्षसुयज्ञ विध्वंसक हैं, जो कालहारी, मूलाधारनिवासी और ज्ञानातीत हैं, जिनके शीश पर पावन गंगा का नित्य निवास है, जो सबके अन्तर्वासी, षड्गुण सम्पन्न, दर्शन का सत्व और विश्वनाथ हैं, जो कण्ठ में अष्ट नागेन्द्र हार धारण किये हुए हैं तथा ॐ जिनका वाचक है।

मैं उनकी उपासना करता हूँ जो चैतन्य स्वरूप हैं, आकाश और दिशाएँ जिनका स्वरूप हैं, नक्षत्र और सितारे जिनके कण्ठाभूषण हैं, जो नित्य-शुद्ध और निर्मल हैं, जो समस्त संसार के एक ही साक्षी हैं, वेदों के गूढ़ तत्त्व हैं, समस्त शास्त्रों से परे हैं, सबको वर देने वाले हैं तथा जो दीन-दुःखियों व अज्ञानियों पर दया-वृष्टि करने वाले हैं।

मैं उन दयालु, नित्य-शुद्ध, आनन्दघन, निरामय, निर्गुण, निष्काम, सर्वव्यापक, अनादि, अनन्त, परिपूर्ण तथा अद्वितीय प्रभु की प्रार्थना करता हूँ जो कार्य-कारण से अतीत हैं तथा जिनमें सुख, दुःख, अभिमान, बल और दर्प, भय और पीड़ा, पाप और ताप सभी लीन हो कर नष्ट हो जाते हैं।

मैं उन प्रभु की आराधना करता हूँ जो साक्षात् शुद्ध चैतन्य स्वरूप हैं, जिनमें आ कर समस्त कार्य समाप्त हो जाते हैं और सन्देह मिट जाते हैं, जो अविकारी, कालातीत, परिपूर्ण, नित्य-शुद्ध-बुद्ध, निस्संग, सच्चिदानन्दघन हैं। जो आधारशून्य, अपने सनातन प्रकाश से स्व-प्रकाशित एकमात्र कल्याणकारी नित्य-रूप, नित्य-वैभव-सम्पन्न तथा अनुपम ऐश्वर्य से सुशोभित हैं।

हे मेरे प्रभु, आपकी जय हो, जय हो! आप रुद्र, महारौद्र और महाभद्र रूप हैं! आप महाभैरव, कालभैरव, कपालमालाधारी और कल्पान्तभैरव हैं! आप खट्वांग, खड्ग, चर्म, अंकुश, शूल, डमरू, त्रिशूल, धनुष, बाण, गदा, शक्ति इत्यादि भयंकर अस्त्र धारण किये हुए हैं। हे सहस्र मुखों वाले! आप द्रंष्टा से कराल मुख वाले हैं। विकराल हास्य से आप विश्व को भयातुर करने वाले हैं! नागेन्द्र वासुकि आपके कुण्डल, हार तथा कंकण हैं! हे त्रिनेत्रधारी भगवान्! आप कालविजयी तथा त्रिपुरारि हैं!

आप सर्वव्यापक, सबके अन्तर्वासी, शान्ति का सारतत्त्व और परम आनन्द स्वरूप हो! हे शम्भो! आप वास्तव में वेद और वेदान्त के ब्रह्म ही हो। आप सर्वत्र स्थित, अनादि और अनन्त हो ! हे मेरे प्रभु, आप मेरी रक्षा कीजिए! मेरे महामृत्यु तथा अल्पमृत्यु के भय का नाश कीजिए! अपने त्रिशूल और खड्ग द्वारा मेरे शत्रुओं का नाश कीजिए! अपने धनुष और बाणों द्वारा कुष्माण्ड और बेताल भूतों को भय दिखा कर सन्त्रस्त कीजिए! नरक कुण्ड में गिरने से मुझे बचा लीजिए और मेरा उद्धार कीजिए! मुझे अभय दीजिए! अपने अस्त्रों द्वारा मेरी रक्षा कीजिए! मैं दुःखातुर दीन और निराधार हूँ! आपके चरणों में मैं सर्वस्व समर्पित करता हूँ, आपकी शरण में हूँ! केवल आप ही मेरे रक्षक हैं और आलम्बन हैं! हे सदाशिव! हे मृत्युंजय! हे त्र्यम्बक! आपको बारम्बार नमस्कार है!

ऋषभ जी ने कहा : इस प्रकार यह वरदायक शिवकवच मैंने कहा है, यह सम्पूर्ण बाधाओं को शान्त करने वाला, समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने वाला तथा समस्त जीवधारियों के लिए परम गोपनीय रहस्य है। जो मनुष्य इस उत्तम शिवकवच को धारण करता है, उसे भगवान् शिव के अनुग्रह से कभी और कहीं भी भय नहीं। जिसकी आयु क्षीण हो चली हो, जो मरणासन्न हो, वह इसके प्रभाव से तत्काल सुखी हो कर दीर्घायु व परमानन्द प्राप्त करता है। यह (शिवकवच) मनुष्य के दोषों का उन्मूलन करके, उसे शान्ति

और सम्पन्नता के शिखर तक पहुँचा देता है। वह मनुष्य इसके प्रभाव से समस्त पातकों व उपपातकों से छूट कर अन्त में शिव को पा लेता है। अत: वत्स, तुम भी मेरे द्वारा दिये हुए इस उत्तम शिवकवच को पूर्ण श्रद्धा और विश्वास सहित धारण करो। इससे तुम शीघ्र ही अत्यन्त सुख प्राप्त करोगे।

सूत जी कहते हैं—इस प्रकार कहते हुए ऋषभ ऋषि ने राजकुमार को एक विशाल शंख व एक शक्तिशाली खड्ग दी जिसके द्वारा कि वह शीघ्र ही शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सके।

तब उन्होंने राजकुमार की देह पर विभूति छिड़कते हुए अपने दिव्य स्पर्श द्वारा द्वादश सहस्र हस्तिबल से सम्पन्न कर दिया। इतना बल, शक्ति व साहस प्राप्त करके राजकुमार शरद्कालीन सूर्य के प्रकाश सदृश्य देदीप्यमान हो गया।

ऋषि ने फिर कहा—मेरे द्वारा दी हुई यह तलवार पवित्र मन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित की हुई है; इसके दर्शन मात्र से ही शत्रु निर्जीव हो जायेगा। काल तक इससे भयभीत हो जायेगा। इस शंख का गर्जन सुन कर शत्रु शस्त्र छोड़ कर बेसुध हो कर गिर पड़ेंगे। यह दोनों ऐसे अस्त्र हैं जो शत्रुओं का नाश करने वाले और तुममें शक्तिवर्धन करने वाले हैं।

शिवकवच को धारण करके इन दिव्य अस्त्रों द्वारा तुम शत्रु नाश कर सकोगे। तुम पैत्रिक राज्य प्राप्त करोगे और इस पृथ्वी के शासक होओगे। इस प्रकार अपने आशीर्वचनों द्वारा उसे धीरज दे कर ऋषि चले गये।

सर्वलिंग स्तव

हे ओंकारेश्वर, उमामहेश्वर,
रामेश्वर, त्र्यम्बकेश्वर,
महाबलेश्वर, महाकालेश्वर, मुक्तेश्वर, ॐ नम: शिवाय।

हे जम्बुकेश्वर, कालाहस्तिश्वर,
तारकेश्वर, परमेश्वर,
नर्मदेश्वर, नागेश्वर, नान्जुनदेश्वर, ॐ नम: शिवाय।

हे अर्धनारीश्वर, कापालीश्वर,
बृहदीश्वर, भुवनेश्वर, कुम्भेश्वर,
वृद्धचलेश्वर, एकम्बेश्वर, ॐ नम: शिवाय।

हे कैलासपते, पशुपते,
गौरीपते, पार्वतीपते,
उमापते, शिवाकामिपते, ॐ नमः शिवाय।

हे विश्वेश, त्यागेश, सर्वेश,
सुन्दरेश, महेश, जगदीश,
घुश्नुनेश, मातृभूतेश, ॐ नमः शिवाय।

हे कैलासनाथ, काशीनाथ,
केदारनाथ, मुक्तिनाथ,
अमरनाथ, पशुपतिनाथ, ॐ नमः शिवाय।

हे काशीविश्वनाथ, कांचीनाथ,
सोमनाथ, बैजनाथ, वैद्यनाथ,
तुंगनाथ, त्रिलोकीनाथ, ॐ नमः शिवाय।

हे कालभैरव, त्रिपुरान्तक,
नीललोहित हरो हर,
शिव, शम्भो, शंकर, सदाशिव, ॐ नमः शिवाय।

हे महादेव, महाकाल,
नीलकण्ठ, नटराज, चन्द्रशेखर,
चिदम्बरेश, पापविमोचक, ॐ नमः शिवाय।

हे हालस्य सुन्दरा, मिनाक्षीसुन्दर,
कल्याण सुन्दर, कदम्बवन सुन्दर
श्री शैलवास, वीरभद्र, ॐ नमः शिवाय।

हे गौरी शंकर, गंगाधर,
दक्षिणामूर्ते, मृत्युंजय,
ॐ नमो भगवते रुद्राय, ॐ नमः शिवाय।

हे वैकात्तपा, तिरुवोनिअप्पा,
चिदम्बला, पोनम्बला,
चित्समेष, चिदम्बरेश ॐ नमः शिवाय।

हे कामदहन, ब्रह्मशिरच्छेदा,
कूर्म-मत्स्य वाराह-स्वरूप,
वीरभैरव, वृषभारूढ़, ॐ नमः शिवाय।

हे कालान्तक, मल्लिकार्जुन,
अरुणाचल, नन्दीवाहन,
भिक्षादान, भक्तरक्षक, ॐ नमः शिवाय।

हे भीमाशंकर, भस्माधर,
पन्नगभूषण, पिनाकधारी,
त्रिलोचन, त्रिशूलपाणि, ॐ नमः शिवाय।

हे हर आपकी महिमा का वर्णन कौन कर सकता है?
श्रुतियाँ भी नेति-नेति कहती हैं,
आप परम ब्रह्म हैं,
आप सद्गुणों से परिपूर्ण हैं, ॐ नमः शिवाय।

हे त्रिपुरान्तकारी,
आपको बारम्बार प्रणाम,
आप विनाशकारी रुद्र हो,
आप अमरत्व प्रदाता हो, ॐ नमः शिवाय।

बैल आपकी सवारी है,
व्याघ्रचर्म है वस्त्र आपका ,
त्रिशूल, डमरू और कुठार हैं शस्त्र आपके, ॐ नमः शिवाय।

सर्प हैं आभूषण,
भस्मविलेपित हैं आप,
गंगा होती है प्रवाहित आपके शीश से
चन्द्रमा है आपका चूड़ामणि, ॐ नमः शिवाय।

सनक सनन्दन को,
चिन्मुद्रा और मौन द्वारा,
ब्रह्मज्ञान रहस्य में दीक्षित करने को,
दक्षिणामूर्ति हैं आप, ॐ नमः शिवाय।

आपका स्वरूप है वैराग्यमय,
ज्ञान का साक्षात् स्वरूप हैं,
नृत्य-विशारद हैं आप,
अगड़बम है गान आपका, ॐ नमः शिवाय।

आपने अग्निरूप धारण किया,
ब्रह्मा-विष्णु आपको,
मापने में पराजित हुए,
आप अनन्त व असीम हैं, ॐ नमः शिवाय।

मार्कण्डेय और माणिक्कवाचकर के रक्षक,
कण्णप्प, तिरुनावुकेरसु के,
तिरुज्ञानसम्बधर, सुन्दरेश,
अप्पर और पट्टिनातडियार के वरदाता हैं, ॐ नमः शिवाय।

आप हैं दया के सागर,
वरदाता हैं,
अर्जुन और बाण को वर दिया,
विषपान कर विश्व की रक्षा की, ॐ नमः शिवाय।

कामदेव का नाश किया,
गंगा और सुब्रह्मण्यम् के पिता हैं आप,
दक्ष का शिरच्छेदन कर गर्व नष्ट करने वाले हैं, ॐ नमः शिवाय।

त्रिपुर सुन्दरी, राजराजेश्वरी,
गौरी, चण्डी, चामुण्डी,
दुर्गा, अन्नपूर्णा हैं शक्ति आपकी, ॐ नमः शिवाय।

मुण्डमालाधारी हैं आप,
हैं गंगा जटाधारी,
श्मशानवासी हैं आप,
करालरूपधारी हैं—महाकाल-काल के भी काल, ॐ नमः शिवाय।

विष्णु के परम आराधक हैं आप,
विष्णु चरणों से निकसित गंगा को,

अपने शीश पर धारण करने वाले,
काशी में राम तारक मन्त्र से मुक्तिप्रदाता हैं आप, ॐ नमः शिवाय।

रामेश्वरम् में आपकी आराधना की राम ने,
सदाशिव शिव के रूप में,
आत्मलिंग से हृदयवासी हो,
वेदों के हो आप प्रणव, ॐ नमः शिवाय।

हे हर! हे प्रभु! हे शिव!
आपको बारम्बार प्रणाम!
सदा करूँ आपका स्मरण,
सदा मुझ में करें आप निवास, ॐ नमः शिवाय।

मुझे काम, भय और अहं से मुक्त करें,
सदा करूँ आपके पंचाक्षर का जप,
सर्वत्र करूँ दर्शन आपके,
सदा आपमें करूँ निवास, ॐ नमः शिवाय।

जो करेगा इस सर्वलिंग स्तव का जप, गान या श्रवण,
प्रातः-सायं श्रद्धा-भक्ति भाव सहित,
हो मुक्त पाप-ताप से समस्त,
प्राप्त करेगा धन, सन्तान, भक्ति, भुक्ति व मुक्ति!

शिव-स्तुति

अद्वैत, अखण्ड, अकर्ता, अभोक्ता,
असंग, असक्त, निर्गुण, निर्लेप,
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहं। १

अव्यक्त, अनन्त, अमृत, आनन्द,
अचल, अमल, अक्षर, अव्यय,
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहं। २

अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अगन्ध,
अप्राण, अमान, अतिन्द्रीय, अदृश्य,
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहं। ३

सत्यम्, शिवम्, शुभम्, सुन्दरम्, कान्तम्,
सत्-चित्-आनन्द, सम्पूर्ण, सुख शान्तम्।
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहं। ४

चेतन, चैतन्य, चिद्घन, चिन्मय,
चिदाकाश, चिन्मात्र, सन्मात्र, तन्मय,
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहं। ५

अमल, विमल, निर्मल, अचल,
अवांगमनोगोचर, अक्षर, निश्चल,
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहं। ६

नित्य, निरूपाधिक, निरतिशय आनन्द,
निराकार, ह्रीकार, ओंकार, कुत्सथ,
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहं। ७

पूर्ण, परब्रह्म, प्रज्ञान, आनन्द,
साक्षी, द्रष्टा, तुरीय, विज्ञान आनन्द,
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहं। ८

सत्यं, ज्ञानं, अनन्तं आनन्दम्,
सच्चिदानन्द, स्वयंज्योति प्रकाशम्,
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहं। ९

कैवल्य, केवल, कुत्स्थ, ब्रह्म,
शुद्ध, सिद्ध, बुद्ध, सत्-चित्-आनन्द,
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहं। १०

निर्दोष, निर्मल, विमल, निरंजन,
नित्य, निराकार, निर्गुण, निर्विकल्प,
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहं। ११

आत्मन्, ब्रह्मस्वरूप, चैतन्य-पुरुष,
तेजोमय, आनन्द, 'तत्-त्वम्-असि' लक्ष्य,
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहं। १२

'सोहं', 'शिवोऽहं', 'अहं ब्रह्मास्मि' महावाक्य,
शुद्ध, सत्-चित्-आनन्द, पूर्ण परब्रह्म,
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहं। १३

दिव्य-दर्शन

(१)

स्नेह, करुणा और परमानन्द के आराध्यदेव के,
हृदय में प्रकाशित परम ज्योति के,
सम्बन्धर और अप्पर के, जीवन दाता प्रभु के,
मैंने दर्शन किये ऋषियों के आवास पर!

उन महान्, चिरन्तन, योगियों के लक्ष्य के,
पुरी में बसने वाले परम पुरुष के,
वेदों में वर्णित आदि देव के,
मैंने दर्शन किये ऋषियों के आवास पर!

ब्रह्मा, विष्णु को भ्रमित करने वाले प्रकाश स्तम्भ के,
मार्कण्डेय के रक्षक, दया के सागर के,
पण्डे द्वारा पीड़ित मदुरै के प्रभु के,
मैंने दर्शन किये ऋषियों के आवास पर!

चारों के ज्ञान दाता, आदि गुरु के,
परम, व्यूह, विभाव, अर्चा और अन्तर्यामी—
पाँचों को धारण करने वाले आदि देव के,
मैंने दर्शन किये ऋषियों के आवास पर!

प्रभु, जो समस्त विश्व में,
सूत्रात्मा के रूप में व्याप्त हैं,

जो श्रुतियों के सार, परमात्मा हैं,
के मैंने दर्शन किये ऋषियों के आवास पर!

तीनों से ऊपर जो दीप्ति है,
प्रलय के बाद भी जो स्थित है,
उस कण्णप्प और सुन्दरर के रक्षक के,
मैंने दर्शन किये ऋषियों के आवास पर!

विषपान करके विश्व की रक्षा करने वाले,
चिदम्बरम् के नर्तक,
ज्योतिर्लिंग रूप से प्रकाशित होने वाले के,
मैंने दर्शन किये ऋषियों के आवास पर!

पाण्डया को घोड़े देने वाले के,
सम्बन्धर को मोतियों के पालकी देने वाले के,
पंचाक्षर के सारतत्त्व के,
मैंने दर्शन किये ऋषियों के आवास पर!

जिनका निवास है वेदों में,
बनारस, रामेश्वर, अरुणाचलम् व कांची में,
समस्त जीवधारियों में बसने वाले के,
मैंने दर्शन किये ऋषियों के आवास पर!

दारुमि के लिए अभिवक्ता बनने वाले के,
उमा सहित कैलास निवासी के,
सुन्दरर को नेत्रज्योति प्रदाता के,
मैंने दर्शन किये ऋषियों के आवास पर!

(२)

नेत्रहीन अप्पर को छड़ी देने वाले प्रभु को,
सुन्दरर के लिए भिक्षा माँगने वाले कृपालु को,
अप्पय दीक्षितार को मार्ग दर्शाने वाले मार्ग-बन्धु को,
मैंने देखा ऋषियों के आवास पर!

परवै को सन्देश देने वाले दयालु को,
दारुमि के लिए कविता लिखने वाले प्रियतम को,

नकिरार को जलाने वाले अग्नि रूप को,
मैंने देखा ऋषियों के आवास पर!

मदुरै में कुली बनने वाले प्रभु को,
थोड़ी-सी मिठाई के लिए
बाढ़ रोकने के लिए मिट्टी ढोने वाले को,
मैंने देखा ऋषियों के आवास पर!

अपने भक्तों के लिए तालाब और
बगीचे बनाने वाले प्रभु को,
भक्तों के दास को,
सम्बन्धर के लिए मोतियों की पालकी भेजने वाले को,
मैंने देखा ऋषियों के आवास पर!

अर्जुन से युद्ध करने वाले शिकारी को,
शंकर से विवाद करने वाले शूद्र को,
पाण्डया के पास घोड़े ले जाने वाले दूल्हा को,
मैंने देखा ऋषियों के आवास पर!

जिनके वामांग में उमा हैं,
जो क्षीर सागर के नारायण हैं,
वट-पत्र पर शयन करने वाले बाल रूप को,
मैंने देखा ऋषियों के आवास पर!

परम पावन आदि देव प्रभु को,
ज्योतियों के भीतर की ज्योति को,
देवों और ऋषियों द्वारा पूजित प्रभु को,
मैंने देखा ऋषियों के आवास पर!

जो चिदम्बरम् में अम्बलम हैं,
जो अरुणाचलम् में प्रकाश हैं,
विभिन्न आकारों में छिपे हुए चोर को,
मैंने देखा ऋषियों के आवास पर!

चिदाकाश में प्रकट सद्गुरु को,
बन्धन-त्रय का भेदन करने वाले को,

साधकों को मोक्षधरा तक ले जाने वाले को,
मैंने देखा ऋषियों के आवास पर!

सहस्रार में निवास करने वाले प्रभु को,
जो पथ भी हैं, लक्ष्य भी और केन्द्र भी,
महावाक्य के उस परम सत्य को,
मैंने देखा ऋषियों के आवास पर!

नटराज–गान

शिवाय नमः ॐ, शिवाय नमः,
शिवाय नमः ॐ, नमः शिवाय।
हे नटराज हे चिदम्बरम्,
हे नृत्यराज थिलै अम्बलम्,
प्रियतम शिवकामी सुन्दरी के,
भुवनेश्वरी राजराजेश्वरी के,
पापविनाशक वरदाता,
दुःखविनाशक अमरत्वप्रदाता,
शिवाय नमः ॐ, शिवाय नमः,
शिवाय नमः ॐ, नमः शिवाय।

हे त्रिशूलधारी, विषपानक!
हे योगीश्वर, सुरेश्वर!
हे कैलासवासी, नन्दीश्वर,
हे कन्दर्पारि, सिद्धेश्वर,
हे त्रिनेत्रधारी-पंचवक्त्रम्,
हे नीलकण्ठ, देवदेवेश्वर,
शिवाय नमः ॐ, शिवाय नमः,
शिवाय नमः ॐ, नमः शिवाय।

मात्र आप मेरे गुरु, मेरे आश्रय हो,
दया के सागर प्रभु प्रणाम है आपको,
मुझे अपनी कृपा का प्रसाद दो,
मैं आपके दयालु रूप का दर्शन करूँ,

सदा आपमें ही निवास करूँ।
है यही मेरी हार्दिक प्रार्थना,
शिवाय नमः ॐ, शिवाय नमः,
शिवाय नमः ॐ, नमः शिवाय।

भगवान् शिव की महिमा

ॐ। मैं उन भगवान् शिव को करबद्ध नतमस्तक प्रणाम करता हूँ जो जगत्-पति हैं, जगद्-गुरु हैं, त्रिपुरारि (काम, क्रोध और अहं रूपी तीन पुरियों का नाश करने वाले) हैं; (उमा, गौरी, गंगापति) उमा शंकर, गौरी शंकर, गंगा शंकर हैं, जो ज्योतिर्मय (प्रकाश से परिपूर्ण) हैं, चिदानन्दमय (ज्ञान और आनन्द से पूर्ण) हैं, जो योगीश्वर (योगियों के स्वामी) हैं, जो ज्ञान के भण्डार हैं और जो महादेव, शंकर, हर, शम्भू, सदाशिव, रुद्र, शूलपाणि, भैरव, उमामहेश्वर, नीलकण्ठ, त्रिलोचन, त्र्यम्बक, विश्वनाथ, चन्द्रशेखर, अर्धनारीश्वर, महेश्वर, नीललोहित, परमशिव, दिगम्बर तथा दक्षिणामूर्ति इत्यादि विभिन्न नामों से जाने जाते हैं।

वे कितने कृपालु हैं! कितने दयालु और करुणामय हैं! अपने भक्तों की तो मुण्डमाला को वे अपने कण्ठ में धारण किये रहते हैं। वे वैराग्य, करुणा, स्नेह और ज्ञान की साकार मूर्ति हैं। उनको विनाशकारी कहना भूल है। भगवान् शिव तो वास्तव में पुनर्जनक हैं। जब भी किसी का भौतिक शरीर किसी रोग, वृद्धावस्था अथवा किसी अन्य कारणवश इस जन्म में और विकास के अयोग्य हो जाता है, वे तत्काल इस जीर्ण-शीर्ण भौतिक आवरण को हटा कर पुनः विकास के लिए नयी स्वस्थ, शक्तिशाली देह प्रदान कर देते हैं। वे अपने बच्चों को शीघ्र अपने चरणकमलों में बुलाना चाहते हैं। वे उन्हें अपना परम शिव-पद प्रदान करना चाहते हैं। हरि की अपेक्षा शिव को प्रसन्न करना सरल है। थोड़ा-सा प्रेम और भक्ति, थोड़ा-सा उनके पंचाक्षर का जप ही शिव को प्रसन्नता से भर देने के लिए बहुत है। वे अपने भक्तों को बहुत शीघ्र वरदान दे देते हैं। उनका हृदय कितना विशाल है! अर्जुन को थोड़ी-सी तपस्या करने पर ही उन्होंने सरलता से पाशुपतास्त्र प्रदान कर दिया। भस्मासुर को उन्होंने अनमोल वरदान दिया। तिरुपति के निकट कालहस्ति में भक्त कण्णप्प नयनार जो कि शिकारी था और जिसने मूर्ति के अश्रुपूर्ण नेत्रों के स्थान पर लगाने के लिए अपने नेत्र निकाल दिये थे, को उन्होंने दर्शन दिये। चिदम्बर में तो अछूत पारिआह सन्त नन्दन को भी भगवान् शिव के दर्शन प्राप्त हुए। मार्कण्डेय को यमराज के पंजे से छुड़ा कर अमरत्व प्रदान करने के लिए वे अत्यन्त तीव्र गति से भागे। लंकापति रावण ने उन्हें सामगायन से प्रसन्न कर लिया। चारों ब्रह्मचारी बालकों—सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार को उन्होंने

दक्षिणामूर्ति के रूप में ज्ञान के रहस्योद्घाटन करते हुए दीक्षित किया। दक्षिण भारत में मदुरै में सुन्दरेश्वर (भगवान् शिव) ने अपनी एक भक्त स्त्री के लिए एक बालक बन कर एक पुट्ठ (एक प्रकार की मिठाई) मजदूरी पाने के लिए वैगयै नहर निर्माण-स्थल पर मिट्टी की टोकरी सिर पर उठायी। अपने भक्तों के लिए उनकी असीम दया दर्शनीय है। जब ब्रह्मा और विष्णु भगवान् शिव के आदि व अन्त को खोजने निकले तो उन्होंने अनन्त विशाल ज्योतिर्मय स्वरूप धारण कर लिया। ये दोनों अपने प्रयत्न में असफल हो गये। वे कितने विशाल हृदय और स्वयंप्रकाश हैं! दक्षिण भारत में पत्तिनातु स्वामी के घर वर्षों तक उनके दत्तक पुत्र के रूप में रहे और अन्त में यह संक्षिप्त सूचना छोड़ कर चले गये कि ''एक टूटी सुई भी मृत्यु के पश्चात् तुम्हारे साथ नहीं जायेगी।'' यही सूचनापत्र पत्तिनातु स्वामी के ज्ञान-प्राप्ति का प्रथम बिन्दु बना। आप भी इसी क्षण से प्रभु (भगवान् शिव की) प्राप्ति के लिए सच्चाई से प्रयत्नशील क्यों नहीं हो जाते?

हठयोगी मूलाधार चक्र में प्रसुप्त कुण्डलिनी शक्ति को आसन, प्राणायाम कुम्भक, मुद्रा और बन्ध द्वारा जागृत करते हैं। उसे विभिन्न चक्रों (आध्यात्मिक शक्ति स्रोतों) स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा में से होते हुए शीर्षस्थान में सहस्र दलों वाले कमल सहस्रार में ले जा कर भगवान् से मिला देते हैं। वहाँ वे अमृत (शिवज्ञान अमृत) पान करते हैं। इसे अमृतास्रव कहते हैं। जब शक्ति का शिव से मिलन होता है तो योगी को पूर्ण प्रकाश प्राप्त हो जाता है।

भगवान् शिव ब्रह्म के विनाशकारी स्वरूप का परिचायक हैं। ब्रह्म का वह अंश जो तमोगुण प्रधान माया द्वारा आच्छादित है, वही सर्वव्यापक कैलासवासी भगवान् शिव हैं। वे ज्ञान का भण्डार हैं। पार्वती, काली या दुर्गा से रहित शिव शुद्ध निर्गुण ब्रह्म हैं। माया (पार्वती) के सहित वे अपने भक्तों की पावन भक्ति के लिए सगुण ब्रह्म हो जाते हैं। राम-भक्तों को भगवान् शिव की भक्ति अवश्य करनी चाहिए। स्वयं राम ने भी प्रसिद्ध रामेश्वरम् स्थल पर भगवान् शिव की आराधना की थी। भगवान् शिव तपस्वियों और योगियों के दिगम्बर वेश में इष्ट हैं।

उनका दक्षिण हस्तधारी त्रिशूल सत्त्व रजस् और तमस् तीनों गुणों का प्रतीक है। यह उनकी प्रभुसत्ता का प्रतीक है। वे इन तीन गुणों द्वारा संसार पर शासन करते हैं। वाम हस्त में धारण किया हुआ डमरू 'शब्द ब्रह्म' का परिचायक है। यह ॐ—जिसमें से समस्त भाषाओं का उद्भव हुआ है—का प्रतीक है। उन्होंने ही डमरू की ध्वनि से संस्कृत भाषा की रचना की है।

मस्तक पर अर्धचन्द्र धारण कर वे स्पष्ट करते हैं कि उन्होंने मन को पूर्णतया जीत लिया है। बहती हुई गंगा अमृतत्व की प्रतीक है। गजराज अहंकार वृत्ति का प्रतीक माना गया है। गजचर्म धारण करने का आशय है कि उन्होंने अहं पर विजय पा ली है। शेर काम का प्रतीक है। व्याघ्रचर्म पर बैठने का अर्थ है कि उन्होंने काम को जीता हुआ है। एक हाथ में मृग को पकड़ने का अर्थ है कि उन्होंने मन की चंचलता को दूर कर दिया है। मृग शीघ्रता से एक स्थान से दूसरे स्थान पर उछल-कूद करता रहता है, इसी प्रकार मन भी एक विषय से दूसरे विषय पर नाचता रहता है। कण्ठ में धारण किये हुए सर्प बुद्धि और अमरत्व के परिचायक हैं। साँप बहुत दीर्घजीवी होते हैं। वे त्रिनेत्रधारी त्रिलोचन हैं, बीच का तीसरा नेत्र प्रज्ञा का नेत्र है। नन्दी, शिवलिंग के सम्मुख स्थित बैल प्रणव का प्रतीक है। लिंग अद्वैत का प्रतीक है। यह 'एकमेव अद्वितीयम्' को प्रकट करता है ठीक उसी प्रकार जैसे मनुष्य अपना दाहिना हाथ, सिर से ऊपर उठा कर उसकी तर्जनी द्वारा संकेत कर रहा हो।

कैलास पर्वत तिब्बत में विशाल पर्वत श्रेणी है जहाँ सुन्दर प्राकृतिक रूप से ढक कर सजायी हुई चाँदी-सी चमकीली हिमाच्छादित चोटी है जो सागर तल से २२,२८० फुट की ऊँचाई पर है, कोई-कोई २२,०२८ फुट भी कहते हैं। यह विशेष चोटी प्राकृतिक रूप में ही विशाल शिवलिंग के आकार की है। इसकी दूर से ही शिवलिंग के रूप में पूजा की जाती है। यहाँ न कोई मन्दिर है, न पुजारी—न ही प्रतिदिन की कोई पूजा होती है। भगवान् शिव की कृपा से मुझे २२ जुलाई १९३१ को कैलास के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं फूले हुए श्वास से कैलास के मूल—जहाँ से सिन्धु निकलती है—तक चढ़ गया था। यह अत्यन्त नयनाभिराम और मर्मस्पर्शी दृश्य है। कैलास की परिक्रमा के प्रथम विश्राम-स्थल दिदिफा गुहा से चढ़ाई करनी पड़ती है। कैलास की चोटी के पिछले भाग से हिम के ढेरों में से सिन्धु छोटी-सी नदी के रूप में बहुत वेगपूर्वक फूट कर निकलती है। यद्यपि चित्रों में भगवान् शिव की जटाओं से गंगा निकलती दिखायी जाती है; किन्तु वास्तव में यह सिन्धु है जो भगवान् शिव के शीश (कैलास) में से निकल कर आती है। कैलास की परिक्रमा ३० मील की है। इसे पूर्ण करने में ३ दिन लगते हैं। मार्ग में गौरी-कुण्ड आता है जहाँ सदा हिम रहती है, यदि आपको स्नान करना हो तो हिम को तोड़ना पड़ता है।

भगवान् शिव का नाम किसी भी तरह जपा जाये, शुद्ध अथवा अशुद्ध, जान-बूझ कर अथवा अनजाने में, ध्यान से अथवा असावधानी से, वह अवश्य ही इच्छित फल प्रदान करता है। भगवान् शिव के नाम की महिमा को बुद्धि और विवेक द्वारा प्रमाणित नहीं किया जा सकता; किन्तु श्रद्धा, विश्वास और भाव सहित नाम-स्मरण और संकीर्तन से अवश्य ही अनुभव किया जा सकता है। प्रत्येक नाम असंख्य शक्तियों से सम्पन्न है। नाम

की शक्ति अनिर्वचनीय है। इसकी महिमा अवर्णनीय है। भगवान् शिव के नाम की सामर्थ्य और उसमें अन्तर्निहित शक्ति अथाह है।

भगवान् शिव के स्तोत्र के पाठ और उनके नाम के निरन्तर स्मरण से मन पवित्र होता है। स्तोत्र शुभ और शुद्ध भावों से ओत-प्रोत हैं। शिव स्तोत्र के पाठ द्वारा अच्छे संस्कार सुदृढ़ होते हैं। ''मनुष्य जैसा सोचता है वैसा ही बनता है।'' यह मनोवैज्ञानिक नियम है। जो मनुष्य स्वयं को शुभ पवित्र विचार करना सिखाता है, वह अच्छे विचार विकसित करता है। निरन्तर अच्छे विचारों द्वारा गठित होने से उसके चरित्र का स्वरूप बदल जाता है। प्रभु के स्तोत्र-गान करते हुए जब मन उनकी छवि का ध्यान करता है, तब मन वास्तव में प्रभु की छवि का ही रूप धारण कर लेता है। विचार की छाप मन पर रह जाती है। यह संस्कार कहलाती है। यह क्रिया जब बार-बार दोहरायी जाती है, तो इस आवृत्ति से संस्कार और भी दृढ़ हो जाते हैं जो मन का स्वभाव बन जाते हैं। जो दैवी विचार रखता है, वह निरन्तर विचार द्वारा वास्तव में स्वयं ईश्वरत्व में रूपान्तरित हो जाता है। उसके भाव शुद्ध और ईश्वरीय हो जाते हैं। जब कोई भगवान् शिव के स्तोत्र और भजन गाता है, तो वह प्रभु के तदनुरूप हो जाता है। व्यक्तिगत-मन, ब्रह्म-मन में लीन हो जाता है। जो स्तोत्र-गान करता है, वह भगवान् शिव के साथ एक हो जाता है।

जिस प्रकार अग्नि में ज्वलनशील पदार्थों को जलाने का स्वाभाविक गुण है, उसी प्रकार भगवान् शिव के नाम में उन लोगों—जो उनका नाम जपते हैं—के पाप-संस्कारों व वासनाओं को जला देने तथा शाश्वत परमानन्द और अनन्त शान्ति प्रदान करने की शक्ति है।

जैसे अग्नि में जलाने का गुण स्वाभाविक और अन्तर्भूत है, वैसे ही भगवान् के नाम में भी पापों को मूल रूप से नष्ट करने और जिज्ञासु साधक को भाव समाधि द्वारा प्रभु से आनन्दमय मिलन कराने की सहज स्वाभाविक शक्ति है।

हे मित्र! शिव-नाम की शरण में जायें! उनके भजन गायें! नामी और नाम परस्पर अभिभक्तव्य हैं। भगवान् शिव का कीर्तन निरन्तर करें। प्रत्येक श्वास-प्रश्वास के साथ प्रभु का नाम-स्मरण करें। कलियुग में ईश्वर-साक्षात्कार, अमरत्व और परमानन्द-प्राप्ति का सरलतम, शीघ्रतम, सुरक्षित और सुनिश्चित मार्ग है नाम-स्मरण और संकीर्तन। भगवान् शिव की जय हो! उनके नाम की जय हो!

रावण ने शिव स्तोत्र द्वारा भगवान् शिव को प्रसन्न कर लिया। पुष्पदन्त ने भगवान् शिव को विख्यात शिवमहिम्नस्तोत्र द्वारा प्रसन्न किया। इस स्तोत्र को समस्त भारत में आज भी शिव-भक्त गाते हैं और सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सिद्धियाँ और मोक्ष प्राप्त करते हैं। शिव स्तोत्रों

की महिमा अवर्णनीय है। आप भी अज्ञात भविष्य पर न छोड़ते हुए इसी क्षण से भगवान् शिव का नाम-संकीर्तन करें और उनकी कृपा और मोक्ष के अधिकारी बनें! भगवान् शिव को आप सहज ही प्रसन्न कर सकते हैं। शिवरात्रि का उपवास करें। यदि ऐसा न कर सकें, तो उस दिन दूध और फल ले लें। रात-भर पूर्ण जागरण करें और उनके स्तोत्र और ॐ नमः शिवाय का जप करते रहें। भगवान् शिव की कृपा आप पर हो!

ॐ शान्तिः! ॐ शान्तिः!! ॐ शान्तिः!!!

अध्याय २

शिव-तत्त्व

मुझ में सृष्टि आरम्भ होती है,
मुझ में स्थित रहती है;
मुझ में ही यह लय हो जाती है—शिव,
वह कालातीत, स्वयं मैं ही हूँ,
शिवोऽहं! शिवोऽहं! शिवोऽहं!

भगवान् शिव को नमस्कार है! कामदेव का संहार करने वाले, अमरत्व और परमानन्द की वर्षा करने वाले, समस्त जीवों के रक्षक, पापविनाशक, देवों के देव, बाघम्बरधारी, सर्वश्रेष्ठ आराधनीय, गंगाजटाधारी भगवान् शिव को प्रणाम है!

भगवान् शिव नित्य, शुद्ध, निर्गुण, सर्वव्यापक, अनुभवातीत चैतन्य हैं। वे निष्क्रिय परम पुरुष हैं। प्रकृति उनके वक्षस्थल पर नृत्य करती हुई सृष्टि, पालन और संहार कार्य करती है।

जब न प्रकाश होता है न ही अन्धकार, न रूप, न ही शक्ति, न शब्द न ही तत्त्व, जब दृश्य-प्रपंच के अस्तित्व का भी प्रकटीकरण नहीं होता, तब केवल शिव स्वयं अपने में ही विद्यमान होते हैं। वे कालातीत, स्थानहीन, जन्म व मरण से रहित हैं। वे द्वन्द्वातीत हैं। वे निर्गुण निराकार ब्रह्म हैं। वे सुख और दुःख से, अच्छे और बुरे से अप्रभावित हैं। उन्हें आँखों से देखा नहीं जा सकता; किन्तु भक्ति और ध्यान के द्वारा हृदय में उनका साक्षात्कार किया जा सकता है।

शिव जब शक्ति के सहित होते हैं, तो वे परम इष्टदेव हैं। तब वे सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सक्रिय प्रभु हैं। वे परम आनन्द में नृत्य करते हैं और नृत्य की लय में सृष्टि, स्थिति और संहार करते हैं।

वे अपने भक्तों के समस्त बन्धन, नियन्त्रण और दुःखों को नष्ट कर देते हैं। वे मुक्तिदाता और उद्धारक हैं। वे सर्वव्यापक हैं। वे समस्त जीवों के सत्य स्वरूप हैं। वे मृतकों (जो संसार के लिए मृतक समान हैं) के निवास-स्थान श्मशान में निवास करने वाले श्मशानवासी हैं।

जीव और जगत् का उद्‌गम उनसे है, स्थिति उनमें है। उनमें ही उनका पालन और संहार है और अन्त में उन्हीं में समा जाते हैं। वे समस्त जगत् के रक्षक, उद्‌गम और आधार हैं। वे सत्यम्, सुन्दरम्, शिवम् और आनन्द की प्रतिमूर्ति हैं। वे ही सत्यम्, शिवम्, शुभम्, सुन्दरम् और कान्तम् हैं।

वे देवों के देव महादेव हैं। वे प्रजापति हैं। वे विस्मयकारी, भयानक मूर्ति, त्रिशूलधारी रुद्र हैं। वे अत्यन्त शीघ्र प्रसन्न होने वाले आशुतोष हैं। वे सर्व सुलभ हैं। शूद्र, चाण्डाल और अज्ञ अपरिष्कृत भी उनको पा सकते हैं।

वे सम्पूर्ण ज्ञान और विवेक के स्रोत हैं। वे एक आदर्श योगी और मुनि हैं। वे एक ऐसे आदर्श परिवार के आदर्श पति हैं जिसमें उमा उनकी समर्पिता पत्नी हैं, भगवान् सुब्रह्मण्यम् शक्ति, साहस और वीरता के नायक हैं और भगवान् गणेश विघ्नविनायक हैं।

सदाशिव

प्रलय के् अन्त में परमात्मा विश्व की पुनर्रचना करने की सोचते हैं। तब उन्हें सदाशिव के नाम से जाना जाता है। वे ही सृष्टि का मूल कारण हैं। सदाशिव से सृजन आरम्भ होता है। मनु-स्मृति में उन्हें स्वयंभू कहा गया है। सदाशिव अव्यक्त हैं, वे प्रलय के कारण से उत्पन्न तमस् का नाश करते हैं और स्वयं पंचमहाभूतों इत्यादि को अस्तित्व में लाते हुए स्वदेदीप्यमान-प्रकाश के समान चमकते हैं।

शिवपुराण के अनुसार, शिव पुरुष और प्रकृति दोनों से परे हैं। वे महेश्वर हैं। वे समस्त जीवों के द्रष्टा, भर्ता और पोषक हैं। गीता का कथन है—"**उपद्रष्टाऽनुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।**" महेश्वर अपने संकल्प और इच्छा से सृष्टि की संरचना का कार्य करते हैं। श्रुति कहती है—"**मयं तु प्रकृतिं विद्धि मयिनां तु महेश्वरम्।**" प्रकृति को माया जानो, महेश्वर को माया अथवा प्रकृति का नियन्ता। शिव की शक्ति दो विभिन्न प्रकार से कार्य करती है—मूल प्रकृति तथा दैवी प्रकृति। मूल प्रकृति अपरा प्रकृति है जिसमें से पंच तत्त्व तथा अन्य दृश्य पदार्थ और अन्तःकरण उत्पन्न होते हैं। परा प्रकृति चैतन्य शक्ति है जो अपरा प्रकृति को परिवर्तित करके उसे नाम-रूप देती है। अपरा प्रकृति अविद्या है और परा प्रकृति विद्या है। इन दोनों प्रकृतियों के नियन्ता और स्रष्टा भगवान् शिव हैं।

शिव ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र से भिन्न हैं। भगवान् शिव असंख्य करोड़ ब्रह्माण्डों अथवा जगत् के स्वामी हैं। भगवान् शिव की आज्ञा से माया से संयुक्त हो कर ईश्वर रजस्,

सत्त्व और तमोगुण से क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र की सृष्टि करता है। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र जगत् के त्रियक देव हैं।

त्रियक ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र में कोई अन्तर नहीं है। महेश्वर की आज्ञा से ये तीनों संसार की संरचना, पालन और संहार का कार्य करते हैं। इन तीनों का समस्त कार्य संयुक्त रूप से होता है। इस नाम-रूप वाले दृश्य जगत् के सृष्टि, पालन और संहार कार्य में इन तीनों का एक ही उद्देश्य और एक ही निश्चित कारण होता है। जो इन तीनों को भिन्न-भिन्न मान कर इनमें भेद-दृष्टि रखता है, शिवपुराण के कथनानुसार, ''वह निस्सन्देह नरपिशाच अथवा पापात्मा है।''

तीनों गुणों से परे जो भगवान् महेश्वर हैं, उनके चार रूप हैं—ब्रह्मा, काल, रुद्र और विष्णु। शिव इन चारों के आधार हैं। वे शक्ति के भी आधार-तत्त्व हैं, शिव त्रियक के रुद्र से भी भिन्न हैं। रुद्र वास्तव में एक ही हैं, यद्यपि विभिन्न कार्यों के अनुसार भिन्न-भिन्न एकादश रुद्र माने जाते हैं।

शिव का प्रथम मुख क्रीड़ा करता है, द्वितीय तप-साधना करता है, तृतीय जगत् का संहार अथवा लय करता है, चतुर्थ जीवों की रक्षा करता है और पाँचवाँ ज्ञान रूप होने के कारण समस्त विश्व को अपनी शक्ति से पूर्णतया आच्छादित करता है। वह ईशान है तथा स्वयं ही समस्त जीवों का स्रष्टा और प्रवर्धक है।

प्रभु शिव की जो प्रथम ईशान नामक मूर्ति है, वह प्रकृति के साक्षात् भोक्ता क्षेत्रज्ञ को व्याप्त करके स्थित है। इनकी दूसरी जो तत्पुरुष नामक मूर्ति है, वह सत्त्व गुणों के आश्रय रूप भोग्य अव्यक्त प्रकृति में अधिष्ठित हैं। तीसरी अघोर नामक मूर्ति धर्म आदि आठ अंगों से युक्त बुद्धि-तत्त्व को अपना अधिष्ठान बनाती है तथा चौथी वामदेव है, जो अहंकार में स्थित है तथा पाँचवीं सद्योजात मन को अपना अधिष्ठान बनाती है। शिव की आठ मूर्तियाँ हैं—शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव। ये क्रमशः पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चन्द्रमा में अधिष्ठित हैं।

अर्धनारीश्वर

ब्रह्मा अपनी मानसिक सृष्टि द्वारा जब सृष्टि रचना की वृद्धि करने में सफल नहीं हुए, तब उन्होंने परमेश्वर से प्रजा-वृद्धि के ढंग को जानने के लिए तपस्या की। उनकी तपस्या के फल-स्वरूप आद्य शक्ति उनके हृदय में उत्पन्न हुई। उसी आद्य शक्ति की सहायता से ब्रह्मा जी त्र्यम्बकेश्वर भगवान् का हृदय में चिन्तन करते हुए तप करने लगे। ब्रह्मा के तीव्र तप से सन्तुष्ट हो अपने अनिर्वचनीय अंश से किसी अद्भुत मूर्ति में आविष्ट हो भगवान् महादेव

आधे शरीर से नारी और आधे शरीर से ईश्वर हो कर अर्धनारीश्वर के रूप में प्रकट हुए। ब्रह्मा ने अर्धनारीश्वर की स्तुति की, तब प्रभु शिव ने अपने शरीर के वाम भाग से पराशक्ति भगवती को प्रकट किया। ब्रह्मा ने देवी भगवती से कहा—''मेरे द्वारा मानसिक संकल्प से रची गयी सृष्टि में प्राणी बढ़ नहीं रहे हैं। यद्यपि मैंने देवताओं की रचना की, किन्तु वे भी बढ़ नहीं सके। अत: अब मैं मैथुनी सृष्टि करके ही अपनी प्रजा को बढ़ाना चाहता हूँ। आपके प्रकट होने से पूर्व अब तक नारी-कुल का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था, क्योंकि नारी-कुल की सृष्टि करने की शक्ति मुझमें नहीं है। अत: हे देवी! इस जगत् की वृद्धि के लिए आप कृपा करके अपने एक अंश से मेरे पुत्र दक्ष की पुत्री हो कर जन्म लें।''

जगद्-गुरु

भगवान् शिव का मानव-जाति के लिए किया गया सर्वाधिक महान् और उपयोगी कार्य है—विश्व को योग, भक्ति और ज्ञान इत्यादि की विद्या प्रदान करना। वे उन पर कृपा करते हैं जो अधिकारी हैं और जो उनकी कृपा के बिना संसार से छूट नहीं पाते। वे केवल जगद्-गुरु ही नहीं, अपितु जीवन्मुक्त व संन्यासियों के आदर्श भी हैं। वे अपने दैनिक जीवन के कार्यकलापों के द्वारा ही शिक्षा देते हैं।

पाशुपत-योग

इन्द्रियों को संयमित करके आत्मा को शिव-तत्त्व से संयुक्त करना ही वास्तविक भस्म धारण करना है, क्योंकि भगवान् शिव ने अपने तीसरे ज्ञान-चक्षु द्वारा काम को भस्म कर दिया था। प्रणव का ध्यान जप सहित करना चाहिए। निरन्तर अभ्यास द्वारा वास्तविक ज्ञान, योग और भक्ति को प्राप्त करना चाहिए। हृदय-स्थान में दश-दलों वाला कमल स्थित है। इसमें दश नाड़ियाँ हैं। यहीं जीवात्मा निवास करता है। यह जीवात्मा सूक्ष्म रूप से मन में रहता है और यही चित्त अथवा पुरुष है। मनुष्य को गुरु के निर्देशानुसार, दशाग्नि नाड़ी को भेद कर, योग के निरन्तर अभ्यास द्वारा तथा वैराग्य, सदाचार और समता के अभ्यास द्वारा चन्द्रमा तक पहुँचना चाहिए। तब चन्द्रमा साधक के योग में नियमित होने से व नाड़ी-शोधन से प्रसन्न हो कर धीरे-धीरे पूर्णता को प्राप्त कराता है। इस अवस्था में साधक जागृत और सुषुप्तावस्था को विजय कर लेता है और ध्यान द्वारा जागृतावस्था में ही स्वयं को ध्येय में लीन कर देता है।

अध्याय ३

शैव-सिद्धान्त दर्शन

शिव और शिव-तत्त्व

सत्यं शिवं शुभं सुन्दरं कान्तम्।

शैव-सिद्धान्त प्रणाली वेदान्त का शुद्ध सत्त्व है। दक्षिण भारत में यह ईसाई-काल से भी पूर्व से प्रचलित है। तिरुनेल्वेली और मदुरै शैवसिद्धान्तवाद के केन्द्र हैं। ११ वीं शताब्दी ई.पू. में शैवमतानुयायियों ने शैव-सिद्धान्त नाम से एक भिन्न दर्शन की व्याख्या की। शैवमत दक्षिण भारत में अत्यधिक लोकप्रिय मत है। यह वैष्णवमत का प्रतिद्वन्द्वी है।

तिरुमुलर विरचित तिरुमन्त्रम् आधार है जिस पर परवर्ती शैव-सिद्धान्त दर्शन की रूपरेखा बनायी गयी। अट्ठाईस शैवागम, शैव-सन्तों के भजन-स्तोत्र दक्षिणी शैवमत के मुख्य आधार हैं।

जिन ग्रन्थों में शैवमत का निरूपण हुआ है, उनमें चार सम्प्रदायों—नकुलिस-पाशुपत, शैव, प्रत्यभिज्ञ और रसेश्वर का वर्णन मिलता है।

भगवान् शिव परम सत्य हैं। वे शाश्वत, निराकार, स्वतन्त्र, सर्वव्यापक, अद्वितीय, अनादि, कारण रहित, निर्दोष, स्वयं-विद्यमान, सदामुक्त और सदाशुद्ध हैं। वे काल द्वारा बद्ध नहीं हैं। वे अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान हैं।

भगवान् शिव अपनी शक्ति के रूप में समस्त विश्व में व्याप्त हैं। वे शक्ति से कार्य करते हैं। शक्ति उनकी चैतन्य शक्ति है। वह भगवान् शिव का साकार रूप है। कुम्भ का प्रमुख कारण कुम्भकार है। डण्डा और चाक उसके निमित्त कारण हैं। मिट्टी उसका उपादान कारण है। इसी प्रकार भगवान् शिव जगत् के प्रथम कारण हैं, शक्ति निमित्त कारण है और माया उपादान कारण है।

भगवान् शिव प्रेम के प्रभु हैं। उनकी कृपा असीम है। वे रक्षक हैं और गुरु भी। वे जीवात्माओं को विषयों की दासता से मुक्त करने में निरत हैं। मानव-जाति के प्रति गहन प्रेम के कारण ही वे गुरु-रूप धारण करते हैं। वे चाहते हैं कि सभी उनको जानें और परम

शिव-पद को प्राप्त करें। वे प्रत्येक जीव के कर्मों पर स्नेहमयी दृष्टि रखते हैं और उनकी ऊर्ध्वगामी यात्रा में सहायता करते हैं।

शैव-सिद्धान्त के अनुसार कुल ३६ तत्त्व हैं जिनमें २४ आत्म-तत्त्व कहे गये हैं, ७ विद्या-तत्त्व और शेष ५ शिव-तत्त्व। २४ आत्म-तत्त्व हैं—पाँच महाभूत—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी; पाँच तन्मात्राएँ—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध; पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ—कर्ण, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और नासिका; पाँच कर्मेन्द्रियाँ—वाणी, हाथ, पैर, गुदा और जननेन्द्रिय; तथा अहंकार, बुद्धि और गुण। ७ विद्या-तत्व हैं—पुरुष, राग (प्रेम), विद्या (ज्ञान), कला, नियति, काल तथा अशुद्ध माया। पाँच शिव-तत्त्व हैं—शुद्ध विद्या, ईश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिव।

माया पहले सूक्ष्म सिद्धान्तों में विकसित हो कर फिर स्थूल में होती है। जीवात्मा विद्या से ही सुख-दुःख अनुभव करता है। शिव-तत्त्व सम्पूर्ण चेतना और कर्म का आधार है। यह निष्कल शुद्ध है। शिव की शक्ति माया अपना कार्य करती है, तब शिव भोक्ता हो जाते हैं। तब वे सदाशिव हो कर सदख्या के नाम से भी जाने जाते हैं—जो कि शिव से वास्तव में भिन्न नहीं है। जब शुद्ध माया क्रियान्वित हो जाती है, तब भोक्ता शिव शासक हो जाते हैं। तब वे ईश्वर हैं जो वास्तव में सदाशिव से भिन्न नहीं हैं। शुद्ध विद्या शुद्ध ज्ञान की कारण है। भगवान् के पंच-कृत्य हैं—सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह। इनको अलग-अलग करके क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेश्वर और सदाशिव के कार्य कहा जाता है।

पंचाक्षरी मन्त्र **'नमः शिवाय'** में **'न'** भगवान् की रक्षक शक्ति है जिससे जीवात्मा जगत् में भ्रमण करता है। **'म'** वह बन्धन है जो उसे संसार के जन्म-मरण के बन्धन में बाँधता है। **'शि'** भगवान् शिव का प्रतीक है। **'वा'** उनके अनुग्रह का प्रतीक है। **'य'** आत्मा का प्रतीक है। यदि जीवात्मा **'न'** और **'म'** की ओर उन्मुख होगा, तो संसार में डूब जायेगा। यदि वह स्वयं को **'वा'** से संयुक्त कर लेगा, तो वह **'शि'** भगवान् शिव की ओर बढ़ जायेगा।

भगवान् शिव की लीलाओं और पंचाक्षर के महत्त्व को सुनना 'श्रवण' है। पंचाक्षर के अर्थ पर विचार करना 'मनन' अथवा 'चिन्तन' है। भगवान् शिव के प्रति प्रेम और भक्ति विकसित करना और उन पर ध्यान लगाना 'शिव-ध्यान' है। 'शिव-आनन्द' में डूब जाना 'निष्ठा' अथवा 'समाधि' है। जो इस अवस्था को प्राप्त कर लेता है, वह 'जीवन्मुक्त' कहलाता है।

पति–पशु–पाश

भगवान् शिव 'पति' हैं। समस्त वेदों और आगमों में भगवान् (पति), बद्ध जीव (पशु), जिसका वास्तविक अर्थ पशु ही है और बन्धन (पाश) की धारणा की व्याख्या की गयी है। भगवान् शिव असीम, शाश्वत, अद्वितीय हैं। वे अविकारी तथा अविभाज्य हैं। वे साक्षात् ज्ञान और आनन्दस्वरूप हैं। वे समस्त जीवात्माओं को शक्ति और बुद्धि देते हैं। वे मन-वाणी से परे हैं। वे समस्त जीवात्माओं के परम लक्ष्य हैं। वे सूक्ष्मतम से भी अति सूक्ष्म तथा महानतम से भी अधिक महान् हैं। वे स्वयं-प्रकाशित, स्वयं-विद्यमान तथा स्वयं-आनन्दस्वरूप हैं।

'पशु' वह सब जीवात्माएँ हैं जो संसार के दलदल में फँसी हुई हैं। वे अपने शुभ और अशुभ कर्मों को भोगने के लिए शरीर धारण करते हैं और फिर अपने कर्मों के अनुसार ही उच्च या निम्न योनियाँ प्राप्त करते हैं। वे अपने कर्मों के अनन्त फलों को भोगते हुए अन्य शुभ और अशुभ कर्म करते रहते हैं, जिसके फलस्वरूप अनन्त जन्मों और मरणों को प्राप्त होते हैं। अन्ततः भगवान् शिव की कृपा प्राप्त करके शुभ-कर्मों के द्वारा उनका अज्ञान नष्ट हो जाता है। वे मोक्ष प्राप्त कर भगवान् शिव से एकाकार हो जाते हैं।

'पाश' बन्धन है। बन्धनों के जाल के अविद्या अथवा अनवमल, कर्म और माया प्रभेद किये गये हैं। अनवमल अहन्ता है। यह अहन्ता आत्मा की ससीमता की भ्रामक धारणा की विकृति के कारण है। आत्मा ने स्वयं को ससीम कल्पित करके देह से तथा उसके सीमित ज्ञान और सीमित शक्ति से जोड़ लिया है। इसने स्वयं का नाशवान् शरीर से तादात्म्य स्थापित कर लिया है। भ्रम से शरीर को ही अपना वास्तविक रूप मान लिया है और अपना वास्तविक स्वरूप भुला दिया है।

'कर्म' शरीरों का, विभिन्न शारीरिक भोगों का तथा जन्मों और मृत्युओं का कारण हैं। यह अनन्त हैं। चेतन आत्मा के, अचेतन देह से संयोजन के यही कारण हैं। यह अविद्या के सहायक हैं। यह मन, वाणी और कार्यों द्वारा होते हैं। यह पुण्य और पाप का रूप ले लेते हैं, फिर सुख और दुःख का कारण बनते हैं। यह सूक्ष्म व अदृष्ट हैं। यह सृष्टि के समय में होते हैं और प्रलय के समय में माया के आधार-तत्त्व में लीन हो जाते हैं। ये नष्ट नहीं होते। इनका फल भोगना ही पड़ता है।

'माया' जगत् का निमित्त कारण है। यह अचेतन अथवा अविद्या, सर्वव्यापक और अविनाशी है। यह जगत् का बीज है। देह से आरम्भ होने वाले तनु, कारण, भुवन और भोग, चारों वर्ग माया से ही उत्पन्न होते हैं। यह अपने समस्त परिवर्धन को व्याप्त कर देती है

तथा कार्मिक आत्माओं में विकृति का कारण बनती है। प्रलय के समय यह समस्त आत्माओं का मूल आश्रय-स्थल होती है। यह स्वयं ही आत्माओं के बन्धन का कारण होती है। इसमें यह सब प्रक्रम भगवान् शिव की शक्ति के संचार के प्रभाव के कारण है। जिस प्रकार तना, पत्ते और फल बीज में से विकसित होते हैं, ठीक उसी प्रकार काल से पृथ्वी तक समस्त सृष्टि माया में से प्रस्फुटित होती है।

ध्वनि का मूल वास्तविक नाद भगवान् शिव की इच्छा से शुद्ध माया से उत्पन्न होता है। नाद से वास्तविक बिन्दु प्रस्फुटित होता है। इससे वास्तविक सदाशिव का प्रकटीकरण होता है जो ईश्वर को जन्म देते हैं। यह विश्व बिन्दु में से प्रस्फुटित हो कर विभिन्न रूपाकारों में विकसित होता है।

साधना

व्यक्ति यदि अहंभाव से मुक्त हो जाये, तो उसकी भगवान् शिव के प्रति प्रेम व भक्ति विकसित होती है। चर्यै, क्रियै, योग और ज्ञान भगवान् शिव की प्राप्ति तथा अहंभाव को नष्ट करने के लिए चार साधनाएँ अथवा सोपान हैं। मन्दिर बनवाना, उनकी सफ़ाई करना, फूलों के हार बनाना, प्रभु के गुणगान करना, मन्दिरों में दीप जलाना, फुलवारियाँ लगाना 'चर्यै' है। पूजा-अर्चना करना 'क्रियै' है। इन्द्रियों का संयम करके आन्तरिक ज्योति पर ध्यान लगाना 'योग' है तथा पति, पशु व पाश के वास्तविक महत्त्व को समझ कर अहंता, कर्म व माया—तीनों के मलों को दूर करके शिव पर निरन्तर ध्यान केन्द्रित करके उनसे एक हो जाना ही 'ज्ञान' है।

सर्वव्यापक अनन्त परब्रह्म परमात्मा की बाह्य उपकरणों द्वारा उपासना 'चर्यै' कहलाती है। इसके लिए अपेक्षित उपक्रम 'साम्य दीक्षा' कहलाती है। विश्व के शाश्वत नियन्ता परब्रह्म परमात्मा के साकार रूप की बाह्य और आन्तरिक उपासना 'क्रियै' कहलाती है। निराकार रूप में उसकी आन्तरिक उपासना 'योग' कहलाती है। 'क्रियै' व 'योग' के लिए अपेक्षित दीक्षा को 'विशेष दीक्षा' कहते हैं। ज्ञान-गुरु के द्वारा भगवान् शिव की प्रत्यक्ष अनुभूति ही 'ज्ञान' कहलाती है। इस ओर ले जाने वाली दीक्षा 'निर्वाण-दीक्षा' कहलाती है।

जिज्ञासु को अनव, कर्म और माया—तीनों प्रकार के मलों से स्वयं को मुक्त कर लेना चाहिए। केवल तभी वह भगवान् शिव से एकरूप हो कर 'शिवानन्दम्' प्राप्त कर सकता है। उसे अपने अहं को पूर्णतया नष्ट कर लेना चाहिए, स्वयं को कर्मों के बन्धन से मुक्त कर लेना चाहिए और समस्त अशुद्धियों की मूल—माया का नाश कर देना चाहिए।

परम मोक्ष की प्राप्ति के लिए गुरु अथवा आध्यात्मिक शिक्षक अत्यन्त आवश्यक है। शिव पूर्ण कृपालु हैं। वे भक्तों की सहायता करते हैं। जो श्रद्धा और विश्वास के साथ उनकी उपासना करते हैं और उनमें बालसुलभ सरलता से पूर्ण विश्वास रखते हैं, उन पर वे अपनी कृपा की वर्षा करते हैं। शिव स्वयं ही गुरु हैं। शिव की कृपा ही मोक्ष का मार्ग है। शिव गुरु में निवास करते हैं और गुरु की आँखों से सच्चे साधक की ओर अत्यन्त गहन प्रेम से देखते हैं। यदि आप मानव मात्र से प्रेम करते हो, तभी भगवान् से प्रेम कर सकते हो।

यदि साधक स्वयं अपने और भगवान् शिव के बीच सम्बन्ध स्थापित कर लेता है, तो वह भक्ति में बहुत शीघ्र उन्नति करता है। वह दास्य भाव (सेवक और स्वामी का भाव) जैसे तिरुनावुकरसर का था; अथवा वात्सल्य भाव (जिसमें भगवान् शिव पिता और भक्त भगवान् का बालक हो) जैसे तिरुज्ञान सम्बन्धर का था; अथवा सख्य भाव (जिसमें भगवान् शिव से मित्र का सा भाव रखे) जैसे सुन्दरर का था; अथवा सन्मार्ग का भाव (जिसमें भगवान् शिव भक्त के लिए उसका जीवन ही हो) जैसे माणिक्कवाचकर का था या जो वैष्णवों का आत्म-निवेदन या माधुर्य भाव होता है, इनमें से वह कोई भी भाव रख सकता है।

जब तीनों मलों का नाश हो जाता है, तो भक्त भगवान् शिव के साथ जल में नमक की भाँति, दूध में दूध की भाँति एक हो जाता है; किन्तु वह सृष्टि-रचना इत्यादि पाँच कार्य नहीं कर सकता—यह पंचकृत्य तो भगवान् ही कर सकते हैं।

मुक्त आत्मा जीवन्मुक्त कहलाता है। यद्यपि वह शरीर में ही रहता है, तथापि वह परमात्मा से भावात्मक रूप से एक होता है। वह फिर से देह धारण करने (पुनर्जन्म) का कारण बनने वाले कर्म नहीं करता; क्योंकि वह अहंभाव से मुक्त होता है, इसलिए कर्म उसे बाँध नहीं सकते। वह लोक-संग्रह के लिए पुण्य कर्म करता है। जब तक वह अपने प्रारब्ध कर्म निःशेष नहीं कर लेता, तब तक वह अपनी देह में रहता है। भगवान् की कृपा से उसके समस्त क्रियमाण कर्म समाप्त हो जाते हैं। जीवन्मुक्त समस्त कार्य अपने अन्तर में स्थित भगवान् की प्रेरणा से करता है। भगवान् शिव और उनकी शक्ति धन्य है!

अष्टमूर्ति

शिव के आठ रूपों को अष्टमूर्ति कहा गया है। शिव की यह अष्टमूर्तियाँ हैं—पंच-तत्त्व, सूर्य, चन्द्र और यज्ञकर्ता-याजक।

क्षीरसागर-मन्थन के पश्चात् विष्णु मोहिनी-रूप में प्रकट हुए। शिव ने उनके उस रूप का आलिंगन किया। शास्ता शिव और मोहिनी से उत्पन्न हुआ। शास्ता को हरि-हर-पुत्र के नाम से भी पुकारा जाता है।

अप्पर चाहते थे कि समस्त शैव भक्त विष्णु को शिव का ही दूसरा रूप समझें। अप्पर के अनुसार शिव के तीन रूप हैं—(१) निम्न शिव जो सृष्टि का संहार करते तथा जीवों को बन्धन-मुक्त करते हैं। (२) उच्चतर परापर शिव। इसमें शिव और शक्ति अर्धनारीश्वर रूप में प्रकट होते हैं। इनका नाम परम-ज्योति है। ब्रह्मा और विष्णु भी इस ज्योति को जान नहीं पाये थे। (३) इन दोनों से परे परम रूप है, जिनमें से ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र प्रकट होते हैं। यह शिव का शुद्धतम रूप है। यह निराकार है। यह शैव-सिद्धान्त का शिवम् है। यह उपनिषदों और वेदान्तियों का परब्रह्म रूप है।

विष्णुपुराण के महाविष्णु, शैव-सिद्धान्तियों के परम के सदृश हैं। नारायण अथवा उच्चतर विष्णु शैवों के परम ज्योति के सदृश्य हैं। निम्न विष्णु पालन का कार्य करते हैं। वे निम्न शिव से मेल खाते हैं।

शैव के विष्णु द्वारा शिवोपासना के तथा वैष्णवों कें शिव द्वारा विष्णु की उपासना के जो समस्त संकेत मिलते हैं, उनका भीतरी अर्थ क्या है ? निम्न शिव को नारायण परापर, अथवा परम ज्योति को अपने से श्रेष्ठ मानना चाहिए। निम्न विष्णु को परम ज्योति अथवा परापर को स्वयं से श्रेष्ठ मानना चाहिए। उच्चतर विष्णु तथा उच्चतर शिव एक-समान हैं। वे परम से निम्न हैं।

शिव मोक्ष नामक उच्चतम स्थिति में कोई द्वैत नहीं है। वहाँ कोई कुछ नहीं देख सकता। व्यक्ति स्वयं को शिवम् अथवा परम में लीन कर देता है। यदि आप देखना चाहते हैं, तो आपको एकदम उच्चतम से नीचे के स्तर पर आना पड़ेगा।

शिवमूर्ति अथवा प्रकटीकरण वास्तविक शिवम् जो कि निराकार हैं, से निम्न हैं :

शैव-सिद्धान्त दर्शन के अनुसार कुल तत्त्व ९६ हैं, वे इस प्रकार हैं—२४ आत्म-तत्त्व, १० नाड़ियाँ, ५ अवस्थाएँ, ३ मल, ३ गुण (सत्त्व, रज, तम), ३ मण्डल (सूर्य, अग्नि, चन्द्र), ३ मनोदशाएँ (वात, पित्त, श्लेष्मा), ८ विकार (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, दम्भ, असूया), ६ आधार, ७ धातुएँ, १० वायु, ५ कोष तथा ९ द्वार। २४ तत्त्व हैं—५ भूत, ५ तन्मात्राएँ (शब्द इत्यादि), ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ और ४ कारण (मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार)। यह समस्त ९६ तत्त्व शरीर से सम्बन्धित हैं। इन ९६ के अतिरिक्त ५ कंचुक हैं। वे हैं—नियति, काल, कला, राग और विद्या। यह पंच-देह के भीतर तक जा कर भीतर के इन तत्त्वों को क्लान्त करके शरीर पर प्रभाव डालते हैं।

शुद्ध शैव

शुद्ध शैव केवल 'क्रिया' ('क्रियै') के द्वारा अन्तिम मुक्ति प्राप्त नहीं करते। वह केवल सालोक्य प्राप्त करते हैं। क्रिया का ज्ञान सालोक्य (शिव के स्थान) की प्राप्ति करवाता है। चर्या के ज्ञान (चर्यै) से सामीप्य (शिव की निकटता) की उपलब्धि होती है। 'योग' के ज्ञान से सारूप्य (शिव के स्वरूप) की प्राप्ति होती है। 'नाम' के ज्ञान से सायुज्य (लीन हो जाने) की प्राप्ति होती है।

'अम्बलम्' का अर्थ है—हृदय का खुला क्षेत्र या चिदाकाश अथवा चिदम्बरम्।

और लिंगम् है विश्व-रूप।

जो विश्व का संहार करते हैं, वह हैं शिव अथवा रुद्र। यही कारण है कि उन्हें ब्रह्मा और विष्णु से श्रेष्ठ माना गया है।

'सिद्धान्ती' जीव और पशु को तीन भागों में विभक्त करते हैं—विज्ञान कलर, प्रलय कलर और सकलर। विज्ञान कलर में केवल अनव मल (अहंता) है। प्रलय कलर में अनव और माया है। सकलर में समस्त मल, अनव, कर्म और माया हैं। मलों का प्रभाव केवल जीवों पर होता है, शिव पर नहीं। जो मलों से मुक्त हो गये हैं, वे शिव के समरूप हो जाते हैं। वे सिद्ध होते हैं।

अध्याय ४

प्रतीक दर्शन

प्रतीक दर्शन

भगवान् शिव ब्रह्म के संहारकारी रूप को द्योतित करते हैं। ब्रह्म का वह अंश, जो तमोगुण प्रधान माया द्वारा आच्छादित है, वह भगवान् शिव हैं—वे भगवान् शिव जो सर्वव्यापक ईश्वर हैं, जो कैलास पर्वत पर रहते हैं। वे ज्ञान के भण्डार हैं। पार्वती, काली अथवा दुर्गा से रहित जो शिव हैं, वह स्वयं ही निर्गुण ब्रह्म हैं। माया-पार्वती के सहित वे अपने भक्तों की पावन भक्ति के लिए सगुण ब्रह्म बन जाते हैं। राम के भक्तों को राम की भक्ति से पूर्व तीन से छह मास तक भगवान् शिव की उपासना अवश्य करनी चाहिए। स्वयं राम ने प्रसिद्ध रामेश्वर में भगवान् शिव की पूजा की थी। भगवान् शिव दिगम्बर वेश में तपस्वियों के भगवान् हैं, योगियों के भगवान् हैं।

उनके दक्षिण हस्त में धारण किया हुआ त्रिशूल तीन गुणों—सत्त्व, रजस् और तमस् का प्रतीक है। यह प्रभुत्व को सूचित करता है। वे इन तीनों गुणों के द्वारा जगत् का नियन्त्रण करते हैं। उनके वाम हस्त में धारण किया हुआ डमरू 'शब्द ब्रह्म' का प्रतीक है। यह उस ॐ का प्रतीक है, जिसमें से समस्त भाषाएँ बनी हैं। उन्होंने ही अपने डमरू में से संस्कृत भाषा की रचना की है।

अर्ध-चन्द्र यह सूचित करता है कि उन्होंने मन पर पूर्णतया नियन्त्रण कर लिया है। गंगा का प्रवाह अनश्वरता के अमृत का द्योतक है। गज अभिमान का प्रतीकात्मक प्रकटन होता है। गज-चर्म धारण करने का अर्थ है कि उन्होंने अभिमान को नियन्त्रित कर लिया है। सिंह काम का सूचक माना गया है। उनका बाघम्बर पर बैठना यह प्रकट करता है कि उन्होंने काम-लालसा को जीत लिया है। एक हाथ में मृग को पकड़े हुए होना इस बात को सूचित करता है कि उन्होंने मन की चंचलता को दूर कर दिया है। मृग बहुत शीघ्रता से एक स्थान से दूसरे स्थान पर कूदता रहता है। उनका सर्पों को धारण करना ज्ञान और शाश्वतता का प्रतीक है। सर्प दीर्घजीवी होते हैं। वे त्रिलोचन—तीन नेत्रधारी हैं। मस्तक के मध्य में तृतीय नेत्र ज्ञान-चक्षु है।

भगवान् शिव का बीज अक्षर ॐ है।

वे शिवम्, सुन्दरम्, कान्तम् हैं। ''शान्तं शिवं अद्वैतम्'' (माण्डूक्य उपनिषद्)।

मैं उन भगवान् शिव के चरणारविन्दों में करबद्ध नतमस्तक हो कोटि-कोटि प्रणाम करता हूँ, जो अद्वय हैं, जो अधिष्ठान हैं, समस्त जगत् और समस्त हृदयों के जो सत्-चित्-आनन्द हैं, जो सर्वनियन्ता, अन्तर्यामी, सबके साक्षी हैं, जो स्वयंप्रकाश, स्वयंस्थित और परिपूर्ण हैं; जो आदिकालीन अविद्या को दूर करने वाले हैं और जो आदि-गुरु अथवा परम-गुरु अथवा जगद्-गुरु हैं।

अपने सार रूप में मैं वही हूँ! शिवोऽहं, शिवोऽहं, शिवोऽहम्!

भगवान् शिव का सर्प-धारण

सर्प जीवात्मा है, जिसे शिव परमात्मा धारण किये हुए हैं। सर्प के पंच-मुखों का अर्थ पंच-तत्त्वं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश अथवा पाँच इन्द्रियों से है। वह पाँच प्राणों का भी प्रतीक है जो सर्प की फुंकार की भाँति शरीर में प्रवाहित होते हैं। श्वास-प्रश्वास की ध्वनि सर्प की फुंकार की भाँति होती है। पाँच तन्मात्राएँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा अन्य पाँच-पाँच के समूह शिव स्वयं ही हैं। जीवात्मा इन्हीं तत्त्वों के माध्यम से संसार के विषयों को भोगता है। जब व्यक्ति इन्द्रियों को नियन्त्रित करके ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब उसे सालोक्य (भगवान् शिव के लोक में स्थायी निवास) की प्राप्ति होती है। भगवान् शिव के सर्प धारण करने का यह गुह्य अर्थ है।

भगवान् शिव पूर्णतया निर्भय हैं। श्रुतियों का कथन है—''यह ब्रह्म अभयम् है, अमृतम् है।'' सांसारिक व्यक्ति साँप को देख कर ही भयभीत हो जाते हैं, परन्तु भगवान् शिव सर्पों को आभूषण की भाँति शरीर पर धारण किये हुए हैं। यह स्पष्ट करता है कि भगवान् शिव पूर्णतया निर्भय और शाश्वत हैं।

प्राय: सर्प दीर्घजीवी होते हैं। भगवान् शिव का सर्प-धारण करना उनके शाश्वत होने को सूचित करता है।

भस्म, नन्दी इत्यादि का अर्थ

'नम: शिवाय' भगवान् शिव का मन्त्र है। **'न'** पृथ्वी और ब्रह्म का प्रतीक है। **'म'** जल और विष्णु का, **'शि'** अग्नि और रुद्र का, **'वा'** वायु और महेश्वर का तथा **'य'** आकाश तथा सदाशिव और जीव का भी प्रतीक है।

भगवान् शिव गौर वर्ण हैं। गौर वर्ण का क्या महत्त्व है? वे मौन रूप से यह शिक्षा देते हैं कि हमें हृदय शुद्ध रखना चाहिए और विचार भी शुद्ध रखने चाहिए तथा कुटिलता, चतुराई, धूर्तता, ईर्ष्या व घृणा इत्यादि से दूर रहना चाहिए।

वे अपने मस्तक पर विभूति की तीन रेखाएँ धारण किये रहते हैं। इसका क्या महत्त्व है? वे मौन रूप से यह शिक्षा देते हैं कि लोगों को तीनों अशुद्धियों (अहंता, सकाम कर्म और माया), तीनों एषणाओं (धन, धरा और नारी की एषणा), तथा तीनों वासनाओं (लोक वासना, देह वासना और शास्त्र वासना) को नष्ट कर देना चाहिए और फिर शुद्ध हुए हृदय के द्वारा उन्हें (भगवान् को) प्राप्त कर लेना चाहिए।

भगवान् शिव के परम पावन मन्दिर-गर्भगृह के समक्ष का बलिपीठ किसका द्योतक है? इसका अर्थ यह है कि हमें ईश्वर-प्राप्ति से पूर्व अपनी अहंता और ममता को नष्ट कर देना चाहिए।

शिवलिंग के समक्ष नन्दी क्या दर्शाता है? नन्दी शिव का द्वारपाल अथवा सेवक है। वह भगवान् शिव का वाहन है। वह सत्संग का प्रतीक है। यदि आप सन्तों का संग करेंगे, तो आपको भगवत्-प्राप्ति अवश्य होगी। सन्त आपको उन तक पहुँचने का पथ दर्शायेंगे। वे आपके मार्ग में पड़े हुए पत्थरों या उलझनों को दूर कर देंगे और आपके हृदय में वैराग्य, विवेक तथा ज्ञान भर देंगे। निर्भयता और अमरत्व के दूसरे तट पर पहुँचने के लिए सत्संग से अधिक सुरक्षित नाव और कोई नहीं है। सांसारिक बुद्धि वाले व्यक्तियों और जिज्ञासुओं के लिए एक क्षण का भी सत्संग अथवा सन्तों का साथ एक महान् वरदान है। सत्संग के द्वारा उन्हें परमात्मा के अस्तित्व में दृढ़ विश्वास उत्पन्न होता है। सन्त सांसारिक संस्कारों को दूर करते हैं। सन्तों का सान्निध्य व्यक्ति की माया के आकर्षण से रक्षा करने के लिए एक दुर्जेय दुर्ग है।

भगवान् शिव परमात्मा के संहारकारी पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे कैलास पर्वत पर समाधिस्थ दिखायी देते हैं। वे पवित्रता, संसार के प्रति त्याग तथा विरक्ति के भाव की प्रतिमूर्ति हैं। उनके मस्तक के मध्य का तीसरा नेत्र विध्वंसक शक्ति का प्रतीक है जो जब भी खुलता है—संसार का विनाश कर देता है। नन्दी उनका विशेष प्रेमपात्र है। वह द्वारपाल है। वह समस्त प्रकृति को मौन करवाता हुआ प्रतीत होता है जिससे कि भगवान् की समाधि में बाधा न हो। भगवान् के पाँच मुख, दस हाथ, दस नेत्र और दो चरण हैं।

वृषभ अथवा बैल धर्म देवता का प्रतीक है। भगवान् शिव बैल की सवारी करते हैं। वृषभ उनका वाहन है। यह सूचित करता है कि भगवान् शिव धर्म के रक्षक हैं; धर्म और धर्मपरायणता की प्रतिमूर्ति हैं।

'मृग' वेदों का प्रतीक है। इसकी चार टाँगें चारों वेदों की प्रतीक हैं। भगवान् शिव ने अपने हाथ से मृग को पकड़ा हुआ है। यह प्रकट करता है कि वे वेदों के प्रदाता ईश्वर हैं।

उनके एक हाथ में खड्ग है। यह प्रकट करता है कि वे जन्म-मरण का विनाश करते हैं। उनके एक हाथ में धारण की हुई अग्नि यह दर्शाती है कि वे जीवों के पापों को जला कर उनकी रक्षा करते हैं।

अभिषेक का दर्शन

वरदाता भगवान् शिव को प्रणाम है! उमापति को, पशुपति को, समस्त जीवों के नाथ को प्रणाम है!

"अलंकारप्रिय विष्णु, अभिषेक प्रिय शिव—भगवान् विष्णु को अलंकार (सुन्दर वस्त्र, आभूषण इत्यादि) अति प्रिय हैं। भगवान् शिव को अभिषेक प्रिय है।" भगवान् शिव के मन्दिरों में एक ताँबे अथवा पीतल का घड़ा—जिसके मध्य में सुराख होता है—शिवमूर्ति या शिवलिंग के ऊपर लटकाया रहता है, जिसमें जल भरा होता है और यह जल सुराख में से मूर्ति के ऊपर रात्रि-दिवस निरन्तर टपकता रहता है। शिवलिंग के ऊपर जल, दूध, घृत, मधु, नारियल पानी और पंचामृत इत्यादि चढ़ाना अभिषेक कहलाता है। अभिषेक भगवान् शिव के लिए होता है। अभिषेक के साथ-साथ रुद्री का पाठ होता है। भगवान् शिव अभिषेक से अत्यन्त सन्तुष्ट होते हैं।

भगवान् शिव ने समुद्र से निकलने वाले हलाहल का पान किया था और अपने मस्तिष्क को शीतल रखने के लिए गंगा और चन्द्रमा को शिर पर धारण कर लिया था। उनका तृतीय नेत्र अग्नि-नेत्र है। निरन्तर अभिषेक से यह तीसरा नेत्र शान्त रहता है।

उच्चतम और महानतम अभिषेक तो हृदय में स्थित आत्मलिंग पर शुद्ध प्रेम रूपी जल चढ़ाना है। विभिन्न द्रव्यों द्वारा बाह्य अभिषेक से भगवान् के प्रति श्रद्धा और भक्ति विकसित होती है और यह अन्ततः शुद्ध प्रेम-प्रवाह से होने वाले आन्तरिक अभिषेक की ओर अग्रसर होती है।

अभिषेक शिवोपासना का एक अंग है। अभिषेक के बिना शिवोपासना अधूरी है। अभिषेक के समय रुद्री, पुरुषसूक्त, चमकम्, महामृत्युंजय जप इत्यादि का एक विशेष लय और विशेष ढंग से पाठ होता है। सोमवार और प्रदोष (त्रयोदशी) भगवान् शिव के विशेष

और पवित्र दिन होते हैं। इन दिनों में शिव-भक्त उनकी विशेष पूजा, एकादश रुद्री से अभिषेक, अर्चना, प्रसाद-वितरण और दीप-प्रज्वलन करते हैं।

एकादश-रुद्र अभिषेक में, अभिषेक के लिए प्रत्येक रुद्र के साथ भिन्न-भिन्न द्रव्य से अभिषेक होता है। गंगा-जल, दूध, घृत, मधु, गुलाब-जल, नारियल-जल, चन्दन, पंचामृत, सुगन्धित तेल, शर्करा-रस व नीबू का रस इत्यादि द्रव्य अभिषेक में प्रयुक्त होते हैं। प्रत्येक अभिषेक के पश्चात् भगवान् के शीश पर शुद्ध जल चढ़ाया जाता है। जब रुद्र पाठ होता है, तो रुद्र के पद्य के बाद विभिन्न द्रव्य एक-एक करके अर्पित किये जाते हैं। अभिषेक-जल अथवा अभिषेक में प्रयुक्त अन्य द्रव्य अत्यन्त पवित्र माने जाते हैं और जो भक्त इसे प्रसाद रूप में ग्रहण करते हैं, उनके लिए यह अत्यन्त वरदायक होते हैं। यह हृदय को शुद्ध करके असंख्य पापों को नष्ट करते हैं। इन्हें बहुत भक्ति व भाव सहित ग्रहण करना चाहिए।

जब आप भाव और भक्ति से अभिषेक करते हैं, तो आपका मन एकाग्र हो जाता है। आपका हृदय प्रभु की छवि से और दिव्य विचारों से भर जाता है। आप अपनी देह को, इसके सम्बन्धों को तथा बाह्य वातावरण को भूल जाते हैं। धीरे-धीरे अहं भाव नष्ट हो जाता है। जब यह विस्मृति हो जाती है, तब आपको भगवान् शिव की शाश्वत कृपा के आनन्द की अनुभूति आरम्भ होती है। रुद्र का पाठ अथवा **ॐ नमः शिवाय** का जप आपके मन को शुद्ध करके सत्त्व से परिपूर्ण कर देता है।

यदि आप किसी रोग से पीड़ित व्यक्ति के लिए रुद्र पाठ सहित अभिषेक करें, तो वह शीघ्र ही उस रोग से मुक्त हो जायेगा। अभिषेक द्वारा असाध्य रोग भी दूर हो जाते हैं। अभिषेक स्वास्थ्य, धन-सम्पदा, सन्तान इत्यादि प्रदान करता है। सोमवार को अभिषेक करना अत्यन्त शुभ होता है।

भगवान् को दूध, मधु, पंचामृत इत्यादि अर्पित करने से देहाध्यास समाप्त होता है। स्वार्थ भाव धीरे-धीरे नष्ट हो जाता है। आपको अत्यधिक आनन्द की प्राप्ति होती है। आप भगवान् को और अधिक अर्पण करना आरम्भ कर देते हैं। इस प्रकार आत्म-त्याग और आत्म-समर्पण सहज रूप से विकसित होने लगता है। आपके हृदय में ऐसे उद्गार—'मैं आपका हूँ प्रभु! मेरा सर्वस्व आपका है।' प्रस्फुटित होने लगते हैं।

कण्णप्प नयनार, जो कि एक शिकारी था किन्तु महान् शिव भक्त था, ने दक्षिण भारत में कालहस्ति में शिवलिंग पर अभिषेक के लिए अपने मुख में जल भर कर अर्पित किया और भगवान् शिव को प्रसन्न कर लिया। भगवान् शिव शुद्ध भक्ति भाव से सन्तुष्ट होते हैं। मानसिक भाव का ही महत्त्व है, बाह्य प्रदर्शन का नहीं। भगवान् शिव ने मन्दिर के

पुजारी से कहा—''मेरे भक्त कण्णप्प के मुख द्वारा अर्पित यह जल गंगा-जल से भी अधिक पवित्र है।''

भक्त को भगवान् का अभिषेक नियमित रूप से करना चाहिए। उसे रुद्र और चमक कण्ठस्थ होने चाहिए। एकादश रुद्र अधिक प्रभावशाली है। उत्तर भारत में प्रत्येक स्त्री और पुरुष एक लोटा जल शिवलिंग पर चढ़ाते हैं। यह भी लाभदायक है और कामनाओं की पूर्ति करने वाला है। शिवरात्रि को अभिषेक करने का अत्यधिक महत्त्व है।

आप सब रुद्र पाठ करें, जिसमें भगवान् शिव की महिमा का वर्णन है! प्रत्येक जीव में, जड़-चेतन में उन्हीं के प्रकटीकरण की महिमा का वर्णन है ! आप सब नित्य-प्रति अभिषेक करके भगवान् शिव के कृपापात्र बनें! भगवान् विश्वनाथ आप पर प्रसन्न हों !

शिव-मन्दिर में अभिषेक और रुद्र जप का महत्त्व

चमक के ग्यारह विभाग किये गये हैं। फिर उनमें से प्रत्येक को नमक (रुद्र) के साथ मिला कर जप किया जाता है। यह रुद्र कहलाता है। ऐसे ग्यारह रुद्र को मिला कर एक लघु रुद्र बनता है। ग्यारह लघु रुद्र मिल कर एक महारुद्र बनता है। ग्यारह महारुद्र मिल कर एक अतिरुद्र बनता है।

आरम्भ में संकल्प, पूजा, न्यास, अंगन्यास, पंचामृत-स्नान और ध्यान के पश्चात् रुद्र पाठ आरम्भ किया जाता है। रुद्र जप के फल निम्नांकित हैं :

जप-संख्या	जप-फल
१ रुद्र	बाल-ग्रह से मुक्ति (बच्चों के रोगों का विनाश)
३ रुद्र	आसन्न कठिनाइयों से मुक्ति।
५ रुद्र	अनिष्टकारी ग्रहों के प्रभाव से मुक्ति।
७ रुद्र	भयंकर भय से मुक्ति।
९ रुद्र	वाजपेय बलि की फल-प्राप्ति तथा मानसिक शान्ति की प्राप्ति।
११ रुद्र	राज्य कृपा और अपार धन-प्राप्ति।
३३ रुद्र	विषयासक्ति और शत्रु का नाश।
७७ रुद्र	महान् सुख-प्राप्ति।

९९ रुद्र	पुत्र-पौत्र, धन-धान्य, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-प्राप्ति तथा मृत्यु पर विजय
१ महारुद्र	राज्य कृपा तथा अपार सम्पत्ति का स्वामित्व।
३ महारुद्र	असम्भव कार्यों की पूर्ति।
५ महारुद्र	अपार भूमि की प्राप्ति।
७ महारुद्र	सप्त लोकों की प्राप्ति।
९ महारुद्र	जन्म-मृत्यु से मुक्ति।
१ अतिरुद्र	परमात्म-तत्त्व-प्राप्ति।

अभिषेक के लिए द्रव्य—शुद्ध जल, दूध, शर्करारस, घृत, मधु, पवित्र नदियों का जल, सागर का जल।

वृष्टि के लिए शुद्ध जल से अभिषेक करना चाहिए। रोग-मुक्ति और पुत्र-प्राप्ति के लिए दूध से अभिषेक करना चाहिए। यदि दूध से अभिषेक किया जाये, तो वन्ध्या भी सन्तान प्राप्त कर सकती है तथा गौधन की भी प्राप्ति होती है।

यदि कुश-जल से अभिषेक किया जाये, तो समस्त रोगों की निवृत्ति होती है। जो धन की इच्छा करता हो, उसे घृत, मधु, शर्करा से अभिषेक करना चाहिए। जो मोक्ष चाहता हो, उसे पवित्र जल से अभिषेक करना चाहिए।

अध्याय ५

शिवताण्डव दर्शन

(१)

पादस्याविर्भवन्तीमवनतिमवने रक्षत: स्वैरपातै:
संकोचेनैव दोष्णां मुहुरभिनयत: सर्वलोकातिगानाम्।
दृष्टिं लक्ष्येवु नोग्रज्वलनकणमुचं बध्नतो दाहभीते-
रित्याधारानुरोधात् त्रिपुरविजयिन: पातु वो दु:खनृत्तम्॥

भगवान् शिव का ताण्डव अथवा दिव्य नृत्य नितान्त रोमांचक व मोहक है यह मुद्राओं तथा लय में उत्कृष्टतम, उत्तम व लालित्यपूर्ण और प्रभावपूर्ण है।

नृत्य अथवा ताण्डव शरीर के विभिन्न अंगों की, आन्तरिक भावों के साथ अवियोज्य पवित्र मुद्राएँ हैं। नृत्य एक दिव्य विज्ञान है। इस दिव्य नृत्य के आदि गुरु भगवान् शिव, कृष्ण और माँ काली थे। नृत्य में सृष्टि, संहार, विद्या, अविद्या, गति और अगति—इन षड्भावों का प्रदर्शन होता है।

भगवान् शिव का नृत्य जगत् के कल्याण के लिए है। उनके नृत्य का उद्देश्य जीवात्माओं को माया के पाश से मुक्त करना; अनव, कर्म और माया— तीनों के बन्धनों से मुक्त करना है। वे संहारक नहीं, पुनर्स्रष्टा हैं। वे मंगलदाता तथा आनन्ददाता हैं। वे भगवान् हरि से अधिक सुगमता से प्रसन्न होते हैं। वे थोड़ा-सा तप करने से अथवा थोड़ा-सा पंचाक्षर जप करने से शीघ्र ही वरदान दे देते हैं।

'अगड़बम' उनके नृत्य का गान है। जब शिव नृत्य करना आरम्भ करते हैं तो ब्रह्मा, विष्णु, शिव के गण तथा हाथ में खप्पर लिये हुए काली भी उनके इस नृत्य में सम्मिलित हो जाती है। क्या आपने प्रदोष-नृत्य का चित्र नहीं देखा? इससे आपको शिव-नृत्य का अनुमान हो जायेगा।

काली को अपनी नृत्य-योग्यता का दर्प था। शिव ने उसके अभिमान को कुचलने के लिए नृत्य करना आरम्भ किया। उन्होंने अत्यन्त सुन्दरता और अत्यन्त कलात्मकता से नृत्य किया। काली को लज्जा से सिर झुकाना पड़ा।

भगवान् शिव ऊपर के वाम हस्त में मृग धारण किये रहते हैं। उनके नीचे के दक्षिण हस्त में त्रिशूल रहता है। उनके पास अग्नि, डमरू और मालु नामक एक अस्त्र भी होता है। उन्होंने पाँच सर्प आभूषण के रूप में धारण किये होते हैं। वे नर-मुण्डों की माला पहनते हैं। वे हाथ में नाग पकड़े हुए मुयलक नामक वामन-असुर को अपने पग-तल में दबाये रहते हैं। उनका मुख दक्षिण की ओर है। पंचाक्षरी स्वयं उनकी देह है। भगवान् शिव कहते हैं—"सर्पों की तरह फुफकारती हुई पाँचों इन्द्रियों को नियन्त्रण में रखो। मन मृग की भाँति चंचल है। मन को नियन्त्रित करो। इसे ध्यान की अग्नि से जला कर नष्ट कर दो। विवेक के त्रिशूल से इसे समाप्त कर दो। तब तुम मुझे पा सकते हो।" यह भगवान् शिव के रूप का दार्शनिक महिमा-मण्डित चित्र है।

आप समुद्र की उठती हुई तरंगों में भगवान् शिव का नृत्य देख सकते हैं। मन के दोलन में, इन्द्रियों तथा प्राणों की गति में, नक्षत्रों और तारा-मण्डलों के आवर्तन में, दैवी प्रलय में, भयंकर बाढ़ में, ज्वालामुखी विस्फोटन में, भूकम्प में, भूस्खलन में, विद्युत् की चमक और बादलों की गर्जना में, भयंकर अग्निकाण्डों और चक्रवातों में आप उनके नृत्य के दर्शन कर सकते हैं।

भगवान् की इच्छा से जैसे ही गुणसाम्यावस्था में विघ्न पड़ता है, त्यों ही गुणों का प्रकटीकरण होता है और तत्त्वों का पंचगुणत्व होने लगता है। शब्द-ब्रह्म अथवा ओंकार की तरंगें उठती हैं। आदि शक्ति का प्राकट्य होता है। यह भगवान् शिव का नृत्य है।

समस्त ब्रह्माण्डीय लीला अथवा कार्य-कलाप उनका नर्तन है। वे प्रकृति की ओर दृष्टिपात करके उसमें शक्ति-संचार करते हैं। मन, प्राण और तत्त्व—सभी नृत्य करने लगते हैं। जब भगवान् नृत्य करने लगते हैं, तो शक्ति-तत्त्व का प्रकटीकरण होता है। शक्ति से नाद का आरम्भ होता है और नाद से बिन्दु का उद्भव होता है। तब नाम और रूपों का संसार प्रकट होता है। तब अव्यक्त तत्त्व, शक्ति और नाद व्यक्त हो जाते हैं।

श्मशान-भूमि भगवान् का निवास-स्थान है। रुद्र भगवान् शिव का संहारकारी रूप है। भगवान् शिव अपने दशभुजी रूप में काली के साथ श्मशान-भूमि में नृत्य करते हैं। शिव गण भी इस नृत्य में उनके साथ सम्मिलित होते हैं।

चिदम्बरम् नटराज नृत्य-प्रवीण हैं। वे चतुर्भुज हैं। वे अपनी जटाओं में गंगा और अर्ध चन्द्रमा को धारण किये हुए हैं। उनके दाहिने हाथ में डमरू है। अपने बायें हाथ को ऊपर उठा कर वे अपने भक्तों को अभय मुद्रा दिखाते हैं। इसकी महिमा है—"हे भक्त जन! भयभीत मत होओ! मैं तुम सबकी रक्षा करूँगा।" उन्होंने एक बायें हाथ में अग्नि धारण

की हुई है। दूसरा दाहिना हाथ नीचे नागधारी असुर मुयलक की ओर संकेत करता है। उन्होंने अपना बायाँ चरण अत्यन्त सुन्दरता से ऊपर उठाया हुआ है।

डमरू का शब्द जीवात्मा को उनके चरणों की ओर आकर्षित करता है। यह ओंकार का प्रतिनिधित्व करता है। संस्कृत भाषा की शब्दावली डमरू की ध्वनि से निकली है। सृष्टि की उत्पत्ति डमरू से हुई है। अभय मुद्रा दर्शाने वाला हाथ निर्भयता प्रदान करता है। अग्नि से संहार-क्रिया आरम्भ होती है। ऊपर उठा हुआ चरण माया का परिचायक है। नीचे की ओर संकेत करता हुआ हाथ यह दर्शाता है कि उनके चरण ही जीवात्माओं के लिए एकमात्र शरण-स्थान हैं। तिरुआक्षी प्रणव का परिचायक है।

चिदम्बरम् दक्षिण भारत का तीर्थस्थान है। सभी तमिल सन्तों ने नटराज का स्तुति-गान किया है। यहाँ आकाश लिंग है जो इसका परिचायक है कि भगवान् शिव निराकार और निर्गुण हैं। एक प्रसिद्ध कथन है—"मुख और हृदय में राम-नाम धारण किये हुए जिसकी मृत्यु काशी में होती है, उसे निर्वाण-प्राप्ति होती है। जो अरुणाचलम् अथवा तिरुवनमलै का स्मरण करता है, उसे मुक्ति मिलती है और जो नटराज के दर्शन करता है, उसे परम मोक्ष प्राप्त होता है।" वास्तविक चिदम्बरम् तो हृदय के भीतर है। जिन्होंने अहंता, काम, घृणा, अभिमान और ईर्ष्या को जला दिया है, उन भक्तों के हृदयों में नटराज नृत्य करते हैं।

वे अत्यन्त सौम्यता से नृत्य करते हैं। यदि वे तीव्रता से नृत्य करें, तो सारी धरती एकदम नीचे धँस जाये। वे अपने नेत्र बन्द करके नृत्य करते हैं, अन्यथा उनकी आँखों से निकलने वाले स्फुलिंग समस्त विश्व को नष्ट कर दें। भगवान् शिव की सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह नामक पंचक्रियाएँ उनके नृत्य ही हैं।

आप सब भगवान् शिव के नृत्य के वास्तविक महत्त्व को समझें! आप सब भगवान् शिव के नृत्य के साथ आनन्दातिरेक में नर्तन करें और उनमें ही लीन हो कर जीवन के परम आनन्द—शिवानन्द को भोगें।

(२)

भगवान् शिव साक्षात् प्रज्ञा हैं। वे ज्योतियों की ज्योति हैं। वे परम ज्योति हैं। भगवान् शिव का नृत्य विश्वात्मा की लय और गति का परिचायक है। उनके नृत्य से अनिष्टकर शक्तियाँ तथा अन्धकार काँप कर विलुप्त हो जाते हैं।

ब्रह्मा की रात्रि अथवा प्रलय के समय में प्रकृति जड़ निश्चल रहती है। तब गुण-साम्यावस्था होती है, जिसमें गुण-त्रय एक सम अवस्था में रहते हैं। जब तक भगवान्

की इच्छा नहीं होती, तब तक वह (प्रकृति) नृत्य नहीं कर सकती। भगवान् शिव अपने गहन मौन से उठते हैं और नृत्य करने लगते हैं। तब अव्यक्त नाद उनके डमरू की गति से उठने वाली तरंगों के द्वारा व्यक्त हो जाता है। शब्द-ब्रह्म का प्रकटीकरण होता है। अव्यक्त शक्ति भी अलग व्यक्त हो जाती है, गुणों की समता भंग हो जाती है। सत्त्व, रजस् और तमस् प्रकट होते हैं। समस्त ग्रह, अणु और विद्युदणु भी लय और क्रम में नृत्य करने लगते हैं। अणु परमाणुओं में, और परमाणु समस्त वस्तुओं में नृत्य करने लगते हैं। सितारे दिक्काल में नृत्य करने लगते हैं। प्रकृति भी उनकी विभूति के रूप में उनके चारों ओर नृत्य करने लगती है। प्राण आकाश में संचालन करने लगते हैं। विभिन्न आकार प्रकट होने लगते हैं। हिरण्यगर्भ का भी प्रकटीकरण हो जाता है।

जब समय आता है, तो भगवान् शिव नृत्य में ही अग्नि के द्वारा समस्त नाम-रूपों का संहार कर देते हैं। पुन: निश्चलता व्याप्त हो जाती है।

नटराज के रूप से सम्बद्ध यही प्रतीकात्मकता है। शिव के हाथ का मृग अशुद्ध माया का परिचायक है। कुठार अज्ञान को नष्ट करने वाले ज्ञान का प्रतीक है। डमरू, अग्नि को धारण करने वाला हाथ, गंगा और मुयलक असुर के ऊपर रखा हुआ पग—ये पाँचों निराकार सूक्ष्म पंचाक्षर हैं।

डमरू में सृष्टि है, अभय हस्त में स्थिति है, कुठारधारी हस्त में संहार है, नीचे दबाये हुए पग में तिरोभाव है और ऊपर उठे हुए पग में अनुग्रह है।

शिव के नृत्य विभिन्न प्रकार के हैं। संहार नृत्य है, पंच नृत्य हैं, षड नृत्य हैं, अष्ट नृत्य हैं, कोडुकोटि नृत्य, पण्डम् नृत्य और कोडु नृत्य है। प्रत्येक वस्तु के संहार के पश्चात् का नृत्य कोडु कोटि नृत्य है। पण्डम् नृत्य त्रिपुरों के संहार के पश्चात् उन पुरियों की भस्म को धारण करके किया गया नृत्य है। कोडु अथवा कपालम् ब्रह्मा के शीश को धारण करके किया गया नृत्य है। संहार प्रलय के समय का नृत्य है।

सृष्टि, स्थित, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह तथा मुनि ताण्डव, अनवरत ताण्डव और आनन्द ताण्डव मिल कर अष्ट ताण्डव नृत्य होते हैं। शिवानन्द नृत्य, सुन्दर नृत्य, स्वर्णिम नगर नृत्य, स्वर्णिम चिदम्बरम् नृत्य तथा अद्भुत नृत्य यह पंच नृत्य हैं। यही पाँच नृत्य तथा एक आनन्द नृत्य मिल कर षड नृत्य हैं।

भगवान् शिव ही एकमात्र नर्तक हैं। वे नृत्य-प्रवीण हैं। वे नृत्य-सम्राट् हैं। उन्होंने काली का दर्प चूर्ण किया। भगवान् शिव का केवल संहार ही एकमात्र कार्य नहीं है, अपितु एक कार्य-शृंखला है। प्रत्येक अवस्था के भिन्न-भिन्न नृत्य हैं।

महान् नर्तक भगवान् नटराज आपको परम आनन्द, शिवानन्द प्राप्ति में सहायक हों!

भगवान् नटराज—महान् नर्तक

'नमः शिवाय' का **'य'** अक्षर जीवात्मा का परिचायक है। पंचाक्षर **'नमः शिवाय'** भगवान् शिव की काया है। अग्नि धारण किया हुआ हाथ **'न'** है। मुयलक असुर को दबाने वाला चरण **'म'** है। डमरू धारण किया हुआ हाथ **'शि'** है। गतिशील दाहिना और बायाँ हाथ **'वा'** हैं। अभय हस्त **'य'** है।

एक बार कुछ ऋषियों ने वास्तविक भगवान् पर विश्वास खो कर कृत्रिम देवी-देवताओं की उपासना आरम्भ कर दी। भगवान् शिव की उन्हें शिक्षा देने की इच्छा हुई। उन्होंने विचित्र भावों से उन्हें उत्तेजित कर दिया। ऋषि अत्यन्त उन्मत्त हो गये। उन्होंने अपने तप-बल से बहुत-सी अनिष्टकारी शक्तियाँ रच कर भगवान् पर छोड़ना आरम्भ कर दिया। भगवान् शिव ने सबको पराजित कर दिया और दिव्य नृत्य द्वारा अन्ततः उनके द्वारा रचित महाकाली को भी पराजित कर दिया।

श्री नटराज के नृत्य के समय पतंजलि ऋषि और व्याघ्रपाद भी दर्शक हो कर आनन्द पा रहे थे। वे भगवान् के दोनों ओर खड़े थे। नटराज मूर्ति के चित्रों में भी आप एक ओर पतंजलि और दूसरी ओर व्याघ्रपाद को देख सकते हैं; व्याघ्रपाद के शरीर का अधोभाग सिंह से तथा पतंजलि का सर्प से मिलता है।

नटराज का सबसे अद्भुत नृत्य 'ऊर्ध्वताण्डव है'। इस नृत्य में बायीं टाँग ऊपर को उठी हुई तथा चरण का अग्रभाग आकाश की ओर इंगित करता है। यह नृत्य की कठिनतम मुद्रा है। नटराज ने काली को नृत्य में इसी मुद्रा से पराजित किया था। काली ने नटराज के समक्ष नृत्य की अन्य सभी मुद्राओं को सफलतापूर्वक निभाया। नृत्य करते हुए नटराज भगवान् का कर्ण-आभूषण गिर गया। वे इस नृत्य-मुद्रा द्वारा पग-अग्रभाग से दर्शकों के बिना जाने कर्णाभूषण उठा कर अपने स्थान पर पहुँचा देने में सफल हुए।

नटराज ने अपनी दाहिनी टाँग ऊपर की ओर उठाये हुए भी नृत्य किया। यह नृत्य की गजहस्त मुद्रा है। एक बार भी टाँग को बदले बिना वे निरन्तर नृत्य करते रहे।

भगवान् शिव के नृत्य की एक अन्य मुद्रा हाथी के सिर के ऊपर भी है। इस मुद्रा में भगवान् शिव को 'गजासनमूर्ति' नाम से जाना जाता है। भगवान् शिव के चरण के नीचे असुर-गज का शीश है। भगवान् शिव के अष्ट हस्त हैं। तीन दक्षिण हाथों में वह त्रिशूल, डमरू और पाश धारण किये हुए हैं। दो वाम हस्तों में ढाल और मुण्ड हैं। तीसरे वाम हस्त में विस्मय मुद्रा धारण की हुई है।

वाराणसी में विश्वनाथ लिंग के चारों ओर ध्यान में लीन बैठे हुए ब्राह्मणों का वध करने के लिए एक असुर ने हाथी का रूप धारण कर लिया। भगवान् शिव ने तत्क्षण लिंग से प्रकट हो कर उस असुर हाथी का वध कर दिया और उसके गज-चर्म को अपने वस्त्र के रूप में धारण कर लिया।

शिव-नृत्य

उन्नीस सौ चौबीस में ऋषिकेश में
भयंकर बाढ़ आयी,
जो अनेक महात्माओं और साधुओं को बहा ले गयी;
यह है शिव-नृत्य!

प्रचण्ड चन्द्रभागा ने,
१९४३ में अपना मार्ग बदल लिया;
लोग कठिनाई से हाथी की सहायता से
इसे पार कर पाते थे;
यह है शिव-नृत्य!

११ जनवरी १९४५ की प्रातः
निकटवर्ती हिमालय पर हिमपात हुआ,
भयंकर शीत पड़ा,
यह है शिव-नृत्य!

जहाँ एक समय वन था,
वहाँ निवास है अब भगवान् विश्वनाथ का,
वे समस्त विश्व को आनन्द देते हैं,
स्वास्थ्य और दीर्घायु देते हैं,
यह है शिव-नृत्य!

वन बन जाते हैं आश्रम,
द्वीप हो जाते सागर,
सागर बनता द्वीप,
नगर हो जाते मरुस्थल,
यह है शिव-नृत्य!

शिव देखते हैं शक्ति की ओर,
तब होता परमाणवी नृत्य,
यह नृत्य है प्रकृति का,
भगवान् शिव होते मात्र द्रष्टा,
यह है शिव-नृत्य!

तब होते प्राण प्रदोलित, मन चलायमान,
इन्द्रियाँ कार्यरत, बुद्धि कर्मशील,
हृदय धड़कता, फुफ्फुस होते प्रश्वसित,
उदर पचाता, आँतें करती उत्सर्जित,
यह है शिव-नृत्य!

यह जगत् है परिवर्तनशील,
परिवर्तन है नाशवान्,
अनश्वर को जानो
जो है अपरिवर्तनशीलऔर तब बनो अनश्वर!

अध्याय ६

शक्ति योग दर्शन

(१)

सर्वव्यापी परमात्मा का क्रियात्मक रूप शक्ति है। शक्ति साकार बल अथवा क्षमता है। यह विशाल सृष्टि की रक्षक हैं। विश्व को धारण करने वाली पराशक्ति हैं। वह जगन्माता हैं। वही दुर्गा, काली, चण्डी, चामुण्डी, त्रिपुरसुन्दरी, राजेश्वरी हैं। ईश्वर और उनकी शक्ति में उसी प्रकार कोई भिन्नता नहीं है जैसे अग्नि और उसकी ज्वलनशील शक्ति में कोई भिन्नता नहीं।

जो शक्ति अर्थात् परमात्मा की माँ के रूप में, उनको स्रष्टा, धारक और संहारक पराशक्ति मान कर उपासना करता है, उसे शाक्त कहते हैं। समस्त नारियाँ उस पराशक्ति दिव्य माँ का ही स्वरूप हैं।

शिव अपरिवर्तनीय चैतन्य हैं। शक्ति उनका परिवर्तनशील रूप है जो मन और तत्त्व के रूप में प्रकट होता है। शक्तिवाद अथवा शाक्त दर्शन अद्वैतवाद का ही रूप है।

शाक्त साधना के द्वारा शक्तियाँ जागृत करने से देह के भीतर ही शिव और शक्ति का संयोग होता है। जब वह षड्चक्र भेदन करके कुण्डलिनी जागृत कर लेता है, तब वह सिद्ध हो जाता है। यह सब किसी 'पूर्ण-ज्ञान-प्राप्त गुरु' के निर्देशन में विधिवत् ढंग से करना चाहिए। शक्ति को ध्यान के द्वारा, भाव के द्वारा, जप के द्वारा और मन्त्र-शक्ति के द्वारा ही जागृत करना चाहिए। पचास अक्षरों की साकार रूप—शक्ति माँ, विभिन्न अक्षरों में भिन्न-भिन्न चक्रों में विद्यमान हैं। जब वाद्य-यन्त्र की तारों को लय में स्पर्श किया जाता है, तो सुमधुर संगीत उत्पन्न होता है। इसी प्रकार जब अक्षरों की तारों को उनके क्रम से स्पर्श किया जाता है, तो षड्चक्रों में विचरने वाली माँ, जो स्वयं अक्षर रूप ही हैं, स्वयं जागृत हो जाती हैं। यह कहना कठिन है कि वह किस साधक को कब और कैसे दर्शन दें। साधना का अर्थ है—शक्ति को जागृत करना। साधना की पद्धति साधक की प्रवृत्तियों तथा क्षमताओं पर निर्भर करती है।

जिसके द्वारा हम इस विश्व में जीवित रहते हैं, उसके आधार पर शक्ति का नाम रखा जा सकता है। इस संसार में एक बालक की समस्त आवश्यकताएँ माता के द्वारा पूर्ण होती

हैं। बालक का पालन-पोषण, विकास, उसका आहार इत्यादि सब माँ ही देखती है। इसी प्रकार इस जगत् में जीवन की समस्त आवश्यकताएँ और क्रियाकलाप तथा उन सबके लिए आवश्यक सामर्थ्य जगन्माता शक्ति माँ पर ही निर्भर हैं।

माँ की कृपा के बिना कोई भी व्यक्ति स्वयं को मन और विषयों की दासता से मुक्त नहीं कर सकता। माया के बन्धन इतने दृढ़ हैं कि तोड़े नहीं जा सकते। यदि आप उनकी देवी माँ के रूप में उपासना करें, तो उनके कृपापूर्ण अनुग्रह और वरदान से बहुत सुगमता से प्रकृति से परे जा सकते हैं। वे आपके मार्ग की समस्त बाधाओं को दूर कर देंगी और आपको निश्चित रूप से परम आनन्द के असीम क्षेत्र में ले जा कर मुक्त कर देंगी। जब वे प्रसन्न हो कर आपके ऊपर अपनी कृपा-वृष्टि करेंगी, केवल तभी आप इस दुर्जेय संसार के बन्धन से स्वयं को मुक्त कर पायेंगे।

कोई भी शिशु अथवा चौपाए जीव का बच्चा जो प्रथम अक्षर उच्चारित करता है, वह उसकी प्रिय माँ का नाम है। क्या कोई भी ऐसा बालक होगा जो अपनी माता के प्यार और स्नेह का ऋणी न हो। यह माँ ही है जो आपकी रक्षा करती है, आपको सान्त्वना देती है, आपको उत्साहित करती और आपका पालन करती है। वह समस्त जीवन में आपकी मित्र, आपकी चिन्तक, रक्षक तथा निर्देशक है। मानवीय माता जगन्माता का ही प्रत्यक्ष रूप है।

परमात्मा का प्रकट स्वरूप शिव हैं तथा उनकी शक्ति की परिचायक उनकी पत्नी के रूप में शक्ति, दुर्गा अथवा काली हैं। जिस प्रकार पति-पत्नी अपने परिवार के कुशल-क्षेम को देखते हैं, ठीक उसी प्रकार भगवान् शिव तथा उनकी शक्ति विश्व के कल्याण में लगे हुए हैं।

राधा, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती तथा सावित्री—ये प्रकृति अथवा देवी के पाँच मूल रूप हैं। दुर्गा ने विष्णु के द्वारा मधु और कैटभ का विनाश किया। महालक्ष्मी के रूप में उसने महिषासुर का वध किया तथा सरस्वती के रूप में उसने शुम्भ व उनके साथी धूम्रलोचन, चण्ड-मुण्ड और रक्तबीज का संहार किया।

जब विष्णु और महादेव ने विभिन्न असुरों का संहार किया, तो उनके पीछे देवी की शक्ति थी। देवी ने ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र को सृष्टि, स्थिति और संहार कार्य के लिए आवश्यक शक्ति प्रदान की। वे विश्व के केन्द्र में स्थित हैं। हमारे शरीर में वह मूलाधार चक्र में हैं। वह सुषुम्ना के द्वारा शरीर को प्राण-शक्ति प्रदान करती हैं। वह मेरु पर्वत के शिखर से विश्व में प्राण संचारित करती हैं।

शक्ति दर्शन की इस पद्धति में शिव सर्वव्यापक, निराकार तथा निष्क्रिय हैं। वे शुद्ध चैतन्य हैं। शक्ति सक्रिय है। शिव और शक्ति का सम्बन्ध प्रकाश और विमर्श का है। शक्ति अथवा विमर्श क्षमता है जो शुद्ध चैतन्य में अव्यक्त है। विमर्श भिन्नताओं के जगत् को उत्पन्न करता है। शिव चित् हैं, शक्ति चिद्रूपिणी है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश अपने सृष्टि, पालन और संहार के कार्य शक्ति की आज्ञा से सम्पन्न करते हैं। शक्ति इच्छा, ज्ञान व क्रिया से सम्पन्न है। शिव और शक्ति एक हैं। शिव-तत्त्व तथा शक्ति-तत्त्व परस्पर अविभाज्य हैं। शिव सदैव शक्ति के साथ हैं। शाक्त दर्शन में ३६ तत्त्व हैं। शक्ति शक्ति-तत्त्व में हैं, नाद सादक्य-तत्त्व में है, बिन्दु ईश्वर-तत्त्व में है। परम शिव का सृष्टि-तत्त्व शिव-तत्त्व कहलाता है। शिव-तत्त्व प्रथम सृष्टि-चेष्टा है। शक्ति-तत्त्व शिव की इच्छा है। यह समस्त जगत् का बीज और योनि है।

प्रथम प्रकटीकरण सादक्य अथवा सदाशिव कहा गया है। इस तत्त्व में विचारों की उत्पत्ति आरम्भ होती है। इस तत्त्व में नाद-शक्ति है। फिर ईश्वर-तत्त्व है। इसे बिन्दु कहते हैं। चौथा तत्त्व विद्या अथवा शुद्ध विद्या है। तब प्रकृति मन, इन्द्रियों और विषयों के तत्त्वों में रूपान्तरित हो कर जगत् की संरचना करती है।

नाद, बिन्दु आदि सभी शक्ति के विभिन्न रूपों के नाम हैं। नाद ही वास्तविक शिव-शक्ति हैं। शिव के दो पक्ष हैं। एक रूप में वे परम अपरिवर्तनशील सच्चिदानन्द हैं। ये परा संवित (परब्रह्म) हैं। दूसरे रूप में वे जगत् के साथ-साथ परिवर्तित होते हैं। परिवर्तन का कारण शिव-तत्त्व है। यह शिव-तत्त्व और शक्ति-तत्त्व परस्पर अविभाज्य हैं। शक्ति-तत्त्व ब्रह्म का प्रथम सक्रिय रूप है।

निष्कल शिव, निर्गुण शिव हैं। उनका सक्रिय शक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं है। माया अथवा प्रकृति शक्ति की योनि में ही हैं। माया संसार का गर्भाशय है। विलयन की अवस्था में माया शक्ति-सम्पन्न है। वह सृष्टि-रचना में सक्रिय है। शक्ति के निर्देशन में माया अनेक विषय-वस्तुओं तथा अन्य समस्त चेतन जीवों के भौतिक शरीरों की उत्पत्ति करती है। शक्ति दर्शन में छत्तीस तत्त्व हैं। शाक्त दर्शन में ब्रह्म, शक्ति, नाद, बिन्दु और शुद्ध माया हैं। शैव-सिद्धान्त दर्शन में शिव, शक्ति, सादक्य और शुद्ध माया हैं। शक्ति दर्शन की शेष मूल क्रिया शैव-सिद्धान्त दर्शन की ही भ्रान्ति है।

शक्ति के ज्ञान से मोक्ष-प्राप्ति होती है। ''**शक्तिज्ञानं विना देवि निर्वाणं नैव** जायते—हे देवी! शक्ति के ज्ञान के बिना मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती'' (ईश्वर देवी से कहते हैं)। जीवात्मा जब माया के प्रभाव में होता है, तो वह स्वयं को कर्ता और भोक्ता समझ लेता है और स्वयं को देह मान लेता है। शक्ति की अनुकम्पा से तथा साधना अथवा

आत्म-सुसंस्कृति से जीवात्मा स्वयं को समस्त बन्धनों से मुक्त कर लेता है। वह आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि प्राप्त करके परम तत्त्व में लीन हो जाता है।

वास्तव में एक ब्रह्म केअतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। भोग्य-पदार्थ अन्य कुछ न हो कर भोक्ता ही है। माया अथवा मन के दर्पण के द्वारा जगत् के रूप में ब्रह्म ही प्रकट होता है। पदार्थ अन्य कुछ नहीं, माया के द्वारा अनात्मा भासित होने वाला आत्मा ही है। निर्विकार समाधि में ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय विलुप्त हो जाते हैं, केवल परम शिव अथवा ब्रह्म ही विद्यमान रहता है।

केनोपनिषद् में आता है कि असुरों पर विजय प्राप्त कर लेने पर देवता फूल गये; वे इस विजय को अपना पराक्रम और वीरता का परिणाम समझने की भूल कर बैठे। भगवान् ने उन्हें पाठ सिखाना चाहा। वे उनके समक्ष एक ऐसे विशाल यक्ष के रूप में प्रकट हुए, जिसका आदि-अन्त कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता था। देवताओं ने इसका भेद जानने के लिए अग्निदेव को भेजा। यक्ष ने अग्नि से पूछा—"तुम्हारा नाम तथा तुम्हारी शक्ति क्या है?" अग्नि ने उत्तर दिया—"मैं अग्नि (जातवेद) हूँ। मैं क्षण-भर में समस्त विश्व को जला सकता हूँ।" यक्ष ने उसके समक्ष एक सूखे घास का तिनका रख कर उसे जलाने के लिए कहा। अग्निदेव उसे जला न सका। वह यक्ष से लज्जित हो कर चला गया। तब देवताओं ने वायुदेव को यक्ष के विषय में जानने के लिए भेजा। वायुदेव यक्ष के निकट पहुँचा। यक्ष ने वायु से कहा—"तुम कौन हो? तुम्हारी क्षमता क्या है?" वायु ने कहा—"मैं वायुदेव हूँ, मैं समस्त जगत् को पल-भर में उड़ा सकता हूँ।" तब यक्ष ने उसके समक्ष सूखे घास का तिनका रख कर उसे उड़ा देने के लिए कहा। वायु उसे अपने स्थान से रत्ती-भर भी हिला न सका। लज्जित हो कर वह भी चला गया। अन्ततः इन्द्रदेव स्वयं आये, तो उन्होंने देखा कि यक्ष अन्तर्धान हो चुके थे।

तब इन्द्र के समक्ष उमा प्रकट हुई और उन्होंने यक्ष का वास्तविक परिचय दिया। उन्होंने कहा—"देवताओं को विजय का मुकुट पहनाने वाली शक्ति देवताओं की नहीं, भगवती माँ की थी। समस्त देवताओं की शक्ति का जो स्रोत है, वह उमा है अथवा कृष्ण की बहन हेमावती है।" ज्ञान का महान् गुरु शक्ति है। वह अपने भक्तों पर ज्ञान-वर्षा करती है।

(२)

शक्ति चिद्रूपिणी है। वह शुद्ध आनन्दपूर्ण चेतना है। वह प्रकृति की माता है। वह स्वयं ही प्रकृति है। वह शिव अथवा ब्रह्म की शक्ति है। इस प्रपंच-जगत् को वही चलाती

है। भगवान् की लीला का संचालन वही करती है। वह जगज्जननी, महिषासुरमर्दिनी भ्रान्ति-विनाशिनी और दारिद्रयनाशिनी है।

देवी भगवान् शिव की शक्ति है। वह जड़-शक्ति और चित्-शक्ति है। वह इच्छा-शक्ति, क्रिया-शक्ति और ज्ञान-शक्ति है। वह माया-शक्ति है। शक्ति ही प्रकृति, माया, महामाया और श्रीविद्या है। शक्ति ही ब्रह्म है। वह ललिता, कुण्डलिनी, राजेश्वरी, त्रिपुरसुन्दरी, सती और पार्वती है। सती भगवान् शिव के साथ दस रूपों में, दस महाविद्याओं के रूप में इन नामों से प्रकट हुई—काली, बगलामुखी, छिन्नमस्ता, भुवनेश्वरी, मातंगी, शोडषी, धूमावती, त्रिपुरसुन्दरी, तारा और भैरवी।

शक्ति-उपासना अथवा शाक्त-मत विश्व के प्राचीनतम तथा विश्वव्यापी धर्मों में से एक है। इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति शक्ति चाहता है तथा शक्ति-प्राप्ति को प्रेम करता है। वह शक्ति के द्वारा दूसरों के ऊपर आधिपत्य चाहता है। युद्ध, लोभ और शक्ति का ही परिणाम है। वैज्ञानिक शाक्त-मत के ही अनुयायी हैं। जो भी इच्छा-शक्ति और सुन्दर व्यक्तित्व विकसित करना चाहता है, वह शाक्त-मत का अनुयायी है। वास्तव में तो इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति शाक्त-मत का अनुयायी ही है।

अब वैज्ञानिकों का कथन है कि प्रत्येक वस्तु मात्र शक्ति है और शक्ति ही समस्त रूपों और पदार्थों का भौतिक अन्त है। शाक्त दर्शन मतावलम्बियों ने बहुत पहले यही बात कह दी थी। वे आगे कहते हैं कि यह शक्ति उस महाशक्ति की अनन्त परम शक्ति का केवल सीमित प्रकटीकरण ही है।

शक्ति सदैव शिव के संग है। वे दोनों अग्नि और उसकी उष्णता के सदृश्य परस्पर अविभाज्य हैं। शक्ति से नाद की उत्पत्ति है और नाद से बिन्दु की। यह जगत् शक्ति का ही प्रकटीकरण है। शुद्ध माया चित्-शक्ति है। प्रकृति जड़-शक्ति है। नाद, बिन्दु तथा शेष सब शक्ति के ही भिन्न-भिन्न रूपों के नाम हैं।

असंख्य विश्व उस माँ भगवती के पावन चरणों की धूलि मात्र हैं। उनकी महिमा अनिर्वचनीय है। उनका वैभव अवर्णनीय है। उनकी महानता अथाह है। वे अपने सच्चे भक्तों पर कृपा-वृष्टि करती हैं। वे जीवात्मा को एक चक्र से दूसरे चक्र और एक स्तर से दूसरे स्तर तक ले जाती हुई सहस्रार में शिव से संयोग करवा देती हैं।

यह शरीर शक्ति है। शरीर की आवश्यकताएँ शक्ति की आवश्यकताएँ हैं। जब व्यक्ति आनन्द लेता है, तो यह शक्ति ही है जो उसके शरीर द्वारा आनन्द भोगती है। उसके नेत्र, कर्ण, हाथ, पैर—सब उनके हैं। वह उसके नेत्रों से देखती, उसके कानों से सुनती है।

शरीर, मन, प्राण, अहंता, बुद्धि, अंग-प्रत्यंग तथा अन्य सब क्रियाकलाप उन्हीं का प्रकटीकरण हैं।

शाक्त-मत परमात्मा के साकार और निराकार सम्बन्ध में बताता है। ब्रह्म निष्कल (प्रकृति रहित) और सकल (प्रकृति सहित) है। वेदान्ती निरुपाधिक ब्रह्म (माया रहित शुद्ध-निर्गुण ब्रह्म) तथा सोपाधिक (उपाधि अथवा माया सहित) अथवा सगुण ब्रह्म की बात कहते हैं। यह सब एक ही है, केवल नामों का ही भेद है। यह मात्र शब्द-जाल है। लोग केवल शब्दों के लिए ही लड़ते रहते हैं, वाग्युद्ध करते रहते हैं, बाल की खाल निकालने, तर्क-वितर्क करने और बौद्धिक व्यायाम में लगे रहते हैं। वास्तव में सार तत्त्व तो एक ही है। सत्य तो मिट्टी है। सब रूपान्तरण जैसे घट इत्यादि केवल नाम-भेद ही हैं। निर्गुण ब्रह्म में शक्ति गुप्त है, जब कि सगुण ब्रह्म में यह सक्रिय है।

शाक्त-मत का आधार वेद हैं। शाक्त-मत में ब्रह्म की प्रकृति इत्यादि जैसे आध्यात्मिक विषयों से सम्बन्धित स्तोत्र और प्रमाण मात्र वेदों को मानते हैं। शाक्त-मत वेदान्त है। शाक्तो की आध्यात्मिक अनुभूति वेदान्तियों जैसी ही है।

ऋग्वेद का देवी-सूक्त, श्री-सूक्त, दुर्गा-सूक्त, भू-सूक्त और निला-सूक्त, तथा विशिष्ट शाक्त उपनिषद् जैसे कि त्रिपुरतापिनी उपनिषद्, सितोपनिषद्, देवी उपनिषद् सौभाग्योपनिषद्, सरस्वती उपनिषद्, भगनोपनिषद्, भावरिचोपनिषद् इत्यादि ईश्वर के मातृ-पक्ष को जोर दे कर घोषित करते हैं। केनोपनिषद् में भी उमा (हेमावती) के विषय में कहा गया है कि जो इन्द्र तथा देवताओं को आत्मज्ञान प्रदान करती है।

देवी माँ प्रत्येक स्थान पर त्रिगुणी हैं। वह सत्त्व, रजस् और तमस्—त्रिगुणधारिणी हैं। इच्छा-शक्ति, क्रिया-शक्ति और ज्ञान-शक्ति में प्रकटीकरण है। वह ब्रह्मा के संयोग से ब्रह्म-शक्ति (सरस्वती), भगवान् विष्णु के साथ संयुक्त हो कर विष्णु-शक्ति (लक्ष्मी) तथा भगवान् शिव से संयुक्त होने पर शिव-शक्ति (गौरी) कहलाती हैं। इसीलिए वे त्रिपुरसुन्दरी कहलाती हैं।

भगवती माँ, त्रिपुरसुन्दरी के निवास-स्थल को नगर कहा गया है। यह भव्य नगर पच्चीस परकोटों, जो पच्चीस तत्त्वों के द्योतक हैं, से घिरा हुआ है। देदीप्यमान चिन्तामणि का भवन मध्य में स्थित है। उस अद्भुत भवन के श्रीचक्र के बिन्दु-पीठ में देवी माँ सुशोभित हैं। माँ के लिए इसी प्रकार का निवास-स्थान मानव-शरीर में भी है। समस्त विश्व उसकी देह है। पर्वत उसकी अस्थियाँ हैं। नदियाँ उसकी नाड़ियाँ हैं। सागर मूत्राशय हैं। सूर्य-चन्द्रमा नेत्र हैं। वायु श्वास हैं। अग्नि उसका मुख है।

शक्ति भुक्ति (संसार के सुख) और मुक्ति (समस्त जगत् से छुटकारा) भोगती है। शिव साक्षात् आनन्द और ज्ञान हैं। शिव स्वयं ही सुख और दु:ख से मिश्रित जीवन सहित मानव के रूप में अवतरित होते हैं। यदि इस तत्त्व को आप सदैव स्मरण रखें, तो समस्त द्वैत भाव, सम्पूर्ण घृणा, ईर्ष्या, अभिमान नष्ट हो जायेगा। प्रत्येक मानवीय कर्म को सदा पूजा या धार्मिक कर्म समझें। नित्य-कर्म करना, खाना, चलना, देखना, सुनना—सब ईश्वर-आराधना बन जाता है, यदि आप ठीक दृष्टिकोण रखें। मानव के भीतर तथा मानव के द्वारा जो कर्म करता है, वह शिव ही हैं। अब फिर अहंभाव कहाँ शेष रह जाता है? सभी मानवीय कार्य दैवी कार्य हैं। एक ही वैश्व-आत्मा समस्त हृदयों में धड़कता है, समस्त नेत्रों से देखता है, सभी हाथों से कार्य करता है और समस्त कानों से सुनता है। यदि मानव अपने इस तुच्छ अहंभाव को नष्ट करके अनुभव कर सके, तो यह कैसी भव्य अनुभूति है। आपके पुराने संस्कार, पुरानी वासनाएँ और सोचने का पुराना ढंग ऐसी अखण्ड अनुभूति कर पाने में बाधक बन जाता है।

साधक सोचता है कि संसार और माँ भगवती एक रूप ही हैं। वह स्वयं को दिव्य माँ से अभिन्न मान कर चलता है। सब ओर एक ही रूप देखता है। वह दिव्य माँ को परब्रह्म से भी अभिन्न मानता है।

उन्नत साधक अनुभव करता है—"मैं ही देवी हूँ और देवी मुझ में ही हैं।" वह स्वयं की ही देवी के रूप में उपासना करता है। वह कहता है : "**सोऽहम्**"—मैं वह हूँ।

शाक्त-मत मात्र सिद्धान्त अथवा दर्शन नहीं है। यह साधक के स्वभाव तथा विकास करने की क्षमता और उसकी अवस्था के अनुसार उसके लिए क्रमबद्ध योग-साधना और नियमित प्रशिक्षण निर्धारित करता है। यह जिज्ञासु को कुण्डलिनी जाग्रत करने तथा भगवान् शिव से संयोग कराने और परम आनन्द तथा निर्विकल्प समाधि प्राप्त करने में सहायता करता है। जब कुण्डलिनी सुप्त होती है, तो व्यक्ति जगत् की ओर जाग्रत रहता है। उसे विषय-चेतना रहती है। जब वह जागृत होती है, तो वह सो जाता है, उसकी संसार के प्रति समस्त चेतना समाप्त हो जाती है, वह भगवान् के साथ एक हो जाता है। समाधि में शिव और शक्ति के सहस्रार में संयोग से प्रवाहित होने वाले अमृत से शरीर सम्पोषित होता है।

शक्ति-योग-साधना के लिए गुरु अनिवार्य है। वह साधक को दीक्षित करके दिव्य शक्ति संचारित करता है।

नारी से दैहिक सम्बन्ध स्थूल सम्भोग है। यह पशु भाव के कारण होता है। माँ कुण्डलिनी-शक्ति का सहस्रार में, निर्विकल्प समाधि की अवस्था में भगवान् शिव से

संयोग होता है। यह वास्तविक आनन्दपूर्ण मिलन है। यह दिव्य भाव के कारण होता है। आपको पशु भाव से दिव्य भाव की ओर—सत्संग, गुरु-सेवा, त्याग, वैराग्य, विवेक, जप और ध्यान के द्वारा उठना है।

देवी माँ की तीव्र निष्ठा और पूर्ण श्रद्धा सहित उपासना तथा आत्म-समर्पण, आपको उसकी कृपा-प्राप्ति में सहायक होंगे। मात्र उसकी कृपा से ही आप उस अनश्वर का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

त्रिपुरसुन्दरी—जो राजराजेश्वरी और ललितादेवी भी हैं—की जय हो! उनकी कृपा आप सब पर हो!

शिव और शक्ति

शक्ति-तत्त्व वास्तव में शिव-तत्त्व का नकारात्मक तत्त्व है। यद्यपि दोनों को अलग-अलग कहा गया है, तथापि वास्तव में वे दोनों एक हैं। शक्ति-तत्त्व शिव की इच्छा-शक्ति है।

अम्बाल, अम्बिका, गौरी, ज्ञानाम्बिका, दुर्गा, काली, राजेश्वरी, त्रिपुरसुन्दरी इत्यादि शक्ति के अन्य नाम हैं। शक्ति स्वयं शुद्ध आनन्दपूर्ण चैतन्य है और उसके विचार से प्रकृति ही सक्रिय हो कर प्रकट हुई है। यह शक्ति-सम्प्रदाय भगवान् को विश्व माँ के रूप में मानता है।

शक्ति को माँ इसलिए कहा गया है, क्योंकि यह वह सर्वोच्च पक्ष है जिसमें वह विश्व की जननी और पालक मानी जाती है। किन्तु भगवान् न तो पुरुष हैं न ही स्त्री हैं; वे जिस रूप में अवतरित होते हैं, उसी नाम से जाने जाते हैं।

विश्व में एकमात्र हिन्दू धर्म ही है जिसमें ईश्वर के मातृ रूप पर इतना बल दिया गया है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में देवी-सूक्त आता है। यह महर्षि अम्ब्रीन की पुत्री बक द्वारा उद्घाटित किया गया था। यह ऋग्वेदीय स्तोत्र देवी माँ को सम्बोधित करके बक उस परमात्मा को, जो समस्त संसार में व्याप्त है—मातृ रूप में अनुभव करके कहती है। बंगाल में मातृ-उपासना अत्यधिक प्रचलित है। प्रत्येक बंगाली के अधरों पर सदा 'माँ' है।

शिव और शक्ति दोनों तत्त्वत: एक हैं। कालीदास के 'रघुवंशम्' के प्रथम पद्य में ही कहा गया है कि शिव और शक्ति का परस्पर सम्बन्ध उसी प्रकार से है जैसे शब्द का उसके अर्थ से है। जिस प्रकार अग्नि और उष्मा परस्पर अविभाज्य हैं, ठीक उसी प्रकार शक्ति और

शिव परस्पर अविभाज्य हैं। भगवान् शिव शक्ति के बिना कुछ नहीं कर सकते। यह श्री शंकराचार्य ने 'सौन्दर्यलहरी' के प्रथम पद में बल दे कर कहा है।

शक्ति गतिशील सर्प की भाँति है। शिव गतिहीन सर्प की भाँति हैं। लहरविहीन सागर शिव हैं। लहर सहित सागर शक्ति है। शिव अनुभवातीत परम तत्त्व हैं। उस परम तत्त्व का सर्वव्यापी साकार स्वरूप शक्ति है। शिव निर्गुण हैं, वे निष्कल हैं। शक्ति सगुण है। वह रचयिता है। शक्ति तिरंगे धागे से बनी रज्जु की भाँति है।

माँ काली शिव के वक्षस्थल पर नृत्य करती है। उसका रूप विकराल है; किन्तु वास्तव में वह विकराल नहीं है। वह अत्यन्त दयालु और कोमल हैं। वह नरमुण्डों की माला पहने रहती हैं। इसका अर्थ क्या है? वह अपने भक्तों के शीश कण्ठ में धारण किये रहती हैं। अपने भक्तों के प्रति वह कितने प्रेम और स्नेह से परिपूर्ण हैं!

काली देवी माँ है। वह भगवान् शिव की शक्ति है। वह शिव का सक्रिय पक्ष है। शिव निष्क्रिय तत्त्व हैं। भगवान् शिव मृत शरीर की भाँति हैं। यह क्या दर्शाता है? वे पूर्णतया शान्त, गतिहीन, श्वासहीन समाधि अवस्था में नेत्र बन्द किये हुए हैं। वे क्रियाहीन अपरिवर्तनीय हैं। उनके वक्ष पर निरन्तर होने वाली लीला से वे पूर्णतया अस्पर्शित हैं।

जगत् के लिए वे पूर्णतया मृत हैं। वे तीनों गुणों से परे हैं। उनके लिए न द्वैत है, न अनेकत्व, न सापेक्षता, न कर्ता और कर्म में भेदत्व है, न पृथकत्व न वैशिष्ट्य, न त्रिपुटि न ही द्वन्द्व है; न राग-द्वेष, न ही अच्छा और बुरा है। वे नित्य-शुद्ध, निर्लिप्त हैं और फिर भी इस संसार के स्रोत, आधार, आश्रय और मूल कारण हैं। वे मात्र देखते हैं। शक्ति जीवन का संचार करती है। वह कार्य और सृष्टि करती है। उनकी उपस्थिति मात्र में शक्ति इस संसार की लीला संचालित रखती है। समस्त जगत् उनके भीतर होने वाला स्पन्दन मात्र है। वे परम चैतन्य हैं और उनमें ही ब्रह्माण्डीय चेतना है। वे समस्त नाम-रूपों को बनाने वाले हैं, तथापि वे नाम-रूपों से परे हैं। यह एक बड़ा चमत्कार और परम रहस्य है जो सीमित बुद्धि की समझ में नहीं आ सकता।

शिव से रहित शक्ति का कोई अस्तित्व नहीं है और शक्ति से रहित शिव का कोई प्राकट्य नहीं है। यह शक्ति ही है जिसके द्वारा अव्यक्त परमात्मा शिव अथवा निर्गुण ब्रह्म सगुण ब्रह्म हो जाते हैं। शिव दुर्गा अथवा काली की आत्मा हैं। दुर्गा या काली शिव के सम रूप है। शिव सच्चिदानन्द हैं। दुर्गा अथवा काली सच्चिदानन्दमयी है। शिव और शक्ति एक ही हैं। कोई एक दूसरे से बड़ा नहीं है। शक्ति चित्, चिद् रूपिणी, चिन्मात्रा रूपिणी है।

शिव-पार्वती

हे देवी! सर्वशुभे, जय-सम्पदा दात्री, तुम्हें नमस्कार है! इस धरा पर सौहार्द-वृष्टि करें और अपनी दया-दृष्टि से हमारी सदैव रक्षा करें!

पर्वतराज हिमवान् की पुत्री पार्वती हैं। वे भगवान् शिव की शक्ति अथवा पत्नी हैं। वे जगज्जननी हैं। वे ब्रह्म को प्रकट करने वाली हैं। वे केवल लोकमाता अथवा जगन्माता ही नहीं, ब्रह्मविद्या भी हैं। उनके नामों में से एक नाम शिवज्ञानप्रदायिनी है। वे शिवदूती, शिवाराध्या, शिवमूर्ति और शिवंकरी भी कहलाती हैं।

भगवद्-साक्षात्कार प्राप्ति के लिए देवी की अनुकम्पा एक अनिवार्य तत्त्व है। पार्वती अथवा शक्ति सर्वेसर्वा हैं। आपको योग के द्वारा शक्ति जाग्रत करनी पड़ेगी। तब शक्ति की कृपा आपको भगवद्-साक्षात्कार की ओर, परम मोक्ष प्राप्ति तथा अनन्त शाश्वत परम आनन्द प्राप्ति की ओर ले जायेगी।

स्कन्दपुराण के महेश्वरकाण्ड में पार्वती की महिमा की कथा का विस्तृत वर्णन मिलता है। ब्रह्मा के पुत्र दक्षप्रजापति की कन्या सती का विवाह भगवान् शिव से हुआ। दक्ष अपने जामाता को उसकी विचित्र वेशभूषा, विलक्षण ढंग और अनोखे स्वभाव के कारण पसन्द नहीं करता था। दक्ष ने एक यज्ञ का आयोजन किया। उसने अपनी पुत्री और दामाद को आमन्त्रित नहीं किया। सती ने इसे अपना अपमान समझा और वहाँ जा कर अपने पिता से इसका कारण जानना चाहा, जिसका उसने असन्तोषजनक उत्तर दिया। सती इस पर कुपित हो गयी। उसने स्वयं को उसकी पुत्री कहलाया जाना अच्छा न समझा और अपनी देह को अग्नि की भेंट करके पार्वती के नाम से पुनर्जन्म ले कर शिव से विवाह कर लेना अधिक ठीक समझा। उसने अपनी योग-शक्ति से अग्नि प्रज्वलित की और उस योगाग्नि में स्वयं को समाप्त कर लिया।

भगवान् शिव ने वीरभद्र को भेजा। उसने यज्ञ विध्वंस कर दिया और वहाँ पर एकत्रित हुए सभी देवताओं को भगा दिया। दक्ष का सिर काट कर अग्नि में गिरा दिया गया। भगवान् शिव ने ब्रह्मा की प्रार्थना पर एक बकरे का सिर काट कर दक्ष के धड़ पर लगा दिया।

भगवान् शिव तप करने के लिए हिमालय पर चले गये। तारकासुर को ब्रह्मा से वरदान प्राप्त था कि उसका केवल शिव और पार्वती के पुत्र द्वारा ही वध हो सकता था। अतः देवताओं ने हिमवान् से सती को अपनी पुत्री रूप में जन्म देने की प्रार्थना की। हिमवान् मान गया। सती ने हिमवान् की पुत्री पार्वती बन कर जन्म लिया। भगवान् शिव के

तप के समय पार्वती ने उनकी सेवा और उपासना की। भगवान् शिव ने पार्वती से विवाह किया।

एक बार नारद कैलास पर्वत पर गये और वहाँ शिव और पार्वती के अर्धनारीश्वर रूप में दर्शन किये। उन्होंने उन दोनों को पाँसा खेलते देखने की इच्छा व्यक्त की। भगवान् शिव ने कहा कि उनकी विजय हुई है, पार्वती ने कहा कि वे विजयी हुई हैं। उनमें झगड़ा हो गया। शिव पार्वती को त्याग कर तप करने चले गये। पार्वती व्याधिन का वेष धारण कर शिव से मिली। शिव को व्याधिन से प्रेम हो गया। वे उसके संग उसके पिता के पास विवाह की अनुमति लेने के लिए गये। नारद ने उन्हें बताया कि वह व्याधिन अन्य कोई नहीं पार्वती है। नारद ने पार्वती को शिव से क्षमा माँगने के लिए कहा। उनका पुनर्मिलन हो गया।

शिव, लिंग के रूप में अरुणाचल पर्वत बन कर प्रकट हुए। इस प्रकार उन्होंने ब्रह्मा और विष्णु, जो स्वयं को दूसरे से महान् कहते हुए परस्पर विवाद कर रहे थे, के अभिमान को नष्ट कर दिया। अरुणाचल तेजोलिंग है। पार्वती ने शिव के अरुणाचलेश्वर रूप में दर्शन किये। शिव ने पुन: अपना वामांग स्थान दे कर पार्वती को अर्धनारी बनाया।

तारकासुर देवताओं का कड़ा विरोधी बन गया। महि-सागर-संगम-क्षेत्र उसकी राजधानी थी। पार्वती के दूसरे पुत्र सुब्रह्मण्यम् जब सात ही दिन के थे, तो उन्होंने इस असुर का वध कर दिया।

पार्वती ने अपनी इच्छा से हस्तीवदन पुत्र की रचना की। वे भगवान् गणेश थे। सबकी विघ्न-बाधाओं को हरने के लिए उन्हें गणपति बनाया गया। एक दिन भगवान् शिव ने एक फल दिखाते हुए कहा कि यह फल इन दोनों बालकों में से उसे दिया जायेगा जो विश्व का भ्रमण करके पहले लौट आयेगा। भगवान् सुब्रह्मण्यम् विश्व-भ्रमण के लिए चल पड़े। गणपति भगवान् अपने पिता शिव, समस्त जगत् को ढक लेने वाले महालिंग के चारों ओर घूम गये और फल प्राप्त कर लिया।

पार्वती श्याम वर्ण की थीं। एक दिन भगवान् शिव ने विनोद से उन्हें काली कह दिया। पार्वती उनके इस हास्य-व्यंग्य से दु:खी हो गयीं और हिमालय पर तप करने के लिए चली गयीं। उनका अत्यन्त सुन्दर गौर वर्ण हो गया और इस प्रकार वे गौरी कहलाने लगीं। ब्रह्मा की अनुकम्पा से गौरी शिव के साथ संयुक्त हो कर अर्धनारीश्वर कहलायीं।

एक बार पार्वती ने भगवान् शिव के पीछे खड़े हो कर उनकी आँखों को मूँद लिया। समस्त विश्व निर्जीव और अन्धकारपूर्ण हो गया। शिव ने पार्वती को अपनी भूल सुधारने के लिए तप करने को कहा। पार्वती कांची (कांजीवरम्) चली गयी और गहन तपस्या आरम्भ कर दी। भगवान् ने बाढ़ उत्पन्न कर दी। पार्वती द्वारा निर्मित लिंग बहने वाला हो

गया। उसने लिंग का दृढ़ता से आलिंगन कर लिया। लिंग वहीं पर एकम्बरेश्वर के नाम से स्थित हो गया। पार्वती वहाँ लोक-कल्याण के लिए कामाकाशी में स्थित हुईं।

पार्वती सदैव शिव के साथ उनकी शक्ति के रूप में रहती हैं। वे अपने भक्तों पर ज्ञान और कृपा की वृष्टि करती हैं तथा उन्हें अपने प्रभु से मिला देती हैं। समस्त जीवों के वास्तविक माता-पिता शिव और पार्वती को प्रणाम है!

माँ भगवती

बालकों की अपने पिता की अपेक्षा माँ से अधिक घनिष्ठता होती है। माँ स्नेह, कोमलता और प्रेम का साकार रूप होती है। वह बालकों की आवश्यकताओं का ध्यान रखती है। जब भी बच्चे को किसी भी वस्तु की इच्छा होती है, तो वह पिता की अपेक्षा माँ से ही कहता है। आध्यात्मिक विषयों में भी साधक पिता शिव की अपेक्षा माँ काली से अधिक सम्बन्ध रखते हैं। शिव बाह्य जगत् से निर्लिप्त हैं। वे मोह रहित है और नेत्र बन्द किये हुए अपनी समाधि में लीन हैं। यह मात्र शक्ति अथवा देवी माँ ही हैं जो वास्तव में जगत् के कार्यकलापों को देखती है। जब वह अपने भक्त की लगन से प्रसन्न हो जाती है, तो उसे परम मोक्ष प्राप्ति के लिए अपने प्रभु से मिलवाती है।

शिव और शक्ति परस्पर अविभाज्य हैं। यह अर्धनारीश्वर—शिव-पार्वती (आधे पुरुष और आधी नारी का एक ही शरीर में होना) से सुस्पष्ट है। पार्वती भगवान् शिव की अर्धवामांगी है।

शिवज्ञान, आत्मज्ञान की ओर ले जाता है और हमारे ऊपर परम आनन्द की वर्षा करता है तथा हमें जन्म-मरण से मुक्त करता है। यह हमें जीवन-ज्योति प्रदान करता है। यह अन्तः प्रज्ञा चक्षु है। यह भगवान् शिव का तृतीय नेत्र है। यह तृतीय नेत्र समस्त भ्रान्तियों और मनोविकारों का नाश करता है।

शक्ति की विभिन्न रूपों में उद्भावना की गयी है। सरस्वती विद्या की देवी है। लक्ष्मी धन की देवी है। पार्वती अथवा उमा आनन्द-वृष्टि की देवी है.

मार्कण्डेयपुराण में सात सौ श्लोक हैं जो सप्तशती अथवा चण्डी या देवी-माहात्म्य के नाम से जाने जाते हैं। यह हिन्दुओं के सर्वाधिक प्रसिद्ध धार्मिक ग्रन्थों में से है। इसे लगभग गीता जितनी प्रतिष्ठा प्राप्त है। इसमें अन्योक्तिपरक शैली में बताया गया है कि मोक्ष के पथ में आने वाली मुख्य बाधाएँ हमारी अपनी ही इच्छाएँ, क्रोध, लोभ और अज्ञान हैं

तथा हम यदि देवी की निष्ठापूर्वक भक्ति करें, तो उनकी कृपा के द्वारा इन सब पर विजय पा सकते हैं।

इस पुस्तक में देवी माँ के तीन पक्षों—महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती का अत्यन्त सुन्दर ढंग से उनके तामसिक, राजसिक और सात्त्विक रूप में वर्णन किया गया है।

असुर देवताओं से विरोध करने लगे। देवताओं ने देवी माँ का आशीर्वाद लेने के लिए प्रार्थना की। वह ऊपर वर्णित तीनों रूपों में प्रकट हुई और असुरों का संहार करके देवताओं की रक्षा की। देवी माँ ने मानव और देवताओं को पक्का और अमोघ वचन दिया कि जब भी वे भय अथवा कष्ट में स्मरण करेंगे, तो वह आ कर उनकी रक्षा करेंगी।

त्रिमूर्ति की बलप्रदाता शक्ति

हे प्रभु शिव! हम आपकी मौन स्तुति करते हैं। आप हम सबके एकमात्र शरणदाता, एकमात्र उपास्य, विश्वनियन्ता, स्वयंप्रकाश प्रभु हैं। आप जगत् के स्रष्टा, पालक और संहारक हैं। आप सर्वोच्च, अचल और निरपेक्ष हैं।

शक्ति—बल अथवा जीवन-संचारिणी है जो प्रत्येक कार्य को सम्भव बनाती है। मनुष्य जब कोई कार्य करता है, तो वह केवल अपनी शक्ति के कारण ही कर पाता है। यदि उससे कार्य नहीं होता, तो यही कहता है कि उसमें अमुक कार्य करने की शक्ति नहीं है। अत: वह शक्ति ही है जो व्यक्ति को कर्म करने योग्य बनाती है। शक्ति देवी है। शक्ति दिव्य माता है। मन शक्ति है। प्राण शक्ति है। इच्छा शक्ति है।

देवीभागवत में प्रकृति के रूपों का वर्णन है। देवी त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु और महेश) को अपने निवास-स्थान मणिद्वीप में ले गयी और उनकी पत्नियाँ सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती उन्हें दे कर नये कल्प में संसार में जीवन-संचालन के लिए भेजा।

भगवान् नारायण ने अपनी नाभि में से ब्रह्मा की उत्पत्ति की। ब्रह्मा को ज्ञात नहीं था कि उन्हें क्या करना है। विष्णु और शिव भी नहीं जानते थे कि प्रलय के पश्चात् नये कल्प में पुन: नव-सृष्टि का आरम्भ कैसे हो। उनको विंमान द्वारा उठा लिया गया और वे शीघ्र ही एक अद्भुत क्षेत्र में पहुँचे जहाँ उन्हें नारी रूप में परिवर्तित कर दिया गया। वे देवी द्वारा शासित एक नारी-जगत् में थे। यह सुधा-सागर में मणिद्वीप था। ये नव-निर्मित नारियाँ सौ वर्ष तक वहाँ रहीं। उन्हें ज्ञात नहीं था कि वे कौन हैं, वहाँ पर क्यों हैं और उन्हें क्या करना है।

तब उन्हें पुरुषों के साथ रखा गया और वे स्वयं भी पुरुष बन गयीं। तब ब्रह्मा व सरस्वती, विष्णु व लक्ष्मी तथा शिव और पार्वती दम्पति बन गये। उन्होंने तत्क्षण ही स्वयं को अपने-अपने स्थानों पर पाया और वे यह भी जान गये कि उन्होंने क्या-क्या कार्य करना है। देवी के संयोग से त्रिमूर्ति को शक्ति प्राप्त हुई।

पार्वती लोगों को ज्ञान और मोक्ष देने वाले भगवान् शिव की शक्ति है। लक्ष्मी लोगों को धन-सम्पदा देने वाले भगवान् विष्णु की शक्ति है। सरस्वती जगत् की सृष्टि करने वाले ब्रह्मा की शक्ति है। राधा, भक्ति के द्वारा जीवों को मुक्ति प्रदान करने वाले भगवान् कृष्ण की शक्ति है।

शक्ति आपको शक्ति का वरदान दे!

गंगा माँ

गंगा भारत की सबसे अधिक पवित्र नदी है। गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है—"मैं नदियों में गंगा हूँ।" गंगा के जल में कोई कीटाणु पल नहीं सकता। यह रोगाणु-रोधक खनिजों से सन्तृप्त है। पश्चिमी देशों के डाक्टर त्वचा-रोगों के लिए गंगा-जल से मालिश करने को कहते हैं। गंगा केवल नदी ही नहीं है। यह पावन तीर्थ भी है। इसमें ऐसी अद्भुत शक्तियाँ विद्यमान हैं जो संसार की अन्य किसी नदी में नहीं हैं। वैज्ञानिकों तक ने गंगा-जल की क्षमता को मान्यता दी है।

मैकगिल विश्वविद्यालय, कैनेडा के डा. एफ. सी. हैरिसन लिखते हैं—"एक विशेष तथ्य जिसे कभी भी सन्तोषजनक ढंग से स्पष्ट नहीं किया गया, यह है कि गंगा के पानी में हैजे के रोगाणु अति-शीघ्र (तीन या पाँच घण्टों में) मर जाते हैं। यदि कोई हैजे इत्यादि से मृत असंख्य लाशों से तथा हज़ारों की संख्या में स्नान करने से गन्दे हुए पानी को देखें, तो यह बड़ी अद्भुत-सी बात लगती है कि हिन्दुओं का यह विश्वास है कि इस नदी का पानी शुद्ध है और यह गन्दा नहीं हो सकता तथा इसको पीना और इसमें स्नान करना सुरक्षित है, इसको आधुनिक जीवाणु-वैज्ञानिक-संशोधन द्वारा मान्यता दे दी जानी चाहिए।" एक जाने-माने फ्रांसीसी डाक्टर डी. हैरेली ने ऐसी ही मिलती-जुलती गंगा की रहस्यात्मकता की खोज की। उन्होंने पेचिश और हैजे से मृत शरीरों को बहते हुए देखा और उनके आश्चर्य का ठिकाना न था, जब उन्होंने पाया कि मृत शरीरों के मात्र कुछ ही नीचे बहने वाले जल में, जिसमें कोई भी सोचेगा कि हैजे और पेचिश के हज़ारों रोगाणु होंगे, एक भी ऐसा कीटाणु नहीं था। तब उसने ऐसी बीमारी वाले रोगियों के कीटाणु ले कर उन्हें

गंगा-जल में डाल दिया। कुछ समय बाद जब मिश्रण को देखा, तो उसके आश्चर्य का अन्त न था कि उसमें सारे कीटाणु नष्ट हो चुके थे।

एक अँगरेज डाक्टर सी. ई. नेलसन, एफ. आर. सी. एस. एक और आश्चर्यजनक तथ्य बतलाते हैं। वे कहते हैं—''कोलकाता से इंग्लैण्ड जाने वाले जलपोत गन्दे जल वाले गंगा के एक मुहाने हुगली नदी से जल लेते हैं और यह गंगा का पानी इंग्लैण्ड तक शुद्ध रहता है। दूसरी ओर इंग्लैण्ड से भारत की ओर जाने वाले जलपोत देखते कि लन्दन से लिया हुआ जल भारत की सबसे निकट की बन्दरगाह मुम्बई, जो कोलकाता से एक सप्ताह पहले ही आती है, पहुँचने तक ठीक नहीं रहता और उन्हें लाल सागर में सईद या सुएज़ या ईडन में पुन: जल लेना पड़ता। अत: इसमें आश्चर्य नहीं, यदि भारत के लोग कहें कि 'गंगा अत्यन्त पवित्र है और इसके जल में अद्भुत शक्तियाँ हैं।'

एक हिन्दू के लिए 'गंगा' शब्द से एक निजी पावन सम्बन्ध है। प्रत्येक हिन्दू गंगा में एक गोता लगाने के लिए तथा अन्तिम समय में गंगा-जल की एक बूँद मुँह में डालने के लिए लालायित रहता है। मुमुक्षु और भिक्षु साधना और तपस्या के लिए गंगा के तट पर कुटियाएँ बनाते हैं। शरशैया पर लेटे हुए भीष्मपितामह ने पाण्डवों को अन्तिम उपदेश देते हुए गंगा की महिमा के विषय में बहुत उच्च भाव व्यक्त किये हैं।

एक धर्मपरायण हिन्दू जब भी स्नान के लिए जाता है, तो सर्वप्रथम गंगा का आह्वान करता है, नदी में डुबकी लगाने से पूर्व वहीं गंगा की उपस्थिति की भावना करता है और यदि वह गंगा से दूरस्थ स्थल पर रहता हो, तो अत्यन्त उत्कण्ठा से कभी-न-कभी स्नान कर पाने की कामना करता है। वह बरतन में गंगा-जल ले जा कर घर में अत्यन्त सावधानी से सँभाल कर रखता है जिससे कि उसे शुद्धिकरण के लिए उपयोग में ला सके।

हिन्दुओं का विश्वास है कि यदि वे पावन गंगा-जल में डुबकी लगा लें, तो उनके समस्त पाप धुल जाते हैं।

सतयुग में सभी स्थल पवित्र थे। त्रेतायुग में पुष्कर जी सर्वाधिक पवित्र स्थान माना जाता था। द्वापर में कुरुक्षेत्र सबसे अधिक पवित्र स्थान माना जाता था। कलियुग में वह गौरव गंगा को प्राप्त है। देवीभागवत में आता है : ''जो सौ मील दूर से भी गंगा का नाम ले लेता है, वह पापों से मुक्त हो कर भगवान् हरि के धाम को प्राप्त कर लेता है।''

गंगा का उद्गम परमात्मा से हुआ है। वह भगवान् हरि के चरणों को स्पर्श करती है और वैकुण्ठ में चली जाती है। वह गोलोक से निकल कर विष्णु, ब्रह्मा, शिव, ध्रुव, चन्द्र, सूर्य, तप:, जन:, मह: लोकों में बहती हुई इन्द्रलोक में पहुँच कर मन्दाकिनी नाम से प्रवाहित होती है।

भागीरथ की प्रार्थना पर (जिसने कपिल ऋषि के श्राप से भस्म हुए सगर के सहस्र पुत्र, जो कि इनके पूर्वज थे, के मोक्ष के लिए गंगा को पाताल में ले जाने के लिए कठिन तप किया था) गंगा भगवान् शिव की जटाओं में समा गयी।

तब वह भगवान् शिव की जटाओं से निकल कर बहने लगी। उसके जल ने जह्नु ऋषि की यज्ञशाला को आप्लावित कर दिया, तो ऋषि उसे पी गये। तब वह पुन: उसके कान से निकल कर बहने लगी और जाह्नवी कहलायी। वह भागीरथ की पुत्री होने से भागीरथी भी कहलाती है। पाताल में वह भागीरथी नाम से बहती है। राजा भागीरथ के पूर्वज गंगा-जल का पावन स्पर्श पा कर स्वर्ग को चले गये।

ब्रह्मा के समक्ष व्यवहार में हुई अपनी ही भूल के परिणामस्वरूप गंगा को मानव-जन्म लेना पड़ा। वह शान्तनु की पत्नी बनी। शान्तनु भी राजा महाभिशा नामक दिव्य पुरुष थे और उन्हें भी ब्रह्मा के समक्ष अभिमान युक्त अनुचित व्यवहार के कारण मृत्युलोक में जन्म लेना पड़ा था। गंगा ने महान् वीर और सन्त भीष्म को जन्म दिया।

गंगा ने अग्नि द्वारा प्रदत्त भगवान् शिव का बीजाणु धारण करना स्वीकार किया और देवताओं के वीर सेनापति तथा तारकासुर का विनाश करने वाले सुब्रह्मण्यम् को जन्म दिया।

गंगा विष्णु रूप है। उसका दर्शन आत्मोद्दीपक व भावों को उन्नत करने वाला है। वह घाटियों में प्रवाहित होती है और हिमवान् की पुत्री पार्वती के निकट वास करती है। ऋषिकेश की वादी (घाटी) में बहती हुई वह कितनी भव्य प्रतीत होती है। उसका सागर के समान नील वर्ण है। जल अत्यधिक स्वच्छ और मधुर है। मैदानों के धनी लोग ऋषिकेश से गंगा-जल लेते हैं, वे इसे भारत के दूरस्थ स्थानों में पीतल के बड़े-बड़े बरतनों में ले जाते हैं।

ऋषिकेश में गंगा-दर्शन आत्मोत्थापक है। कुछ क्षणों के लिए गगा-तट पर पड़े पत्थर पर बैठना एक वरदान है। कुछ मास तक के लिए गंगा-तट पर रह कर अनुष्ठान या पुरश्चरण करना एक बड़ा तप है जो साधक को वैकुण्ठ ले जाने वाला है। सदा के लिए गंगा-तट पर रह कर ध्यान में जीवन यापन कर देना शिव आनन्दम् है।

माँ गंगा का आप सबको आशीर्वाद प्राप्त हो! वह आप सबको अपने तट पर रह कर योग-साधना करने में सहायक हो!

त्रिपुर-रहस्य

तीन पुर अथवा नगर हैं—आणव मल (अहम्), कर्म (कर्मों के बन्धन) और माया (भगवान् शिव की जीवात्मा को भ्रम के आवरण में ढके रखने वाली शक्ति) आणव मल

की प्रथम नगरी को नष्ट करने के लिए भगवान् शिव के प्रति आत्म-समर्पण करके भगवान् का अनुग्रह प्राप्त करना चाहिए। द्वितीय अशुद्धि कर्म-बन्धन को विनष्ट करने के लिए कर्मों के फल को भगवद्-अर्पण करना, 'मैं कर्ता हूँ' के भाव को समाप्त करना तथा निमित्त भाव बनाये रखना; ऐसा भाव कि भगवान् शिव ही आपके अंगों द्वारा सभी कार्य कर रहे हैं और आप मात्र उनके हाथों का खिलौना हैं। (चरियाई और क्रियाई) ऐसे भाव को विकसित करना चाहिए। तब आप कर्मों के बन्धन में नहीं बँधेंगे। आपको हृदय की शुद्धता की प्राप्ति होगी और हृदय की शुद्धता से शिवानन्दम् अथवा परमानन्दम् की प्राप्ति होगी। तृतीय अशुद्धि जो माया है, को पंचाक्षर के जप से, गुरु की पूजा से, भगवान् के विभिन्न नामों के श्रवण व उनकी लीलाओं के श्रवण से और कीर्तन से तथा उनके सच्चिदानन्द रूप पर ध्यान करने से नष्ट किया जा सकता है।

यह त्रिपुर अथवा तीनों नगरों का विनाश है। यही त्रिपुर-रहस्य है।

काम, क्रोध, लोभ, घृणा, ईर्ष्या इत्यादि अशुभ वासनाओं को जप, ध्यान, स्वाध्याय, भजन-कीर्तन इत्यादि शुभ वासनाओं के द्वारा नष्ट करें। आपको शाश्वत शिवानन्द की प्राप्ति होगी।

यह त्रिपुर-विनाश है। यही त्रिपुर-रहस्य है।

गुरु की सेवा करें। श्रद्धा और विश्वास के साथ उनकी सेवा करके अपने हृदय को शुद्ध करें। कुण्डलिनी को जाग्रत करने वाली योग-क्रियाओं को उनसे सीख कर उसका अभ्यास करें। उनके निर्देशन में योगशास्त्र का अध्ययन करें। ब्रह्मचर्य का पालन करें। षड्रिपुओं का विनाश करें। अन्तर्दृष्टि रखें। सुषुम्ना नाड़ी में से कुण्डलिनी को ले जायें और चक्रों द्वारा ग्रन्थि-भेदन करें तथा उसका अपने प्रभु सदाशिव से सहस्रार चक्र में संयोग करवा कर भगवान् शिव के परम आनन्द का भोग करवायें।

यह तीनों नगरों अथवा महलों का विध्वंस है। यही त्रिपुर-रहस्य है।

तीनों शरीरों का विनाश करें, अर्थात् तीनों शरीरों—स्थूल भौतिक शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर—से अतीत चले जायें। भगवान् शिव पर ध्यान के द्वारा पाँचों कोषों (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय) से अतीत चले जायें और शिव-सायुज्य प्राप्त करें।

यह तीन नगरों अथवा पुरों का विनाश है। यही त्रिपुर-रहस्य है।

तीनों अवस्थाओं (जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति) के साक्षी बनें। द्रष्टा बन कर रहें। विषय-चेतना से स्वयं को अलग हटा लें। अपने अन्तर में स्थित हो जायें। तुरीय अवस्था अथवा शिव-पद को प्राप्त करें।

यही त्रिपुर-नाश अथवा त्रिपुर-रहस्य है।

भौतिक चेतना, अवचेतन और मनश्चेतना से अतीत चले जायें तथा परम चेतन अवस्था अथवा निर्विकल्प या असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति करें।

यह तीन पुरियों का विनाश है। यही त्रिपुर-रहस्य है।

सहज बुद्धि, तर्क बुद्धि और विवेक—तीनों से ऊपर उठें और अन्तर्प्रज्ञा का तृतीय नेत्र खुलने दें। भगवान् शिव का तीसरा नेत्र—दिव्य चक्षु खोलें और स्वयं को भगवान् शिव की परम ज्योति में लीन कर दें। विचार, इच्छा और भावना—तीनों से ऊपर उठ जायें और शिव-निर्वाण की—परम मौन, विचार-शून्यता की अवस्था में प्रवेश कर जायें।

यह तीन नगरों या पुरियों का नाश है, यही त्रिपुर-रहस्य है।

त्रिपुरसुन्दरी भगवान् शिव की शक्ति है। वह और शिव एक हैं। वह परम सुन्दरी है। वह अपने वरदायी स्वरूप की ओर भक्तों को आकर्षित करके ज्ञान भक्ति और दिव्य ज्योति की वर्षा करती है। अतः वह त्रिपुरसुन्दरी है। वह ऊपर वर्णित तीनों पुरों अथवा नगरों का विध्वंस करने में साधक की सहायता करती है।

समस्त जगत् उनके नियन्त्रण में है। समस्त संसार उनके तीनों गुणों के प्रभाव में है। कर्मों के सम्पूर्ण बन्धन काटे जा सकते हैं। केवल उनकी उपासना के द्वारा कृपा प्राप्त करके ही जन्म और मृत्यु के चक्र को काट कर तोड़ा जा सकता है। केवल उनके नाम-स्मरण और कीर्तन से ही समस्त पापों का नाश करके भगवान् शिव के परम आनन्द की प्राप्ति की जा सकती है।

वही त्रिपुर—तीन नगर कहलाती है। स्त्री अथवा पुरुष का शरीर भी उसी के रूपों में से एक रूप है। समस्त जगत् उसकी देह है। समस्त देवता उसी के रूप हैं। शास्त्र-ग्रन्थों के सभी त्रियक उसी में हैं यथा—तीनों गुण, चेतना की तीनों अवस्थाएँ, तीन अग्नियाँ, तीन शरीर, तीन जगत्, तीन शक्तियाँ (इच्छा-शक्ति, क्रिया-शक्ति, ज्ञान-शक्ति), तीन स्वर (उदात्त, अनुदात्त, स्वरित), त्रिवर्णिका, तीनों कर्म (संचित, आगामी, प्रारब्ध), त्रिमूर्ति, तीन अक्षर—अ, उ, म; तीनों प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय; ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय, द्रष्टा, दृश्य और द्रष्टव्य; ये सभी त्रियक त्रिपुरसुन्दरी में हैं।

सभी देवताओं का इस शरीर में वास है। वे विभिन्न अंगों का प्रतिनिधित्व करने वाली मूर्तियाँ हैं। भगवान् त्र्यम्बक, मूलाधार में रहते हैं; जम्बूकेश्वर स्वाधिष्ठान में, अरुणाचलेश्वर मणिपूर में, नटराज अनाहत में, कालाहस्तीश्वर विशुद्ध में, विश्वेश्वर आज्ञा में और श्रीकण्ठेश्वर का सहस्रार में निवास है।

समस्त तीर्थ-स्थल शरीर में ही हैं—केदार मस्तक में, अमरावती नाक के अग्रभाग में, कुरुक्षेत्र वक्षस्थल में और प्रयाग हृदय में स्थित है।

सभी नवग्रहों के भी शरीर में विशेष स्थल हैं—सूर्य नाद चक्र में है, चन्द्रमा बिन्दु चक्र में है, मंगल नेत्रों में, बुध हृदय में, बृहस्पति मणिपूर में, शुक्र स्वाधिष्ठान में, शनि नाभि में, राहु चेहरे में और केतु वक्ष में स्थित है।

असंख्य नदियाँ और पर्वत भी इस देह में विद्यमान हैं। जो-कुछ भी बाह्य जगत् में दृष्टिगोचर होता है, वह सब-कुछ इस देह के भीतर भी है। यह शरीर लघु ब्रह्माण्ड है। यह पिण्डाण्ड है।

यह त्रिपुर-रहस्य है।

आप सब पर त्रिपुरसुन्दरी की कृपा हो! आपको त्रिपुर-रहस्य का ज्ञान हो और भगवान् शिव का शिव आनन्द अथवा परम आनन्द प्राप्त हो!

कामाक्षी और मूक कवि

'मूक' शब्द का अर्थ है गूँगा। कोई एक भक्त कामाक्षी देवी के मन्दिर में उसका आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए कठिन तप कर रहा था। कामाक्षी देवी उसे आशीर्वाद देने के लिए एक सुन्दर कन्या के रूप में प्रकट हुई। भक्त ने उसे साधारण मानवीय कन्या समझा और कुछ श्रद्धा व्यक्त नहीं की। वह उसे छोड़ कर जाने लगी, तो मन्दिर के एक दूसरे कोने में एक व्यक्ति सोया हुआ मिला। वह जन्म से ही गूँगा था। देवी ने उसे जगाया। उसने जब देवी को देखा, तो उसके आनन्द की सीमा न रही। देवी ने उसकी जिह्वा पर बीजाक्षर लिखा और वाक्-शक्ति का आशीर्वाद दिया। वह प्रख्यात मूक कवि बना। उसने पाँच सौ श्लोक लिखे जो पंचशती कहलाये, जिसमें (१) देवी की महिमा का, (२) उसके चरण-कमलों का, (३) उसकी कृपा, (४) उसकी कृपा-दृष्टि, और (५) उसकी स्नेहपूर्ण मातृ मुस्कान का वर्णन था। इन पाँचों में प्रत्येक पर सौ-सौ श्लोक लिखे। अत: उसकी कृति 'मूक पंचशती' कहलायी।

कवि कुम्भकोणम् के कामकोटिपीठ का आचार्य बना और उनतालीस वर्ष तक गद्दी पर रहा। दक्षिण भारत में 'मूक पंचशती' का नवरात्र उत्सवों में सभी भक्तों द्वारा अत्यधिक भक्तिभाव से पाठ होता है।

कालिदास अनपढ़ चरवाहा था। वह भी काली माँ की कृपा से भारत का महान् कवि बना। कालिदास ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'श्यामलदण्डका' में देवी की महिमा का बहुत सुन्दर वर्णन किया है।

मूक को वाणी देने वाली माँ की जय हो!

माँ से क्षमा-याचना का स्तोत्र

पिता की अपेक्षा बालक को माँ अधिक प्रिय होती है। माँ नम्र, कोमल, मधुर, संवेदनशील तथा स्नेहमयी होती है। पिता दुर्नम्य, कठोर, कटु, उग्र तथा निष्ठुर होता है। मिठाई, फल तथा अन्य उपहार लेने के लिए बच्चा माँ की ओर ही भागता है। बालक पिता की अपेक्षा माँ के समक्ष ही अपना हृदय सरलता से खोल सकता है।

इसी प्रकार कवि और सन्त भी परम पिता की अपेक्षा दिव्य माँ से ही अधिक घुले-मिले रहते हैं। वे अपना हृदय माँ के समक्ष अधिक सहजता से खोल देते हैं। पिता रूप में प्रभु की प्रतिमा को पुकारने की अपेक्षा जब वे माँ के रूप में उसे पुकारते हैं, तो हृदय की आवाज अधिक अपनत्व से निकलती प्रतीत होती है। निम्नलिखित शंकराचार्य की माँ की स्तुति पढ़ने से आपको इस कथन की सत्यता का आभास हो जायेगा :

सबका उद्धार करने वाली हे कल्याणमयी माता!
तुम्हारी पूजा-विधि न जानने के कारण,
धन के अभाव में, आलस्य से और
उन विधियों को अच्छी तरह न कर सकने के कारण,
तुम्हारे चरणों की सेवा करने में जो भूल हुई हो,
उसे क्षमा करो; क्योंकि पूत तो कुपूत हो जाता है,
पर माता कुमाता नहीं होती!!

हे माँ! भू-मण्डल में तुम्हारे सरल पुत्र अनेक हैं,
पर उनमें मैं ही एक बड़ा ही चंचल हूँ,
तो भी हे शिवे! मुझे त्याग देना तुम्हें उचित नहीं,

क्योंकि पूत तो कुपूत हो जाता है,
पर माता कुमाता नहीं होती!!

हे जगदम्ब! हे मात! मैंने तुम्हारे चरणों की
सेवा नहीं की अथवा तुम्हारे लिए प्रचुर धन
भी समर्पित नहीं किया, तो भी
मेरे ऊपर यदि तुम ऐसा अनुपम स्नेह
रखती हो, तो यह सच ही है कि
पूत तो कुपूत हो जाता है,
पर माता कुमाता नहीं होती!!

अध्याय ७

वीर शैववाद और काश्मीर शैववाद

वीर शैववाद

वीर शैव दर्शन केवल शक्ति विशिष्टाद्वैत दर्शन ही है। यह आगमन्त का भाग है। श्री बसवन्न तथा उनके समकालीनों के हाथों इसमें अत्यन्त परिवर्तन आये। बासव निज़ाम रियासतों के गुलबर्ग (कर्नाटक प्रान्त में) से साठ मील दूर कल्यान के शासक, जैन राजा बिज्जाला (११५७-११६७) का प्रधानमन्त्री था।

बसवन्न का व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक था। लोगों के ऊपर उनका अत्यन्त आश्चर्यजनक प्रभाव था। उन्होंने एक आध्यात्मिक सम्मेलन किया। तीन सौ वीर शैव सन्त एकत्रित हुए। साठ महिला सन्त भी थीं। उस भव्य समारोह में सुविख्यात महिला सन्त अक्का महादेवी उपस्थिति थीं। बसवन्न के हाथों में वीर शैववाद लिंगायतवाद बन गया। कर्नाटक के वीर शैवावलम्बियों का लिंगायत-मत एक विशिष्ट मत है। इसके सन्त शरनन हैं।

वीर शैववाद अथवा लिंगायतवाद लक्ष्य अथवा भगवान् शिव की प्राप्ति का मार्ग दर्शाता है। भगवान् शिव, भगवान् सुब्रह्मण्यम्, ऋषभराज, सन्त लिंगर, कुमार देवी, शिव प्रकाश—सभी ने इस दर्शन-सिद्धान्त की प्रांजल व्याख्या की है। इस दर्शन-सिद्धान्त का मुख्य स्रोत वीरागम है। इस मत को मानने वालों की संख्या कर्नाटक में बहुत है।

साधारण शैवमतावलम्बी शिवलिंग को डिब्बी में रखते हैं तथा पूजा के समय इसकी उपासना करते हैं। लिंगायत एक छोटा-सा शिवलिंग चाँदी अथवा सोने की डिब्बी में डाल कर, उसे चेन में पिरो कर गले में डाले रहते हैं। लिंग को देह में धारण करने से भगवान् का ध्यान आता रहेगा और निरन्तर स्मरण बनाये रखने में सहायक होगा।

वीर शैववाद में शक्ति और शिव एक-समान हैं। शक्ति सक्रिय है। शिव मौन द्रष्टा हैं। शिव अनन्त, स्वयं प्रकाश, शाश्वत, सर्वव्यापक हैं। वे शान्ति का सागर हैं। वे अत्यन्त विशाल मौन हैं। शिव प्रत्येक वस्तु को प्रकाशित करते हैं। वे सर्व सम्पूर्ण और स्वतः सम्पूर्ण हैं। वे नित्य-मुक्त और परिशुद्ध हैं। समस्त विश्व उस दिव्य इच्छा की ही अभिव्यक्ति है। वीर शैववाद दर्शन में संसार की धारणा भ्रम न हो कर एक सम्पूर्ण लीला है।

काश्मीर शैववाद

यह प्रतिभिज्ञा पद्धति के नाम से जाना जाता है। काश्मीर शैव-मत का आधार आगम हैं। प्रत्याभिज्ञान दर्शन नाम से जाने जाने वाले आगमन्त काश्मीर में बहुत प्रसिद्ध हुए। सबके लिए इसके अर्थ सुबोध करवाने के उद्देश्य से संस्कृत में चौबीस आगम काश्मीर की घाटी में ही लिखे गये थे। उत्तरी भारत में यह आगमन्त जैन धर्म का प्रचार होने से पूर्व ही उदित हो गया था। फिर यह पश्चिम और पूर्व में फैल गया। पश्चिमी भारत में यह वीर महेश्वर दर्शन नाम से जाना गया तथा दक्षिण भारत में शुद्ध शैव दर्शन कहलाया।

विश्व का एकमात्र सत्य शिव हैं। शिव अनन्त चैतन्य हैं। वे स्वतन्त्र, शाश्वत, निराकार, अद्वितीय, सर्वव्यापक हैं। शिव कर्ता भी हैं और कर्म भी; वे भोग्य भी हैं और भोक्ता भी। चैतन्य में ही विश्व विद्यमान है।

भगवान् अपनी इच्छा मात्र से ही सृष्टि-रचना करते हैं। कर्म, निमित्त कारण जैसे कि प्रकृति, रूप व भ्रम इत्यादि उत्पन्न करने वाली माया की इस पद्धति में मान्यता नहीं है। ईश्वर स्वयं अपने को ही इस प्रकार प्रकट करता है जैसे दर्पण में पदार्थ प्रकट होते हैं। वह अपने रचे हुए पदार्थों से उसी प्रकार प्रभावित नहीं होता जैसे दर्पण अपने में प्रतिबिम्बित पदार्थों की छाया से प्रभावित नहीं होता। वह अपनी ही आश्चर्यजनक शक्ति के द्वारा जीवात्माओं के रूप में प्रकट होता है। ईश्वर इस जगत् का आधार है। उसकी सक्रियता (स्पन्दन) समस्त भेद उत्पन्न करती है।

शिव अपरिवर्तनशील सत्य हैं। वे समस्त विश्व का अन्तर्निहित मूल आधार हैं। उनकी शक्ति के अनन्त रूप हैं। चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया इसके मुख्य रूप हैं।

शक्ति चित् रूप में कार्य करती है, तब वह पूर्ण शुद्ध अनुभव बन जाती है जो शिव-तत्त्व रूप में जानी जाती है। शक्ति का आनन्द रूप कार्य करता है, तो जीवन की उत्पत्ति होती है। यह शक्ति-तत्त्व की दूसरी अवस्था है। तीसरी अवस्था आत्म-अभिव्यक्ति की इच्छा है। तब चौथी अवस्था आती है। ईश्वर-तत्त्व अपनी शक्ति तथा इच्छा से जगत् की सृष्टि करता है। यह अपनी सत्ता के ज्ञान की चेतना की अवस्था है। पाँचवीं अवस्था में ज्ञाता है और ज्ञान का विषय भी है। अब क्रिया आरम्भ होती है। यह शुद्ध विद्या की अवस्था है। इस पद्धति में छत्तीस मुख्य तत्त्व हैं।

बन्धन का कारण अज्ञान है। आत्मा समझता है—'मैं सान्त (नाशवान्) हूँ', 'मैं देह हूँ।' यह भूल जाता है कि यह शिव के समान है और यह कि ये संसार पूर्णतया असत्य और शिव से भिन्न है।

प्रत्याभिज्ञान अथवा सत्य का बोध वास्तव में परम-पद की प्राप्ति के लिए आवश्यक है। जब आत्मा को यह बोध हो जाता है कि वह परमात्मा ही है, तब वह परमात्मा के साथ एकत्व के शाश्वत आनन्द में स्थित हो जाता है। जब द्वैत की भावना समाप्त हो जाती है, तो मुक्त आत्मा शिव में इस प्रकार लीन हो जाता है जैसे जल में जल अथवा दूध में दूध।

वसु गुप्त (आठवीं शताब्दी ए. डी.) ने शिवसूत्र लिखा और उसे कालत्ता को पढ़ाया। सोमनाथ कृत 'शिवदृष्टि' को तिरुमूलर की तिरुमन्दिरम् के समान माना जा सकता है। वसु गुप्त की स्पन्द कारिका, सोमनाथ की शिवदृष्टि (९३० ए. डी.); अभिनव गुप्त की परमार्थ सार और प्रत्यभिज्ञान विमर्शिनी, किमाराजा की शिवसूत्र विमर्शिनी इस सम्प्रदाय की कुछ प्रमुख कृतियाँ हैं।

वे शिव आगमों को तथा सिद्धान्त कृतियों को मूल आधार मानते हैं। वे शंकर के अद्वैत के आधार पर उनका नवीनीकरण करते हैं। सोमनाथ की शिवदृष्टि, उत्पल की प्रत्यभिज्ञान सूत्र और अभिनव गुप्त की कृतियाँ अद्वैत को मान्यता देती है।

अध्याय ८

भगवान् शिव और उनकी लीलाएँ

कैलास पर्वत के अधिपति होने से भगवान् शिव का नाम 'गिरीश' है।

शिव 'त्र्यम्बक' कहलाते हैं, क्योंकि उनके मस्तक पर तीसरा नेत्र है, जो ज्ञान-चक्षु है।

'हर' शब्द 'हृ' धातु में 'अति' प्रत्यय लगा कर (हरति) बना है; क्योंकि वे समस्त पापों को हर लेते हैं। 'हर' से अर्थ है—वे, जो प्रलय के समय जगत् को स्वयं अपने में समा लेते हैं।

शिव अपने हाथों में परशु और मृग धारण किये रहते हैं। अन्य दो हाथों के द्वारा वे वरद और अभय मुद्रा धारण किये होते हैं। यहाँ मृग ब्रह्मा हैं। शिव अत्यन्त शक्तिवान् हैं। स्वयं ब्रह्मा भी उनके नियन्त्रण में हैं।

त्रिपुरारी

भगवान् ने त्रिपुर असुरों का संहार किया। उन्होंने असुरों के माया द्वारा निर्मित सोने, चाँदी व लोहे के तीनों पुरों अथवा नगरों को विध्वंस कर दिया। तीनों पुरों द्वारा सुरक्षित असुरों ने ईश्वर में विश्वास रखने वाले समस्त लोगों को भयभीत करना आरम्भ कर दिया था। भगवान् शिव त्रिपुरारी कहलाते हैं; क्योंकि उन्होंने असुरों को तथा त्रिपुर नगरों को नष्ट कर दिया।

शिव-ज्योति

एक दिन ब्रह्मा और विष्णु में परस्पर विवाद हो गया कि हम दोनों में से बड़ा कौन है। इन दोनों के दर्प को चूर्ण करने के लिए भगवान् शिव प्रकाश-स्तम्भ जैसे ज्योतिर्लिंग के रूप में प्रकट हो गये। ब्रह्मा और विष्णु ने ज्योति के आदि और अन्त को ढूँढ़ने का अत्यन्त प्रयत्न किया; किन्तु वे सफल न हो सके।

नीलकण्ठ

जब समुद्र-मन्थन किया गया, तो उसमें से एक तीव्र हलाहल निकला। उससे संसार को बचाने के लिए भगवान् शिव ने उसका पान किया। इससे उनका कण्ठ नील वर्ण का हो गया। अत: उनको नीलकण्ठ नाम से पुकारा जाता है।

रावण और शिव

रावण भगवान् शिव का बहुत भक्त था। वह शिव-आराधना के लिए प्रतिदिन कैलास पर्वत पर जाता था। यह उसे बहुत कष्टप्रद प्रतीत होता था। अपनी इस प्रतिदिन की कैलास पर्वत की यात्रा से बचने के लिए उसने अपने मन में कैलास पर्वत को ही अपने निवास-स्थान पर ले जाने का सोचा। उसने कैलास को ज्यों-ही धकेलना आरम्भ किया, तो पर्वत कँपकँपाया। शिव-पत्नी पार्वती इससे भयभीत हो कर शिव से लिपट गयी। शिव ने अपने पाँव के अंगुष्ठ से रावण को थोड़ा-सा धकेला और उसे पाताल लोक में पहुँचा दिया।

हरि और शिव

हरि प्रतिदिन एक सहस्र कमल-पुष्पों से शिव की अर्चना किया करते थे। एक दिन एक पुष्प कम हो गया। उन्होंने सहस्र की संख्या पूर्ण करने के लिए स्वयं अपना कमल-नेत्र ही चढ़ा दिया। उनकी इस अगाध भक्ति से प्रसन्न हो कर भगवान् शिव ने उन्हें सुदर्शन चक्र दिया। यह वही सुदर्शन चक्र है जिसे विष्णु सदैव धारण किये रहते हैं। यह चक्र भक्ति का प्रतीक है।

ब्रह्मा का वरदान

एक असुर ने ब्रह्मा की उपासना की और उनसे समस्त विश्व को नष्ट कर सकने की शक्ति प्राप्त करने का वरदान माँगा। ब्रह्मा उसे यह वरदान देने के लिए कुछ अनिच्छुक थे। वे थोड़ा-थोड़ा मान तो गये; किन्तु उसे कुछ प्रतीक्षा करने के लिए कहा। देवताओं ने जब यह सुना, तो वे अत्यन्त भयभीत हो गये और शिव के पास जा कर सब-कुछ बताया। शिव ने नृत्य आरम्भ कर दिया जिससे कि ब्रह्मा का ध्यान बँट जाये और वरदान देने में विलम्ब हो जाये। इस प्रकार उन्होंने संसार की रक्षा की।

सुब्रह्मण्य का जन्म

तारकासुर ने समस्त देवताओं को स्वर्ग से निकाल दिया। देवता ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने कहा—"असुर को मेरे वरदान से ही यह शक्ति प्राप्त हुई है; अत: मैं इसका वध नहीं कर सकता। मैं तुम्हें उपाय बता देता हूँ। भगवान् शिव के पास जाओ, वे योग समाधि में हैं। उन्हें यदि पार्वती से मिलने के लिए प्रेरित कर सको, तो उनसे एक अत्यन्त शक्तिशाली पुत्र उत्पन्न होगा। वही इस असुर का संहार करेगा।"

तब इन्द्र ने कामदेव को उसकी पत्नी रति और उसके सहयोगी वसन्त के साथ भगवान् शिव के लोक कैलास पर्वत पर जाने को कहा। वे तीनों तत्काल कैलास पर्वत की ओर चले। वहाँ वसन्त ऋतु आ गयी। यह देख कर सभी ऋषि आश्चर्यचकित हो गये। कामदेव ने वृक्ष की ओट में छिप कर शिव पर बाण चलाया। इस समय पार्वती शिव की उपासना करते हुए उनके हाथों में पुष्प अर्पित कर रही थी। उनके हाथ से शिव के हाथ का स्पर्श हो गया। शिव को अचानक भावातिरेक के रोमांच की अनुभूति हुई और उनसे बीज स्खलित हुआ। शिव आश्चर्यचकित थे कि उनके योग-भंग होने का कारण क्या है। उन्होंने इधर-उधर दृष्टि घुमायी, तो वृक्ष की ओट में कामदेव को देखा। उन्होंने अपना तृतीय नेत्र खोला। तभी अग्नि प्रज्वलित हुई और उससे कामदेव जल कर भस्म हो गये।

शिव का स्खलित बीज अग्नि में गिर गया, किन्तु अग्निदेव उसे सहन न कर सके। उन्होंने उसे गंगा में गिरा दिया। गंगा ने इसे सरकण्डे के वन में गिरा दिया जहाँ सुब्रह्मण्य (शरजन्म, शरवण भव) का जन्म हुआ। सुब्रह्मण्य देवताओं के सेनापति बने और उन्होंने ब्रह्मा के वचनानुसार तारकासुर का वध किया।

भगवान् शिव और दक्ष

दक्ष विश्व के पूर्वज ऋषियों के यज्ञ में जाते हैं और वहाँ रुद्र जो उनसे पहले ही वहाँ उपस्थित थे, के द्वारा सम्मानित न होने के कारण उनकी भर्त्सना करके वहाँ से वापस आ जाते हैं। इसके प्रत्युत्तर में नन्दीश्वर दक्ष को तथा अन्य ब्राह्मणों को दुत्कारते हैं। और तब रुद्र उस यज्ञ-भूमि को त्याग कर वापस चले जाते हैं।

दक्ष की पुत्री सती, जिसका नाम दक्षायनी भी है, अपने पिता दक्ष के 'बृहस्पति' यज्ञ में जाने के लिए शिव से अनुमति माँगती है। शिव उसे बताते हैं कि यह अत्यन्त अनुचित है।

अपने प्रभु के समझाने पर भी सती दक्ष के यज्ञ में चली जाती है। अपने पिता द्वारा उपेक्षित होने पर और यज्ञ में रुद्र का भाग न देख कर क्रोधित हो वह अपने पति की महानता का गुणगान तथा दक्ष की निन्दा करती है तथा योगाग्नि द्वारा स्वयं अपने शरीर को भस्म कर देती है।

सती द्वारा शरीर-त्याग के विषय में सुन कर शंकर क्रोध में भर कर अपनी जटाओं से वीरभद्र को उत्पन्न कर दक्ष के विनाश का कारण बनते हैं।

देवताओं से दक्ष के विनाश के विषय में सुन कर ब्रह्मा रुद्र को शान्त करते हैं तथा इस प्रकार दक्ष व अन्य सबकी रक्षा करते हैं।

ब्रह्मा द्वारा की गयी स्तुति से प्रसन्न हो कर शिव अन्य देवताओं सहित यज्ञ-स्थल पर जाते हैं। दक्ष तथा अन्य सब पुनर्जीवित होते हैं। यज्ञाग्नि से विष्णु के प्रकट होने पर दक्ष तथा अन्य सब उनकी स्तुति करते हैं, प्रक्षालन समारोह की समाप्ति के पश्चात् समस्त देवता अपने-अपने लोक में चले जाते हैं। मैत्रेय इस कथा के, पार्वती के रूप में सती के जन्म की और स्कन्द की कथा सुनने के फल का वर्णन करते हैं।

दक्षिणामूर्ति

कैलास पर्वत के रत्न जटित भव्य भवन में वामांग में देवी माँ सहित भगवान् शिव बैठे थे। उस समय देवी ने उनकी स्तुति करते हुए प्रार्थना की कि उनका दक्ष की पुत्री होने से हुआ दक्षायनी नाम बदल दें। यह दक्ष शिव का अनादर करने के कारण तथा अपने ही दर्प के कारण शिव द्वारा मृत्यु को प्राप्त हुआ था। यह सुन कर शिव ने कहा कि देवि, पर्वतराज जो कि पुत्री प्राप्ति के लिए कठिन तप कर रहा था, की पुत्री बन कर जन्म लें। उन्होंने यह भी कहा कि वे स्वयं आ कर उनसे विवाह करेंगे। यह आदेश पा कर पार्वती ने पर्वतराज की कन्या के रूप में जन्म लिया और पाँच वर्ष की आयु से ही भगवान् शिव की पत्नी होने के लिए कठिन तपस्या आरम्भ कर दी।

देवी की अनुपस्थिति में, जब भगवान् शिव एकाकी थे, तो ब्रह्मा के पुत्रों—सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार ने भगवान् शिव के दर्शनार्थ आ कर उन्हें प्रणाम किया तथा अविद्या को दूर करने तथा मोक्ष-प्राप्ति के मार्ग पर चलने की शिक्षा देने के लिए भगवान् से प्रार्थना की। उन्होंने बताया कि शास्त्रों का विस्तृत अध्ययन कर लेने पर भी उनको अन्तः शान्ति की प्राप्ति नहीं हुई है तथा उन्हें मोक्ष-प्राप्ति के लिए अन्तः रहस्य के ज्ञान की आवश्यकता है।

ऋषियों की इस प्रार्थना को सुन कर भगवान् शिव ने परम गुरु दक्षिणामूर्ति के रूप में मौन रह कर चिन्मय मुद्रा दर्शाते हुए उन्हें अन्तर्ज्ञान का उपदेश देना आरम्भ किया। ऋषियों ने उनके दर्शाये हुए मार्ग पर चल कर ध्यान-समाधि द्वारा अवर्णनीय असीम आनन्द की उच्च अवस्थाओं को प्राप्त कर लिया। इस प्रकार भगवान् शिव दक्षिणामूर्ति के नाम से जाने गये। भगवान् दक्षिणामूर्ति का आशीर्वाद हम सब पर हो! उनकी कृपा से आप सब शाश्वत शान्ति और परम आनन्द की गहराइयों तक जायें और परम आनन्द का उपभोग करें!

त्रिपुर-संहार

इसका वर्णन महाभारत के कर्ण पर्व में आता है। प्राचीन काल में देव और दानवों के मध्य युद्ध हुआ। असुर इस युद्ध में पराजित हुए। तारकासुर के तीनों पुत्रों ने देवताओं से बदला लेना चाहा। उन्होंने उग्र तप करके सृष्टिकर्ता ब्रह्मा से वरदान प्राप्त कर लिया। इस वरदान के परिणामस्वरूप अब उन्हें केवल वही पराजित कर सकता था जो एक ही बाण से उनके तीनों नगरों का विध्वंस कर सकता हो।

उन्होंने तीन नगरों अथवा पुरों का निर्माण किया। एक स्वर्ण का स्वर्ग में, दूसरा चाँदी का वायु में और तीसरा लोहे का पृथ्वी पर। अब उन्होंने देवताओं तथा ऋषियों को त्रास देना आरम्भ कर दिया। तब समस्त देवताओं ने ब्रह्मा से जा कर करुण पुकार की। तब ब्रह्मा ने उत्तर दिया कि केवल महादेव ही, जिन्होंने विशिष्ट तप से योग व सांख्य का ज्ञान प्राप्त किया हुआ है, इन असुरों का संहार कर सकते हैं। सब देवता महादेव के पास पहुँचे और उन्हें सर्वलोकमय दिव्य रथ समर्पित किया तथा उन्हें ऐसा धनुष-बाण भी दिया जिसके महातेजस्वी विष्णु बाण तथा अग्नि उसकी नोक बने। उन्होंने तीनों पुरों की ओर बाण छोड़ने की प्रार्थना की। ब्रह्मा उस दिव्य रथ के सारथि बने। महादेव ने तीनों पुरों की ओर सन्धान करके बाण छोड़ा। पलक झपकते ही तीनों नगर नष्ट हो गये। तब समस्त देवताओं ने महादेव का स्तवन किया और स्वर्गलोक को प्रस्थान किया।

महादेव ने देवताओं से कहा था कि वे स्वयं असुरों का संहार न कर सकेंगे; क्योंकि असुर बहुत शक्तिशाली हैं, किन्तु वे अपना आधा बल देवताओं को दे देंगे तो देवता मिल कर उन्हें परास्त कर देंगे। किन्तु देवताओं ने कहा कि वे महादेव का आधा बल सहन न कर सकेंगे; अतः वे अपना आधा बल उन्हें दे देंगे, स्वयं भगवान् शिव ही उन असुरों का वध करें। महादेव इसे मान गये। वे समस्त देवताओं से अधिक शक्तिशाली हुए; अतः वे महादेव कहलाये।

भगवान् शिव द्वारा नाकिरार को दण्ड और क्षमा

एक बार मदुराई के एक पाण्ड्य राजा को ऐसा आभास हुआ कि उसकी रानी के केशों में से एक स्वाभाविक प्रकार की सुगन्ध आती है। उसके हृदय में एक शंका उत्पन्न हुई कि क्या मानव के केशों में प्राकृतिक सुगन्ध हो सकती है अथवा इत्र और फूलों से ही सुगन्ध आती है। अगले दिन वह संघम् (तमिल संस्था) गये, वहाँ एक सहस्र स्वर्ण-मुद्राओं की थैली दी और कहा कि जो भी कवि उसकी शंका का समाधान कर देगा, उसे स्वर्ण-मुद्राओं का पारितोषिक मिलेगा। अनेक कवियों ने कविताएँ लिखीं; किन्तु कोई भी राजा को सन्तुष्ट न कर सका।

मन्दिर में दारुमी नाम का एक अत्यन्त निर्धन ब्राह्मण था। उसने भगवान् शिव से प्रार्थना की—"हे दयानिधान, मैं बहुत निर्धन हूँ। मैं अब विवाह करना चाहता हूँ। मुझे निर्धनता से मुक्त कीजिए। दया करके यह स्वर्ण-मुद्राएँ मुझे दिला दीजिए। मेरा एकमात्र सहारा आप ही हैं!" भगवान् शिव ने उसे एक कविता दी और कहा—"इस कविता को संघम् ले जाओ। तुम्हें स्वर्ण-मुद्राएँ मिल जायेंगी।"

राजा उस कविता को देखते ही प्रसन्न हो गया; क्योंकि उसकी समस्त शंकाओं का समाधान हो गया, किन्तु संघम् कवियों ने उसे स्वीकार न किया। उनमें से एक नाकिरार नामक कवि ने कहा कि इस कविता में एक त्रुटि है। वह निर्धन पुजारी हृदय में अत्यन्त दुःखी हुआ। वह वापस मन्दिर में लौट आया और भगवान् के समक्ष खड़ा हो कर कहने लगा—"हे प्रभु! आपने मुझे त्रुटिपूर्ण कविता क्यों दी? आपको कोई भी भगवान् नहीं मानेगा, मुझे इसी बात का अत्यधिक दुःख है।" कविता का अर्थ इस प्रकार था—"हे सुन्दर पंखधारिणी मक्षिका, तुम पुष्प-पराग संग्रह करने में इतना समय लगाती हो! स्नेहवश नहीं, प्रत्युत सत्य कहो कि क्या तुम किसी ऐसे पुष्प को जानती हो जो सुन्दर दन्तावली वाली मयूररंगी सुन्दर बालों वाली प्रियतमा राजकुमारी के बालों की सुगन्ध से अधिक सुगन्धयुक्त हो?"

अब भगवान् शिव ने कवि का रूप धारण किया और संघम् जा कर पूछने लगे—"किस कवि को इस कविता में दोष प्रतीत हुआ है?" नाकिरार ने कहा—"मैंने कहा है कि इसमें दोष है?" भगवान् ने पूछा—"क्या दोष है?" नाकिरार ने कहा—"शब्द-रचना में दोष नहीं है, अर्थ में त्रुटि है।" भगवान् ने कहा—"मुझे बताओ, अर्थ में क्या त्रुटि है?"

नाकिरार ने उत्तर दिया—"रानी के बालों में अपनी निजी सुगन्ध नहीं है, फूलों के साथ होने से ही उनसे सुगन्ध आती है।" भगवान् शिव ने कहा—"क्या पद्मिनी के केशों में भी फूलों के कारण ही सुगन्ध आती है?" नाकिरार ने कहा—"हाँ।" भगवान् ने पूछा—"क्या स्वर्गिक अप्सराओं के केशों से भी सुगन्ध पुष्पों के कारण से है?" नाकिरार ने उत्तर दिया—"हाँ, उनके केशों की सुगन्ध मन्दार पुष्पों के कारण है।" भगवान् ने पूछा—"क्या भगवान् शिव की वामांगी भगवती उमा के केशों की सुगन्ध भी फूलों के कारण है?" नाकिनार ने कहा—"हाँ, बिलकुल ऐसा ही है।"

भगवान् शिव ने अपना तीसरा नेत्र जरा-सा खोला। नाकिनार ने कहा—"मैं इस तीसरे नेत्र से नहीं डरता। चाहे तुम भगवान् शिव ही क्यों न होओ, चाहे तुम अपने सारे शरीर में से ही आँखें क्यों न दिखाने लगो, फिर भी इस कविता में त्रुटि है।" भगवान् शिव के तीसरे नेत्र की अग्नि नाकिरार पर पड़ी—वह उसकी तीव्रता को झेल न सका। अत: स्वयं को शान्त करने के लिए तत्काल ही साथ के कमल-ताल में कूद गया।

तब समस्त कवि भगवान् शिव के निकट जा कर प्रार्थना करने लगे—"हे प्रभु! नाकिरार को क्षमा-दान दे दीजिए!" उनकी कृपा से उसके शरीर की अग्नि शान्त हुई। अपनी भूल के लिए पश्चात्ताप करते हुए वह क्षमा-याचना करने लगा—"मैंने भगवती उमा के केशों में भी दोष निकाला, मुझे भगवान् के अतिरिक्त अन्य कोई भी क्षमा नहीं कर सकता।" अत्यन्त प्रेम-विह्वल हो कर वह स्तुति करने लगा। भगवान् शिव तालाब में जा कर उसे बाहर निकाल लाये।

तब नाकिनार तथा अन्य कवियों ने स्वर्ण की थैली दारुमी को दे दी।

गुरु को पहचानें

भक्ति का उदय उसी व्यक्ति के हृदय में होता है जिसने अपने पूर्व-जन्मों में फल की इच्छा से रहित हो कर, कर्तृत्व के अभिमान और अहंता को त्याग कर शुभ कर्म किये हों। भक्ति से आत्मज्ञान का विकास होता है और आत्मज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है!

प्राचीन काल में कलिंग देश में वीरसिन्धु नामक राजा राज्य करता था। उसने अपने पूर्व-जन्म में कठिन तप और ध्यान तथा योग किया था; किन्तु उसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं हुई थी। वह योग-भ्रष्ट बना; क्योंकि उसने अपने राजा के इस अन्तिम जन्म में अवशिष्ट कर्मों के फल को भोगना था। अत: उसने राजा का पुत्र हो कर जन्म लिया और समय आने पर कलिंग का राजा बना। दस वर्ष तक उसने शासन किया।

पूर्व-जन्म के धार्मिक संस्कारों तथा ईश्वर की कृपा के फलस्वरूप उसके हृदय में विवेक और वैराग्य उदय हुआ। वह मन में विचार करने लगा—''मैं वही खाने-पीने और सोने के काम में लगा हुआ हूँ। इस देश पर शासन करने वाले मेरे असंख्य पूर्वज मिट्टी में मिल चुके हैं। इतना धन और राज्य के होते हुए भी मेरे मन में शान्ति नहीं है। मुझे गुरु धारण कर के, आत्म ज्ञान प्राप्त करके अमरत्व तथा परम आनन्द की स्थिति तक पहुँचना चाहिए।''

वीरसिन्धु राजा ने समस्त पण्डितों, संन्यासियों, साधुओं और महात्माओं को निमन्त्रण भेजे। उसने निमन्त्रण-पत्र में इस प्रकार लिखा—''मैं उस परम गुरु को आधा राज्य दूँगा जो मुझे उचित दीक्षा दे कर आत्मज्ञान करवा दे। यदि वह ऐसा कर सकने में असफल रहा, तो उसे कारागार में डलवा दिया जायेगा।''

अनेक पण्डित और साधु राजा के पास आये। एक ने तारक मन्त्र दिया, अन्य ने पंचाक्षर दिया, तीसरे ने अष्टाक्षर दिया; किन्तु कोई भी राजा का समाधान करने में सफल न हो सका। अतः उसने सबको कारागार में डाल दिया। वह अपने पूर्व-जन्मों में ही इन सब मन्त्रों से दीक्षित हो चुका था।

गुरु की प्राप्ति न होने के कारण राजा वीरसिन्धु अत्यन्त व्याकुल हो गया। भगवान् शिव ने एक साधारण कुली का रूप धारण किया। वह अत्यन्त काले वर्ण के थे और उन्होंने जीर्ण-शीर्ण वस्त्र पहने हुए थे। वह राजा के समक्ष प्रकट हुए। राजा उनका स्वागत करने लिए आगे बढ़ कर आया। भगवान् की कृपा से वह जान गया कि यह कुली अन्य कोई नहीं, स्वयं भगवान् ही हैं। कुली ने राजा की ओर हाथ उठा कर रुकने का संकेत करते हुए कहा—''रुको।'' और स्वयं लोप हो गये। राजा समझ गया कि गुरु ने उसे मन और उसकी गति को रोकने का आदेश दिया है। राजा ने खड़े-खड़े ही आँखें बन्द कीं और मन को विषयों का चिन्तन करने से रोक दिया। उसने मन की समस्त वृत्तियों को नियन्त्रित कर लिया। यह सब उसके लिए सरल था; क्योंकि उसने पूर्व-जन्म में योग और ध्यान का अभ्यास किया हुआ था। वह निर्विकल्प समाधि में चला गया और मूर्तिवत् हो गया। उसने आँखें नहीं खोलीं।

दरबार में मन्त्री घण्टों तक प्रतीक्षा करते रहे; किन्तु राजा वीरसिन्धु ने आँखें न खोलीं। तब मन्त्रियों ने सोचा—''राजा समाधि में चला गया है, न जाने अब कब वापस लौटे। राज-कार्य अब स्वयं हमें ही देखने होंगे।'' उन्होंने राजा के हाथ से मुद्रिका निकाली और राज-कार्यों में उसका प्रयोग आरम्भ कर दिया।

राजा ने छह वर्ष के पश्चात् आँखें खोलीं और मन्त्रियों से पूछा—''मेरे गुरु कहाँ हैं?'' मन्त्रियों ने उत्तर दिया—''हे माननीय महाराज! गुरु ने श्रीमन्त को एक शब्द कहा और तत्काल अन्तर्धान हो गये। आप गत छह वर्षों से यहीं पर मूर्तिवत् खड़े हैं। हम आपकी अँगूठी की सहायता से राज-कार्य चला रहे हैं। समस्त पत्रों में आपकी अँगूठी की ही मोहर है।''

राजा आश्चर्यचकित रह गया। उसने मन में सोचा—''छह वर्ष एक क्षण की भाँति बीत गये! मुझे परम आनन्द की अनुभूति हुई। इस परम आनन्द की अनुभूति होने के पश्चात् मुझे अब शासन करने में कोई रुचि नहीं रह गयी है।'' उसने राजमहल को त्याग दिया और वन में जा कर समाधि में बैठ गया।

राजा के पूर्व-जन्म के योगाभ्यास से उत्पन्न यौगिक संस्कारों ने उसे इस जन्म में परमानन्द की प्राप्ति में सहायता की। जिन्हें इस जन्म में पर्याप्त भक्ति और धार्मिक रुचि नहीं है, उन्हें जप, कीर्तन, ध्यान और स्वाध्याय करना चाहिए। उन्हें सन्तों का संग करना चाहिए। इस प्रकार उनमें धार्मिक संस्कार विकसित होंगे। यह उनके अगले जन्म के लिए मूल्यवान् सम्पत्ति होगी। अगले जन्म में वे अल्पायु में ही योगाभ्यास आरम्भ कर देंगे।

यह कहना कठिन है कि गुरु अथवा भगवान् आपको दीक्षित करने के लिए किस रूप में प्रकट होंगे। वे कुष्ठरोगी के रूप में आ सकते हैं जैसे श्री हनुमान् जी ने किया, अथवा अछूत के रूप में आ सकते हैं जैसे भगवान् कृष्ण ने किया, अथवा साइस के रूप में आ सकते हैं जैसे भगवान् शिव ने किया। साधक को अत्यन्त ध्यान से और जागरूकता से पहचानना होगा कि भगवान् कौन-कौन से विभिन्न रूप धारण कर सकते हैं।

भगवान् शिव का विष-पान करना

एक बार देवताओं और असुरों में अत्यन्त दीर्घकाल तक भयानक युद्ध चला। असंख्य देवता और असुर इस युद्ध में मारे गये। देवताओं ने सोचा कि उन्हें अमृत-पान करके अपना जीवन और अधिक दीर्घ करके फिर युद्ध और आगे चलाना चाहिए। इस इच्छा को ले कर वे ब्रह्मा के पास पहुँचे। ब्रह्मा ने कहा—''यह कार्य मैं नहीं कर सकूँगा। यह तो केवल विष्णु भगवान् ही कर सकते हैं।'' तब ब्रह्मा तथा अन्य सब देवता क्षीर सागर में नारायण भगवान् के पास पहुचे।

भगवान् श्री हरि ने देवों और दानवों को मन्दराचल की मथानी तथा वासुकी नाग की डोरी की सहायता से समुद्र-मन्थन करने को कहा। जब समुद्र-मन्थन आरम्भ हुआ, तो सर्वप्रथम समुद्र में से हलाहल विष निकला। उस भयानक विष ने लोगों को जला कर भस्म

करना आरम्भ कर दिया। देवताओं, दानवों और ऋषियों में भगदड़ मच गयी। विष्णु भगवान् भी उस भयानक विष को नष्ट न कर सके। उनका शरीर भी काला पड़ गया। वे देवताओं और ब्रह्मा सहित कैलास पर्वत की ओर भागे। उन्होंने भगवान् शिव को सारी घटना बतायी। तब भगवान् शिव ने सारे हलाहल को एक बूँद में एकत्रित करके हथेली पर रख कर निगल लिया। तब ब्रह्मा और विष्णु ने उनसे प्रार्थना की कि इस विष को वे उनके रक्षक के प्रतीक के रूप में अपने कण्ठ में धारण करके रखें। भगवान् शिव ने ऐसा ही किया। उस विष के प्रभाव से उनका कण्ठ नील वर्ण का हो गया और तभी से वे 'नीलकण्ठ' या 'कालकण्ठ मूर्ति' कहलाते हैं। तब भगवान् शिव ने कहा—''यदि अब तुम समुद्र-मन्थन करोगे, तो अमृत तथा अन्य अनेक वस्तुओं की प्राप्ति होगी।'' सभी देवताओं ने अमृत-पान किया और आनन्दमग्न हो गये।

भगवान् शिव का वृषभ को वाहन बनाना

चतुर्युग का दो सहस्र गुणा ब्रह्मा का एक दिन होता है। ऐसे तीस दिनों का उनका एक मास होता है। ऐसे द्वादश महीनों का उनका एक वर्ष और ऐसे शत वर्षों की ब्रह्मा की पूर्ण आयु होती है। ब्रह्मा की पूर्ण आयु काल के बराबर विष्णु भगवान् का एक दिन होता है और ऐसे दिनों के शत वर्षों के पश्चात् विष्णु भगवान् भी परब्रह्म में लीन हो जायेंगे। समस्त अण्डज नष्ट हो जायेंगे। प्रचण्ड वायु के महावेग से सप्त सागर महाप्रलय का रूप धारण कर समस्त जगत् को ढक लेंगे। तब केवल भगवान् शिव रहेंगे। तब वे अपने तृतीय नेत्र की अग्नि से सब-कुछ भस्म कर देंगे और फिर नृत्य करेंगे।

एक बार धर्म देवता ने मन में सोचा—''मुझे मोक्ष कैसे प्राप्त हो सकता है? यदि भगवान् शिव के पास जाऊँ, तभी मुझे मोक्ष प्राप्त हो सकता है।'' उसने बैल का रूप धारण किया और भगवान् शिव के पास जा कर बोला—''हे प्रभु! कृपया मुझे अपने वाहन के लिए स्वीकार करें और मेरी रक्षा करें।''

भगवान् शिव ने धर्मराज की विनम्र प्रार्थना को स्वीकार करते हुए कहा—''कृतयुग में चार चरणों से, त्रेता में तीन चरणों से, द्वापर में दो चरणों से तथा कलियुग में एक चरण से धर्म का पालन करो। मेरे आशीर्वाद से तुम सम्पूर्ण वैभव तथा शक्तियों से सम्पन्न होगे। तुम सदैव मेरा वाहन रहोगे। तुम मेरे साथ एक हो कर रहोगे।''

जब भगवान् शिव ने त्रिपुर-संहार किया, तब विष्णु भगवान् ने वृषभ रूप में उनकी सहायता की ।

भगवान् शिव द्वारा शीश पर गंगा को धारण करना

एक बार कैलास पर्वत पर पार्वती ने अपने हाथों से भगवान् शिव के नेत्रों को बन्द कर दिया। उसी क्षण सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि का प्रकाश लुप्त हो गया। समस्त जगत् में भयंकर विध्वंस होने लगा। दीर्घ काल तक सब अन्धकार में डूब गये। भगवान् शिव ने ज्यों-ही तीसरा नेत्र जरा-सा खोला कि सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि ने पुन: चमकना आरम्भ कर दिया और अन्धकार समाप्त हो गया।

पार्वती भयभीत हो गयी। उसने अपने हाथ हटाये और उँगलियों से पसीना टपकने लगा। यह पसीना असंख्य शाखाओं वाली दस गंगाओं के रूप में बहने लगा। इन नदियों से विश्व में और भी कुहराम मचने लगा। तब ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र भगवान् शिव के पास आये और इस महाविपत्ति को रोकने की प्रार्थना की।

भगवान् शिव दयार्द्र हो गये और उन्होंने सम्पूर्ण जल को अपनी जटाओं के एक बाल में समाहित कर लिया। तब ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र ने उस जल में से थोड़ा-सा जल अपनी सृष्टि के लिए माँगा। भगवान् शिव ने उन्हें जल दिया। वह जल वैकुण्ठ में विरजा नदी, सत्यलोक में मनसा तीर्थ और इन्द्रलोक में देवगंगा बनी। भागीरथ राजा सगर के साठ सहस्र पुत्रों की रक्षार्थ ब्रह्मलोक से उसी गंगा को पृथ्वी पर लाये।

भगवान् शिव की भिक्षा माँगने की लीला

दारुका वन के ऋषियों ने सोचा कि भगवान् शिव की भक्ति और पूजा करने का कोई लाभ नहीं है और वे यज्ञों के द्वारा ही मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। अत: उन्होंने भगवान् की उपासना छोड़ कर बड़े उत्साह से यज्ञादि करना आरम्भ कर दिया।

तब भगवान् शिव ने विष्णु भगवान् से कहा—"तुम मोहिनी रूप धारण करके ऋषियों के निवास-स्थान दारुका वन में चले जाओ। उनके मन में अब मेरे प्रति कोई श्रद्धा नहीं है। वे अनुचित मार्ग पर जा रहे हैं। हमें उनको शिक्षा देनी चाहिए। उनको उत्तेजित करके मोहित कर दो, उनके व्रत को भंग कर दो।" उन्होंने स्वयं भी भिक्षुक का रूप धारण कर लिया।

विष्णु भगवान् ने मोहिनी रूप में दारुका वन में प्रवेश किया। समस्त ऋषि बुद्धि और विवेक-शक्ति खो बैठे और कामोत्तेजित हो कर मोहिनी का अनुसरण करने लगे।

भगवान् शिव ऋषि-पत्नियों की पर्णकुटियों में प्रवेश करके अति-सुन्दर श्रुतियाँ और स्तोत्र गाते हुए भिक्षुक के रूप में घूमने लगे। ऋषि-पत्नियाँ कामातुर हो उनका

अनुसरण करने लगीं। वे उन्हें विभिन्न ढंगों से प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगीं। भगवान् शिव असंख्य रूप धारण करके प्रत्येक स्त्री के मन में बस गये। समस्त ऋषि-पत्नियों ने मानसिक सम्भोग किया। प्रात:काल वे अठारह सहस्र जटा-कमण्डलु-धारी ऋषियों सहित उपस्थित हुईं। उन सभी ने भगवान् शिव की स्तुति की। भगवान् शिव ने उन्हें आशीर्वाद दे कर वन में तप करने को कहा। ऋषियों ने ऐसा ही किया।

ऋषियों ने अपनी पत्नियों की यह दशा देखी और कहा—''हम मायावी मोहिनी द्वारा मुग्ध हो गये। उस भिक्षुक ने हमारी पत्नियों के सतीत्व को भंग कर दिया। हे प्रभु! काम-वासना कितनी शक्तिशाली है? माया बड़ी विचित्र है!''

भगवान् शिव का त्रिशूल और मृग इत्यादि धारण करना

दारुका वन के ऋषियों ने भगवान् शिव को नष्ट करने के लिए यज्ञ किया। यज्ञाग्नि में से एक भयानक सिंह निकला। उन्होंने सिंह को भगवान् शिव को मारने की आज्ञा दी। भगवान् ने सिंह को मार दिया और उसके चर्म को कमर में लपेट लिया। तब उन्होंने भगवान् शिव को मारने के लिए त्रिशूल बनाया। भगवान् ने उसे अपने अस्त्र के रूप में धारण कर लिया। फिर उन्होंने भगवान् शिव को मारने के उद्देश्य से तीखे सींगों वाले मृग को बनाया। भगवान् ने उसे अपने बायें हाथ में धारण कर लिया।

उसके पश्चात् उन्होंने असंख्य विषैले काले सर्प बनाये जिनसे भगवान् शिव को समाप्त कर सकें। भगवान् ने उन्हें आभूषण की भाँति धारण कर लिया। फिर उन्होंने असंख्य भूत गणों का भगवान् शिव को मारने के उद्देश्य से निर्माण किया। भगवान् ने उन्हें अपनी सेना के रूप में रख लिया। तब उन्होंने भगवान् को मारने के लिए डमरू बनाया। भगवान् ने उसे भी अपने हाथ में ले लिया। फिर उन्होंने मुयलक असुर बनाया। असुर मुयलक यज्ञाग्नि ले कर भगवान् को मारने के लिए चल पड़ा। भगवान् शिव ने अग्नि को मलु नाम से हाथ में ले लिया और मुयलकासुर को पैर के नीचे दबा लिया।

भगवान् शिव की वामांगी उमा

संहार-कार्य समाप्त हो जाने के पश्चात् भगवान् शिव की कृपा से प्रकट हुए ब्रह्मा जी ने सृष्टि की पुनर्रचना करने की सोची। उन्होंने सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार की संरचना की। किन्तु उन्होंने गृहस्थ धर्म में प्रवेश नहीं किया, वे ज्ञानी हो कर योगी हो गये।

ब्रह्मा जी वैकुण्ठ में जा कर विष्णु भगवान् से कहने लगे—''हे प्रभो। मैं सृष्टि की रचना को आगे बढ़ाने में सफल नहीं हुआ। सनक, सनन्दन आदि योगी हो गये। वे गृहस्थ बनना नहीं चाहते। विष्णु भगवान् ने कहा—''यह मेरी शक्ति में नहीं है। आओ, हम कैलासवासी भगवान् शिव के पास चलें।''

ब्रह्मा और विष्णु भगवान् शिव के दर्शन करके बोले—''हे देवों के देव महादेव! चारों कुमारों के योगी हो जाने के कारण ब्रह्मा की सृष्टि का क्रम बन्द हो गया है। कृपया उन्हें पुनः सृष्टि-संरचना का आशीर्वाद दें।'' भगवान् शिव ने अपने वक्ष के वाम भाग की ओर दृष्टिपात किया। भगवान् के वाम भाग से उमा का उद्‌भव हो गया। भगवान् शिव ने उन दोनों से कहा—''सृष्टि-रचना में अब कुछ कठिनाई नहीं है, अब यह निर्बाध चलती रहेगी।'' तब ब्रह्मा और विष्णु अपने-अपने निवास-स्थान को चले गये। तब भगवान् शिव की कृपा से ब्रह्मा जी सृष्टि चलाने लगे। पुरुष और स्त्रियाँ परस्पर सुख-भोग करते हुए सन्तान उत्पन्न करके सृष्टि बढ़ाने लगे। यह सम्पूर्ण प्रकट जगत् शक्तिमय है। भगवान् शिव प्रकृति के क्रियाकलाप के मूक दर्शक हैं।

भगवान् शिव का गज-चर्म धारण करना

प्राचीन काल में एक बार गजासुर ने अत्यन्त कठिन तप किया। ब्रह्मा उसके समक्ष प्रकट हुए और बोले—''हे गजासुर! मैं तुम्हारे तप से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम्हें जो अभीष्ट हो, माँग लो!''

गजासुर ने कहा—''हे प्रभो! मुझे कभी न समाप्त होने वाला धन और बल दीजिए।''

ब्रह्मा ने कहा—''मैंने तुम्हें सब-कुछ दे दिया है; किन्तु यदि तुम भगवान् शिव से वैर-भाव करके युद्ध करोगे, तो तुम्हारा वरदान समाप्त हो जायेगा।'' इतना कह कर ब्रह्मा जी अन्तर्धान हो गये।

तब गजासुर ने दिग्विजय की और देवताओं तथा इन्द्र को भी पराजित कर दिया। वह ऋषियों और मुनियों को भी पीड़ित करने लगा। वे वाराणसी में काशी विश्वनाथ के चरणों में गिर कर प्रार्थना करने लगे—''गजासुर हमें मारने की चेष्टा कर रहा है। हमारी रक्षा करें। हे प्रभो! आपके सिवा हमारा कोई सहारा नहीं है।''

गजासुर ने भगवान् विश्वनाथ पर भी आक्रमण कर दिया। भगवान् ने गजासुर का वध कर दिया। उसके चर्म को उधेड़ दिया और उसे वस्त्र रूप में धारण कर लिया। तब देवता और ऋषियों ने प्रसन्न हो कर भगवान् की स्तुति की।

भगवान् शिव लकड़हारे के रूप में

पाण्ड्या राज्य का राजा वरगुना पाण्डियान था। उसकी राजधानी मदुरै थी। वह इन्द्र के सदृश था। वीणावादक यमानाथन उत्तरी भारत से उसके दरबार में आया। उसने वीणा पर रोमांचक राग बजाये। राजा ने उसके संगीत की अत्यन्त प्रशंसा की, उसे बहुमूल्य उपहार दिये और उसे सुन्दर एकान्त भवन में ठहराया। यमानाथन अपने संगीत की विद्वत्ता के अभिमान में फूल गया।

राजा वरगुना पाण्डियान समझ गया कि यमानाथन को अपनी संगीत-विद्या का अभिमान हो गया है। उसने अपने दरबारी संगीतकार भानभद्र को बुलाया और कहा—"क्या तुम नये संगीतकार यमानाथन को पराजित कर सकोगे ?" भानभद्र ने उत्तर दिया—"आपकी कृपा और मदुरै के भगवान् सोमसुन्दर के आशीर्वाद से अवश्य ही मैं उसे पराजित कर सकता हूँ।" राजा ने कहा—"ठीक है, कल आ कर अपना संगीत का ज्ञान प्रदर्शित करो।"

यमानाथन के शिष्य मदुरै की सभी वीथियों में वीणा बजाते हुए तथा अत्यन्त उत्साह से अपने संगीत-विद्या के ज्ञान का प्रचार करते हुए घूमने लगे। भानभद्र इन सबको सुन कर मन-ही-मन सोचने लगा—"यह शिष्य संगीत और वीणा-वादन में अत्यन्त निपुण हैं। यदि शिष्य ही इतने विद्वान् हैं, तो इनका गुरु कितना गौरवशाली और महान् होगा ! मैं इस संगीताचार्य से कैसे विजयी हो सकता हूँ?" तब वह भगवान् शिव से प्रार्थना करने लगा—"दया करके यमानाथन को पराजित करने में आप मेरी सहायता करें। मुझे आपका कृपापूर्ण आशीर्वाद चाहिए।"

तब भगवान् ने एक लकड़हारे का रूप धारण किया जो शरीर पर चीथड़े और फटे जूते पहने हुए था। उसके एक हाथ में वीणा और सिर पर ईंधन का गट्ठर था। जहाँ यमानाथन ठहरा हुआ था, वह वहाँ पहुँचा और बरामदे में बैठ गया। उसने वीणा निकाल कर अत्यधिक सुन्दर ढंग से बजाना और उसके साथ-साथ मधुर ढंग से गाना आरम्भ कर दिया।

ऐसा अद्‌भुत संगीत सुन कर यमानाथन आश्चर्यचकित रह गया। उसने बाहर आ कर लकड़ी बेचने वाले से कहा—"लकड़ी बेचने वाले, तुम कौन हो?" उसने उत्तर

दिया—"मैं वरगुना पाण्ड्या के दरबारी कवि भानभद्र का सेवक और उनके शिष्यों में से एक हूँ। उनके बहुत से शिष्य हैं। उन्होंने कहा है कि बूढ़ा होने के कारण मैं अब गाने के योग्य नहीं रहा हूँ।"

यमानाथन ने उसे पुन: गाने के लिए प्रार्थना की। उसने पुन: सतारी राग गा कर सुनाया जिससे यमानाथन का हृदय द्रवित हो गया। लकड़हारे का रूप धरने वाले भगवान् शिव अपने लकड़ियों के गट्ठर सहित अन्तर्धान हो गये।

यमानाथन मन-ही-मन सोचने लगा—"यह सतारी राग मैंने तो आज तक सुना भी नहीं। यह अवश्य ही देव राग है। जब यह बूढ़ा गायक इस राग को इतने सुन्दर ढंग से गा सकता है, तो इसका गुरु कितना महान् होगा। अवश्य ही उसे स्वयं भगवान् ने ही यह राग सिखाया होगा। मैं भानभद्र के सम्मुख खड़ा भी नहीं हो सकता। मुझे यहाँ से तत्काल ही चले जाना चाहिए।" यमानाथन का हृदय भय और लज्जा से भर गया। वह अपना सारा सामान छोड़ कर अर्धरात्रि में ही अपने शिष्यों को ले कर चला गया।

भगवान् सोमसुन्दर ने भानभद्र को स्वप्न में दर्शन दिये और कहा—"भयभीत मत होओ। मैंने लकड़हारे का रूप बनाया और जहाँ यमानाथन रहता था, वहाँ बैठ कर वीणा बजायी। वह आश्चर्यचकित हो गया और आधी रात को ही भाग गया। अब तुम निश्चिन्त हो जाओ।"

भानभद्र ने प्रात: उठ कर मदुरै मन्दिर में जा कर भगवान् सोमसुन्दर की उपासना की। फिर वह वरगुना पाण्डियान के दरबार में गया। राजा ने यमानाथन को बुलाने के लिए सेवक भेजा। सेवक ने सब जगह ढूँढ़ा, किन्तु नया संगीतज्ञ कहीं न मिला। यमानाथन के पड़ोसियों ने कहा—"एक लकड़हारा आया और उसने गाना सुनाया। नया संगीतज्ञ आधी रात को यह स्थान छोड़ कर चला गया। हमें तो इतना ही पता है।"

सेवक ने सारी बात राजा को बतायी। राजा ने भानभद्र से कहा—"बताओ, तुमने यहाँ मेरे पास से जा कर क्या किया?" भानभद्र ने कहा—"हे महाराज! मैंने घर जा कर भगवान् सोमसुन्दर से आशीर्वाद देने के लिए प्रार्थना की। उन्होंने मुझे स्वप्न में दर्शन दे कर कहा कि 'मैंने लकड़हारे का रूप धर कर यमानाथन के समक्ष सतारी राग गाया और उसे भगा दिया।' मैं एक-दम जग गया। यह सारी घटना उस दिन घटी।"

वरगुना पाण्डियान समझ गया कि यह सब भगवान् शिव की लीला थी। उसने भद्र से कहा—"वे भगवान् जिनके ब्रह्मा तथा अन्य देवता सेवक हैं, वे तुम्हारे सेवक बने और तुम्हारी सहायता की। हम सब तुम्हारे सेवक समान हैं। मैं तुम्हारा दास हूँ। भविष्य में सदैव भगवान् सोमसुन्दर के भजन गाना।"

भानभद्र अत्यन्त आनन्दित हुआ। वह सदा के लिए भगवान् सोमसुन्दर का भक्त हो गया।

भगवान् शिव की पचीस लीलाएँ

भगवान् शिव की निम्नांकित पच्चीस लीलाएँ, जिनके लिए वे प्रकट हुए, इस प्रकार हैं :

१. मस्तक पर चन्द्र धारण करना, २. उमा देवी के संग रहना, ३. वृषभ की सवारी करना, ४. काली के संग ताण्डव-नृत्य करना, ५. पार्वती के साथ विवाह, ६. भिक्षुक बनना, ७. मन्मथ (कामदेव) दहन, ८. यमराज पर विजय, ९. त्रिपुर-संहार, १०. जलन्धर असुर का वध, ११. गजासुर-वध, १२. वीरभद्र-अवतरण, १३. हरिहर, १४. अर्धनारीश्वर, १५. किरात-रूप-धारण, १६. कंकाल-रूप-धारण, १७. चन्दीश्वर को वरदान, १८. विष-पान करना, १९. विष्णु भगवान् को चक्र प्रदान, २०. बाधा-हरण, २१. उमा को पुत्रों की प्राप्ति, २२. एकपादरुद्रावतरण, २३. सुखासन में विराजना, २४. दक्षिणामूर्ति-अवतरण, और २५. लिंगावतरण।

अध्याय ९

शिव योग साधना

पंचाक्षर का रहस्य

पंचाक्षर महामन्त्र है जो पाँच अक्षरों—न म: शि वा य—से मिल कर बना है। मन्त्र वह होता है, जो उसके जपने और उस पर चिन्तन-मनन करने वाले की बाधाओं और उसके कष्टों को दूर करता है तथा उस पर परमानन्द और अमरत्व की वृष्टि करता है। सात करोड़ मन्त्रों में से पंचाक्षर सर्वोपरि मन्त्र है। यजुर्वेद में सात स्कन्ध हैं। इसके मध्य के स्कन्ध के बिलकुल बीच में रुद्राध्यायी है। इस रुद्राध्यायी में एक सहस्र रुद्र मन्त्र हैं। इन एक सहस्र रुद्र मन्त्रों के मध्य में नम: शिवाय अथवा पंचाक्षर मन्त्र दीप्तिमान हो रहा है।

यजुर्वेद वेद पुरुष परमेश्वर का शीष है। इसके मध्य में स्थित रुद्रम् इसका मुख है, पंचाक्षर इनकी आँख है, शिव जो कि नम: शिवाय के मध्य में है, आँख की पुतली हैं । जो भी इस पंचाक्षर का जप करता है, वह जन्म-मरण के बन्धन से छूट जाता है और शाश्वत आनन्द प्राप्त करता है। यह वेदों की उद्घोषणा है। यह पंचाक्षर भगवान् की देह है। यह भगवान् शिव का निवास-स्थान है। यदि आप 'नम: शिवाय' के साथ प्रारम्भ में ॐ भी लगा देते हैं, तो यह षडाक्षर मन्त्र बन जाता है। 'ॐ नमो महादेवाय' अष्टाक्षर मन्त्र है।

पंचाक्षर छह प्रकार का है—(१) स्थूल पंचाक्षर (नम: शिवाय),(२) सूक्ष्म पंचाक्षर (शिवाय नम:), (३) कारण पंचाक्षर (शिवाय शिव), (४) महाकारण पंचाक्षर (शिवाय), (५) महामनु अथवा मुक्ति पंचाक्षर (शि)।

'नम:' का अर्थ है—साष्टांग प्रणिपात। 'शिवाय नम:' का अर्थ है—भगवान् शिव को साष्टांग प्रणाम। देह-दृष्टि से जीव भगवान् शिव का दास है। 'नमः' जीवात्मा का परिचायक है। 'शिव' परमात्मा का द्योतक है। 'आय' जीवात्मा के परमात्मा के साथ एकत्व का द्योतक है। अत: 'शिवाय नम:' उसी प्रकार महावाक्य है जैसे 'तत् त्वम् असि'- है जो जीवात्मा और परमात्मा की एकता का द्योतक है।

भगवान् रूपी धान का ॐ बाह्य रूप (छिलका) है और पंचाक्षर भीतरी भाग (चावल) है। प्रणव और पंचाक्षर एक ही हैं। पाँच अक्षर भगवान् के पाँच कृत्यों—सृष्टि,

स्थिति, संहार, तिरोधान और अनुग्रह के परिचायक हैं। यह 'पाँच महाभूतों' और उनके मिश्रण से रचित समस्त सृष्टि के भी द्योतक हैं।

'न' तिरोधान का सूचक है; 'मः' मल अथवा अशुद्धि का, 'शि' भगवान् 'शिव' का, 'वा' शक्ति का और 'य' जीवात्मा का द्योतक है।

स्नान करें, अथवा अपना मुँह, हाथ और पैर धो लें। भस्म और रुद्राक्ष माला धारण कर लें। उत्तर अथवा पूर्व दिशा की ओर मुख करके, शान्त एकान्त स्थान में पद्मासन अथवा सुखासन में बैठ जायें। मौन रहते हुए पंचाक्षर जप करें और भगवान् शिव पर ध्यान केन्द्रित करें। भगवान् के स्वरूप को हृदय में अथवा त्रिकुटी के बीच स्थित करें।

यदि आप नियमित रूप से ध्यान का अभ्यास करेंगे, तो आपका हृदय शुद्ध हो जायेगा। समस्त पाप और संस्कार पूर्णतया भस्मीभूत हो जायेंगे। आप शिव-योग-निष्ठा अथवा निर्विकल्प समाधि प्राप्त करेंगे। आपको महिमामय शिव-पद अथवा महिमामयी शिव-गति की प्राप्ति होगी और आप भगवान् शिव के साथ एक हो जायेंगे। आप शिवानन्द का शाश्वत आनन्द भोगेंगे तथा अमरत्व प्राप्त करेंगे। भगवान् शिव आप सब पर कृपा करें!

भगवान् शिव पर ध्यान

सगुण ध्यान : सगुण ध्यान साकार रूप पर किया जाता है। धनुर्धर प्रारम्भ में किसी बड़ी स्थूल वस्तु पर लक्ष्य साधता है। फिर वह मध्यम आकार की वस्तु को लेता है। अन्ततः वह अत्यन्त छोटी और सूक्ष्म वस्तुओं को लक्ष्य बनाता है। इसी प्रकार, व्यक्ति को प्रारम्भ में सगुण साकार पर ध्यान करना चाहिए और जब मन भली प्रकार अभ्यस्त हो कर सध जाये, तो वह निर्गुण निराकार का ध्यान कर सकता है। सगुण ध्यान, स्थूल वस्तु पर किया जाता है। सगुण ध्यान भक्त साधक को विशेषतया रुचिकर लगता है, वह अपने इष्टदेव के विशेष रूप को निरन्तर देखते रहने में आनन्द प्राप्त करता है। सगुण उपासना विक्षेप को दूर करती है। तीन से छह मास तक भगवान् शिव के चित्र पर त्राटक का अभ्यास करें।

अपने इष्ट की मूर्ति के मानसिक चित्र पर आधे घण्टे से दो घण्टे तक त्रिकुटी (भ्रूमध्य स्थान, माथे पर) में ध्यान करें। देखें और अनुभव करें कि विश्व की प्रत्येक वस्तु में भगवान् विद्यमान हैं। ध्यान के साथ-साथ अपने इष्ट मन्त्र 'ॐ नमः शिवाय' का मानसिक जप करते रहें; इष्टदेव के गुणों—यथा उनकी सर्वव्यापकता, सर्वशक्तिमत्ता और सर्वज्ञता—का चिन्तन करें। अनुभव करें कि आपके प्रभु की ओर से सात्त्विक गुण आपकी ओर प्रवाहित हो रहे हैं। अनुभूति करें कि आपमें भी ये सात्त्विक गुण आ गये हैं। यह

सात्त्विक शुद्ध भावना है। एक या दो वर्षों में आपको अपने इष्ट के दर्शन प्राप्त होंगे, यदि आप अपनी साधना गम्भीरता से करेंगे तो! इस पद्धति का अनुसरण करें। यह एकाग्रता की वृद्धि में सहायक होगी। भगवान् शिव की मूर्ति अथवा चित्र के अंग-प्रत्यंगों पर अपने मन को घुमायें और ध्यान लगायें। अपने सामान्य आसन में बैठें। उनका जप करें और उनके चित्र की ओर एक-टक निहारते हुए उनके गुणों—यथा आनन्द, प्रकाश, प्रेम इत्यादि—का चिन्तन करें। फिर उन्हें अपने हृदय-कमल पर अथवा दोनों भौंहों के मध्य (भृकुटी) स्थान में प्रदीप्त प्रकाश के मध्य में स्थित कर लें। अब मानसिक दृष्टि से उनके चरण-कमलों को निहारते हुए अत्यन्त श्रद्धापूर्वक प्रणाम करें। मन में उनकी गजचर्मधारी देह को देखें, फिर उनके वक्ष को सुशोभित करती हुई रुद्राक्ष की माला, नील-वर्ण-कण्ठ, शान्त मुख-मण्डल, गहन ध्यान-समाधि से बना हुआ भव्य प्रभा-मण्डल, अर्धमुंदी ध्यान-मग्न आँखें और मस्तक के मध्य में अद्‌भुत तृतीय नेत्र पर अपने मन को ले जायें। इसके पश्चात् मन में उनकी जटाओं का, अर्ध चन्द्रमा का और जटाओं में से निकलती वेगवती पावन गंगा का ध्यान करें। पुन: मन को क्रमश: उनके एक हाथ के त्रिशूल, दूसरे के डमरू पर घुमाते हुए शरीर के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग पर तब तक घुमाते जायें, जब तक समस्त रूप-आकार को भली-भाँति न देख लें। तब अपने मन को उनके मुख-मण्डल अथवा चरणों में एकाग्र करके स्थिर कर दें। इस सारी प्रक्रिया का बारम्बार पुनरावर्तन करते जायें। इस प्रकार निरन्तर अभ्यास करते रहने से आप अन्ततः ध्यान में स्थित हो जायेंगे और भगवान् शिव के साथ सम्पर्क स्थापित कर लेंगे।

निर्गुण ध्यान : यह निर्गुण ध्यान भगवान् शिव का परब्रह्म स्वरूप में, उनके सर्वव्यापक अव्यक्त रूप पर ध्यान है। इस प्रकार के ध्यान में भगवान् शिव को परम ब्रह्म के रूप में देखते हुए उनके निराकार, निर्गुण, सच्चिदानन्द, व्यापक आत्मन्, नित्य-शुद्ध, सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, सदामुक्त ब्रह्म स्वरूप का ध्यान करें, उनके शुद्ध चैतन्य के असीम सागर के स्वरूप का ध्यान करें। फिर स्वयं का शिव के इस सर्वातीत स्वरूप के साथ एकत्व स्थापित करें। अनुभव करें कि आप चैतन्य, अखण्ड, परिपूर्ण, एकरस, शान्त और अपरिवर्तनशील सत्ता हैं।

आपका प्रत्येक अणु, प्रत्येक परमाणु, प्रत्येक स्नायु, प्रत्येक शिरा इन्हीं विचारों में शक्तिशाली रूप में स्पन्दित होना चाहिए। केवल मुख से ही 'शिवोऽहम्' का उच्चारण करते जाने से इतना प्रभाव नहीं होगा। यह तो हृदय, मस्तिष्क और आत्मा में से होना चाहिए। यह चिन्तन निरन्तर बनाये रखना चाहिए। 'सोऽहम्' का मानसिक जप करते समय देह-बोध को नकारते जाना चाहिए। जब आप 'शिवोऽहम्' का जप करें, तो यह अनुभव करें कि :

मैं अनन्तता हूँ	शिवोऽहम् शिवोऽहम्
मैं परिपूर्ण ज्योति हूँ	शिवोऽहम् शिवोऽहम्
मैं पूर्ण प्रसन्नता हूँ	शिवोऽहम् शिवोऽहम्
मैं परम जय हूँ	शिवोऽहम् शिवोऽहम्
मैं पूर्ण शक्ति हूँ	शिवोऽहम् शिवोऽहम्
मैं परिपूर्ण ज्ञान हूँ	शिवोऽहम् शिवोऽहम्
मैं परिपूर्ण आनन्द हूँ	शिवोऽहम् शिवोऽहम्

उक्त विचारों पर सतत चिन्तन करें। उत्साह और लगन से निरन्तर अभ्यास करना अनिवार्य है। ऐसा करते रहने से आपको आत्मानुभूति प्राप्त होगी।

शिव-आराधना

भगवान् शिव की सगुण साकार रूप में आराधना शिवलिंग की पूजा होती है। शिव-भक्त सामान्यतया 'पंचायतन पूजा' करते हैं। इस पूजा में भगवान् शिव, गणेश, पार्वती, सूर्यनारायण और शालग्राम की भी साथ ही पूजा की जाती है।

शुभ दिन में पंचायतन मूर्तियाँ ले आयें। अपने घर में अत्यन्त श्रद्धापूर्वक उनकी स्थापना करें। बड़े स्तर पर विशेष प्रार्थनाएँ, अर्चना, पूजा, अभिषेक और ब्रह्मभोज (भण्डारा) करें। अलग कक्ष में मूर्ति-स्थापना करें। पूर्ण श्रद्धा और विश्वास सहित नित्य नियमित रूप से मूर्तियों का पूजन-अर्चन करें। आपको पर्याप्त धन, मानसिक शान्ति, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—सब-कुछ प्राप्त होगा। आप धन-धान्य-सम्पन्न जीवन-सुख भोगते हुए अन्ततः शिव-सायुज्य और अमरत्व प्राप्त करेंगे।

भगवान् शिव की आराधना के लिए पर्याप्त मात्रा में बिल्व-पत्र एकत्रित करें। भगवान् को समर्पित करने के लिए धूप, दीप, कर्पूर, अगरबत्ती, शुद्ध जल, बहुत से पुष्प, नैवेद्य, बैठने के लिए आसन, घण्टी, शंख तथा अन्य पूजा के लिए उपयोगी सामग्री पूजा से यथासमय पूर्व ही तैयार रखें। प्रातः सूर्योदय से पहले उठ जायें। मुँह धो लें, स्नान कर लें। पूजा के लिए अलग से रखे गये रेशमी वस्त्र धारण करें। पूजा-कक्ष को सुन्दर ढंग से सुसज्जित करें। पूजा-कक्ष में भगवन्नाम-उच्चारण करते हुए, उनका महिमा-गान करते हुए प्रवेश करें, प्रवेश करने से पूर्व अपने पाँव भी अच्छी प्रकार धो लें। प्रवेशोपरान्त दण्डवत् साष्टांग प्रणाम करें, फिर सुखासन में बैठ कर पूजन प्रारम्भ करें। सर्वप्रथम विधिवत् संकल्प करें। तदनन्तर कलश, शंख, आत्मा और पीठ (भगवान् का आसन) का पूजन उनके क्रमानुसार करें। इसके पश्चात् भगवान् की शोडषोपचार पूजा करने के पश्चात्

महामृत्युंजय मन्त्र का जप, रुद्रपाठ, पुरुषसूक्त और गायत्री पाठ करें और साथ-साथ शुद्ध जल, दूध, शर्करा, घृत इत्यादि पूजन-सामग्री (अपनी सामर्थ्य के अनुसार) अथवा मात्र शुद्ध जल से अभिषेक करते रहें। रुद्राभिषेक अत्यन्त लाभप्रद है। यदि आप रुद्र जप और अभिषेक करते हैं, तो आपके समस्त दुःख-क्लेश अदृश्य हो जायेंगे और आप भगवान् विश्वनाथ की कृपा से मानव-जन्म का सर्वोच्च आनन्द, परमानन्द प्राप्त करेंगे। रुद्र सर्वोच्च शुद्धिकर्ता है। रुद्र और पुरुषसूक्त अदृष्ट गुप्त शक्तियाँ हैं। रुद्र के उच्चारण से अद्भुत् प्रेरणा प्राप्त होती है। शिव-पूजन प्रारम्भ करें तथा इसकी महिमा और गौरव को स्वयं ही अनुभव करें।

अभिषेक के पश्चात् भगवान् का चन्दन और पुष्पों से सुन्दर श्रृंगार करें। तत्पश्चात् भगवान् की 'ॐ शिवाय नमः', 'ॐ महेश्वराय नमः' इत्यादि नामों से अर्चना करें। नित्य १०८ अथवा सम्भव हो तो १००८ अर्चना करें। अर्चना के पश्चात् विभिन्न प्रकार के दीपकों से—यथा एक दीप आरती, तीन दीप आरती, पंच आरती और कर्पूर आरती करें। घण्टनाद, करताल, शंखनाद इत्यादि आरती के साथ-साथ करें। भगवान् को पावन प्रसाद अथवा नैवेद्य समर्पित करें।

आरती सम्पूर्ण होने के पश्चात् भगवान् की महिमा वर्णन करते हुए भजन-स्तोत्र इत्यादि जैसे शिवमहिम्न स्तोत्र का गायन करें। चमर डुलाते समय शिवपंचाक्षरस्तोत्र इत्यादि का गायन करें। अन्त में 'कायेन वाचा', 'आत्मा त्वम् गिरिजा मतिः' और 'कर-चरण-कृतम्' इत्यादि प्रार्थना करते हुए भगवान् को सर्वस्व समर्पण करें। समझें कि आप भगवान् के हाथों में उपकरण मात्र हैं। सब-कुछ केवल ईश-कृपा-प्राप्ति का उद्देश्य रख कर ही करें। निमित्तभाव विकसित करें। भक्तों की सेवा करें। अपने भक्तों की सेवा होते देख कर भगवान् अधिक प्रसन्न होते हैं। अन्त में भक्त-समुदाय में प्रसाद-वितरण करें। श्रद्धापूर्वक स्वयं प्रसाद ग्रहण करें। भगवान् के प्रसाद की महिमा वर्णनातीत है। विभूति को भी प्रसाद रूप में ले कर मस्तक पर धारण करना चाहिए।

जब बाह्य पदार्थों द्वारा पूजा करने के पश्चात् सगुण उपासना में आप पर्याप्त उन्नति कर लें, तो मानस-पूजा आरम्भ कर सकते हैं। आपको भगवान् के दर्शन होंगे और परम मोक्ष-पद की प्राप्ति होगी।

सोमवार और प्रदोष (प्रत्येक पक्ष की त्रयोदशी) के दिन विशेष पूजा करें। यह प्रदोष, सोमवार के दिन तथा शिवरात्रि भगवान् शिव की उपासना के लिए विशेषतया पावन माने जाते हैं। शिवरात्रि को विशेष धूमधाम से मनायें। सारा दिन उपवास करें। त्रिकाल-पूजा, विशेष अभिषेक, एकादश रुद्र पूजा जप, सहस्रार्चना, रात्रि-जागरण,

भगवान् शिव के भजन, स्तोत्र, शिवपुराण पाठ तथा शिव लीलाओं का श्रवण करें। पूजा के पश्चात् आगामी प्रातः अभिषेक-जल से उपवास खोलें। शिव-निर्माल्य तथा प्रसाद ग्रहण करें। आपको अत्यधिक मानसिक शान्ति तथा आध्यात्मिक प्रगति का लाभ प्राप्त होगा। कभी भी ऐसे सुअवसर को न खोयें। नित्य पूजन समस्त रोगों का सुनिश्चित उपाय है। आपको कभी भी निर्धनता का सामना नहीं करना पड़ेगा। मेरे कथन का विश्वास करें और आज से ही पूजा प्रारम्भ कर दें।

शिव-मानस-पूजा

मानस अथवा मानसिक पूजा चन्दन, पुष्पों इत्यादि से की गयी बाह्य पूजा से कहीं अधिक शक्तिशाली और प्रभावोत्पादक है। मानस-पूजा करने में आपकी एकाग्रता अधिक होगी।

भगवान् को अपने मनस्पटल के रत्न-जटित सिंहासन पर विराजमान करें। उन्हें अर्घ्य, मधुपर्क, भाँति-भाँति के पुष्प, सुन्दर वस्त्राभूषण अर्पित करें। उनके मस्तक तथा दिव्य देह पर चन्दन का विलेपन करें। धूप और अगरबत्ती जलायें। मनःदीप जलायें, कर्पूर नीराजन करें। विभिन्न प्रकार के फल, मिठाइयाँ, पायस, नारियल और महानैवेद्य समर्पित करें। मन-मन्दिर में अपने प्रभु की षोडशोपगार पूजा करें।

पंचाक्षर लिखित मन्त्र जप

नित्य आधा घण्टा अथवा अधिक समय तक सुन्दर कापी में 'ॐ नमः शिवाय' लिखें। यह साधना-पद्धत्ति अपनाने से आपकी एकाग्रता में अधिक वृद्धि होगी। मन्त्र-लेखन सुस्पष्टतया स्याही से करें। मन्त्र-लेखन के समय मौन रहें। आप किसी भी भाषा में मन्त्र लिख सकते हैं। इधर-उधर ध्यान देना छोड़ दें। मन्त्र लिखते समय मानसिक जप भी करते जायें। पूरा मन्त्र एक ही बार में लिखें। जब मन्त्र-लेखन की कापी पूरी भर जाये, तब उसे डिब्बे में डाल कर पूजा-कक्ष में रख लें। अपनी साधना नियमित रूप से करें।

अपनी जेब में भी एक छोटी कापी रखें। जब भी कार्यालय में खाली समय मिले, तो मन्त्र-लेखन करें। सदैव तीन वस्तुएँ अपने साथ ही रखें—मन्त्र-लेखन की छोटी कापी, गीता और जप-माला। आपको अत्यन्त लाभ होगा।

शिवज्ञानम्

भगवान् शिव के पावन नाम के जप, स्मरण और ध्यान के द्वारा आप समस्त पापों से मुक्त हो जायेंगे और शिवज्ञानम् अथवा परम आनन्द और मोक्ष-पद को प्राप्त करेंगे। शिव-नाम समस्त मन्त्रों का आत्मा है।

भगवान् शिव इस विश्व में ६० विभिन्न नामों से प्रकट हुए हैं। वृषभारूढ़, हरि-हर, नटराज, भैरव, दक्षिणामूर्ति, अर्धनारीश्वर, भिक्षाटन, सोमशेखरमूर्ति, ऊर्ध्वनतना, कालसंहार, जालन्धर, सुरसंहार, लिंगोद्भव उनके ही रूप हैं।

शिव का अर्थ सर्वदा प्रसन्न, शुभ अथवा कल्याणकारी, परम मंगल से है। ॐ और शिव एक ही हैं। माण्डूक्योपनिषद् में आता है—**''शान्तं शिवं अद्वैतम्।''** एक शूद्र भी भगवान् शिव के नाम पर ध्यान कर सकता है।

गायत्री मन्त्र, अग्नि और सूर्य में भी शिव प्रकट होते हैं। जब आप गायत्री जप करते हैं और जब आप अग्नि और सूर्योपासना करते हैं, तब आपको भगवान् शिव का ध्यान करना चाहिए।

पंचाक्षर का जप और भगवान् शिव का ध्यान विशेष रूप से प्रदोष-काल में अथवा सूर्यास्त से किंचित् पूर्व करना चाहिए। कृष्ण पक्ष का प्रदोष महाप्रदोष माना जाता है। इस समय में देवता शिव मन्दिर में पूजनार्थ आते हैं। यदि उस दिन आप शिव मन्दिर जायें, तो देव-पूजन भी साथ ही हो जाता है। शिव-भक्त महाप्रदोष दिन में पूर्ण उपवास करते हैं।

शिव-भक्तों को अपने मस्तक तथा शरीर पर विभूति (भस्म) लगानी चाहिए। उसे रुद्राक्ष माला धारण करनी चाहिए। उसे विल्व-पत्रों से शिवलिंग पूजन करना चाहिए। उसे पंचाक्षर मन्त्र **'ॐ नमः शिवाय'** जप और ध्यान करना चाहिए। इन सब क्रियाओं द्वारा भगवान् शिव सन्तुष्ट होते हैं। विभूति अत्यन्त पवित्र होती है। भगवान् स्वयं इसे धारण किये रहते हैं। रुद्राक्ष का मनका (दाना) भगवान् शिव के तीसरे नेत्र का प्रतीक है। बिल्व-पत्र को महालक्ष्मी के पाँच निवास-स्थानों में से एक माना जाता है।

भगवान् शिव ही जीव के बन्धन और मोक्ष के कारण है। शिव ही हैं जो जीव को उसके वास्तविक दिव्य स्वरूप का बोध करवाते हैं। शिव ने माया के द्वारा देह, इन्द्रियों और जगत् की रचना की और जीव को माया में धकेल दिया। उन्होंने ही जीवों में अहं-बोध उत्पन्न किया। उन्होंने जीवों को कर्म-पाश में आबद्ध करके अपने-अपने कर्मों के अनुसार सुख-दुःख भोगने में लगा दिया। यही जीवों की कर्म-पाश की अवस्था है।

जीव जब अणव, कर्म और माया रूपी तीन अशुद्धियों के अधीन होते हैं, तब उन्हें कोई स्वतन्त्रता नहीं होती। वह अल्पज्ञान से ग्रसित होते हैं।

भगवान् शिव की कृपा प्राप्त करने के लिए जीव को सर्वप्रथम अपने वास्तविक निज स्वरूप का, और भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध का ज्ञान होना अत्यावश्यक है। जीवनी-शक्ति अथवा प्राण शरीर में है। भगवान् प्राणों के भीतर हैं। वह प्राणों के भी प्राण हैं, तथापि वह प्राण और शरीर दोनों से भिन्न हैं। यदि देह में प्राण न हों तो यह शव हो जाती है, तब यह कोई भी कार्य नहीं कर सकती। भगवान् शिव इस देह, प्राण और जीव—तीनों के आधार हैं। शिव के बिना जीव कुछ भी कर सकने में असमर्थ है। शिव ही बुद्धि को प्रकाशित करने वाले हैं। जिस प्रकार देखने की शक्ति प्राप्त होने पर भी सूर्य के प्रकाश के अभाव में आँख देख नहीं सकती, इसी प्रकार शिव-प्रकाश के बिना बुद्धि भी अक्षम है।

चर्या, क्रिया, योग और ज्ञान—ये चारों साधनाएँ मोक्ष-प्राप्ति के चार पग हैं। ये ठीक इसी प्रकार हैं जैसे कलिका, पुष्प, कच्चा फल और पका हुआ फल।

भगवान् शिव धीरे-धीरे जीवात्मा को अहं, कर्म और फिर माया से मुक्त करते जाते हैं। जीव ऐन्द्रिय-सुखों से धीरे-धीरे विरक्त होने लगते हैं। उनके लिए सुख-दुःख समान होने लगता है। भगवान् की कृपा से वे समझने लगते हैं कि सुख-दुःख के कारण अपने कर्म ही हैं। वह भगवदर्थ कर्म करने लग जाते हैं, भगवान् के भक्तों की सेवा के द्वारा मन की शुद्धि प्राप्त करने लगते हैं। वह समझ जाते हैं कि आत्मा अर्थात् शिव देह से भिन्न है, मन और इन्द्रियों से अतीत है तथा मन-वाणी की सीमा से परे है। उनमें 'ॐ नमः शिवाय' के महत्त्व का सूत्रपात हो जाता है। पंचाक्षर और शिव-ध्यान के महत्त्व का उन्हें बोध हो जाता है।

वह शिव योग साधना करने लगते हैं। उनके हृदय द्रवित हो जाते हैं। द्रष्टा, द्रष्टव्य और दृश्य लुप्त हो जाते हैं। इन्द्रियों, मन और बुद्धि की समस्त क्रियाएँ समाप्त हो जाती हैं। अपने हृदय में उत्पन्न होने वाले प्रेम के जल से वह भगवान् का अभिषेक करते हैं और अपने हृदय-पुष्प को प्रभु के चरणों में समर्पित कर देते हैं।

वह अपने हृदय में 'चिलम्बोसाई' की ध्वनि सुनते हैं और ध्वनि-पथ का अनुसरण करते हुए चिदाकाश में नटराज के दर्शन करते-करते शिवानन्द के सागर में लीन हो जाते हैं। जैसे अग्नि में कर्पूर घुल जाता है ऐसे ही वह भगवान् के साथ एक हो जाते हैं।

शिवलिंग–उपासना

यह लोक-प्रचलित धारणा है कि शिवलिंग, लिंग अथवा पुरुष की जननेन्द्रिय अथवा प्रजनन-शक्ति का द्योतक है। यह एक गम्भीर विकट गलती ही नहीं, प्रत्युत अत्यन्त घोर भद्दी भूल है। वैदिकोत्तर काल में लिंग भगवान् शिव की जनन-शक्ति का प्रतीक बन गया। लिंग एक 'विशिष्टीकारक' चिह्न है। निश्चित रूप से यह यौन-चिह्न नहीं है। लिंगपुराण में आता है : **''प्रधानं प्रकृतिर्यदाहुर्लिंगमुत्तमम्; गन्धवर्णरसैर्हीनं शब्द-स्पर्शादि-वर्जितम्''** अर्थात् प्रथम सर्वोत्तम लिंग गन्ध, रंग, स्वाद, श्रवण, स्पर्श इत्यादि सबसे विहीन प्रकृति को कहा गया है।

संस्कृत में लिंग का अर्थ 'चिह्न' है। यह विभेदीकरण का प्रतीक है। आप जब नदी में बाढ़ की स्थिति देखते हैं, तो अनुमान करते हैं कि गत दिवस भारी वर्षा हुई होगी। जब आप धुआँ देखते हैं, तो अनुमान करते हैं कि वहाँ अग्नि होगी। असंख्य नाम-रूपों वाला यह विस्तृत जगत् सर्वशक्तिमान् परमात्मा का लिंग है। शिवलिंग भगवान् शिव का चिह्न है। जब आप लिंग को देखते हैं, तो उसी क्षण आपका मन उन्नत हो जाता है और भगवान् शिव का चिन्तन करने लगता है।

भगवान् शिव वास्तव में निराकार हैं। उनका अपना कोई आकार नहीं है। तो भी सभी आकार उनके ही आकार हैं। सभी आकारों में शिव व्याप्त हैं। प्रत्येक आकार शिव का ही आकार अथवा लिंग है।

शिवलिंग में मन को एकाग्र करने की अद्भुत शक्ति है, जैसे मन स्फटिक निहारने (crystal-gazing) की प्रक्रिया में सरलता से एकाग्र हो जाता है, इसी प्रकार जब व्यक्ति लिंग को देखता है, तो उसका मन सहज ही एकाग्र हो जाता है। इसीलिए हमारे प्राचीन ऋषियों और द्रष्टाओं ने शिव मन्दिरों में लिंग स्थापित करने को कहा है।

शिवलिंग मौन रूप से आपसे कहता है—''मैं अद्वितीय हूँ, निराकार हूँ।'' केवल पवित्र-शुद्ध आत्मा ही इस मौन भाषा को सुन-समझ सकता है। एक कुतूहली, कामुक, अशुद्ध, मन्दबुद्धि विदेशी तो व्यंग्यपूर्वक यही कहता है—''अरे, हिन्दू तो पुरुष की कामेन्द्रिय की पूजा करते हैं। वह अज्ञानी हैं, उनका दर्शन व्यर्थ है।'' जब कोई विदेशी तमिल अथवा अन्य कोई भारतीय भाषा सीखने का प्रयत्न करता है, तो वह सर्वप्रथम कुछेक अश्लील शब्द सीख लेता है। यह उसके कुतूहली स्वभाव के कारण है। इसी प्रकार कुतूहली स्वभाव वाले विदेशी प्रतीक-पूजन में दोष ढूँढ़ने का प्रयास करते हैं। लिंग उस निराकार सत्ता का बाह्य प्रतीक(सूचक) है। उन भगवान् शिव का प्रतीक है जो अविभाज्य

हैं; सर्वव्यापक, शाश्वत, मंगलमय, नित्य-शुद्ध और इस विशद विश्व का शाश्वत सत्त्व हैं; जो आपके हृदय-मन्दिर में प्रतिष्ठित अमर आत्मा हैं; जो आपके अन्तरवासी, अन्तरतम में स्थित आत्मा हैं और साथ ही जो परब्रह्म स्वरूप हैं।

शिवलिंग के तीन भाग हैं—निम्नतम ब्रह्म-पीठ, मध्यभाग विष्णु-पीठ और सर्वोपरि भाग शिव-पीठ।

कुछ स्वयंभूलिंग हैं और कुछ नर्मदेश्वर हैं। भारत में द्वादश ज्योतिर्लिंग हैं और पाँच पंचभूत लिंग हैं। द्वादश ज्योतिर्लिंग हैं—केदारनाथ, काशीविश्वनाथ, सोमनाथ, बैजनाथ, रामेश्वर, घ्रुश्नेश्वर, भीमाशंकर, महाकाल, मल्लिकार्जुन, अमलेश्वर, नागेश्वर और त्र्यम्बकेश्वर। पाँच पंचभूत लिंग हैं—कालाहस्तीश्वर, जम्बूकेश्वर, अरुणाचलेश्वर, एकम्बरेश्वर (कांजीवरम्) और नटराज (चिदम्बरम्)। तिरुविदेमारुदर के महालिंग भगवान् जो मध्यार्जुन नाम से भी जाने जाते हैं, दक्षिण भारत के प्रसिद्ध शिव मन्दिर माने जाते हैं।

स्फटिकलिंग भी भगवान् शिव के प्रतीक हैं। इनके द्वारा भी भगवान् शिव की आराधना की जाती है। यह स्फटिकमणि का बनता है जिसका अपना कोई रंग नहीं होता; जिसके भी सम्पर्क में आये, उसी का रंग इसमें से झलकने लगता है। यह निर्गुण ब्रह्म अथवा निराकार निर्गुण शिव का द्योतक है।

सच्चे भक्त के लिए, लिंग पत्थर का टुकड़ा नहीं है। यह देदीप्यमान तेजस् अथवा चैतन्य है। लिंग उनसे बातें करता है, वह अश्रुपात करवा देता है, हृदय द्रवित कर देता है, देहाध्यास से ऊपर उठा देता है और भगवान् से एक होने में, निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति में सहायक होता है। भगवान् राम ने रामेश्वरम् में शिवलिंग की आराधना की। विद्वान् रावण ने स्वर्णलिंग की उपासना की। लिंग में कितनी अद्भुत शक्ति होगी!

आपको भगवान् शिव के प्रतीक शिवलिंग की आराधना द्वारा निराकार शिव की प्राप्ति हो! यह मन की एकाग्रता में नये साधकों को अत्यधिक सहायता प्रदान करने वाले हों!

शिवलिंग चिन्मय है

सदाशिव में से प्रकटीकृत प्रकाशमय चेतना ही वास्तव में शिवलिंग है। समस्त जड़-चेतन सृष्टि का उद्भव उन्हीं में से होता है। प्रत्येक वस्तु का लिंग अथवा कारण वही हैं। अन्त में समस्त जगत् उन्हीं में लय हो जाता है। शिवपुराण में कहा है—"पीठं

अम्बमयं सर्वं शिवलिंगश्च चिन्मयम्।'' सबका पीठ अथवा आधार प्रकृति अथवा पार्वती है तथा लिंग चिन्मय पुरुष, स्वयं-प्रकाश देदीप्यमान प्रकाश है। प्रकृति अथवा पार्वती तथा पुरुष अथवा शिवलिंग का संयोजन ही जगत् का कारण है। शिवपुराण की 'सनत्कुमार संहिता' में भगवान् शिव कहते हैं—''हे पर्वतराजकुमारी पार्वती! जो व्यक्ति यह जानता हुआ कि लिंग प्रत्येक वस्तु का मूलभूत कारण है और यह सम्पूर्ण जगत् लिंग माया अथवा चैतन्य माया है, मेरी पूजा लिंग में करता है, उससे बढ़ कर अधिक प्रिय मुझे अन्य कोई नहीं है।''

लिंग अण्डाकार है। यह ब्रह्माण्ड का प्रतीक है। जो-कुछ ब्रह्माण्ड में अन्तर्विष्ट है, वही सब-कुछ लिंग में है। समस्त जगत् भगवान् शिव का आकार है। संसार एक लिंग है। लिंग भगवान् शिव का रूप है।

लिंग यह सूचित करता है कि सृष्टि की रचना प्रकृति और पुरुष के संयोजन से हुई है। इसका अर्थ लय, ज्ञान, व्याप्य, प्रकाश, अर्थप्रकाश, सामर्थ्य तथा उपर्युक्त अर्थ को अभिव्यक्त करने वाले प्रतीक हैं। लिंग का अर्थ है—जगत् और उसके समस्त प्राणियों का लय-स्थान। यह सत्य, ज्ञान और अनन्त का भी द्योतक है। यह प्रकट करता है कि भगवान् शिव सर्वव्यापक और स्वयंप्रकाश हैं। लिंग वास्तव में एक ऐसा प्रतीक है जो उपर्युक्त समस्त अर्थों को प्रतिपादित करता है।

कुल छह लिंग हैं, यथा अण्डलिंग, पिण्डलिंग, सदाशिवलिंग, आत्मलिंग, ज्ञानलिंग और शिवलिंग। यह लिंग अण्ड, पिण्ड, सदाशिव इत्यादि के गुणों को अभिव्यक्त करते हैं।

लिंग का योनि के साथ संयोजन, परम सत्ता के जड़ और चेतन पक्षों के शाश्वत संयोजन का प्रतीक है। यह व्यावहारिक जगत् की समस्त विविधताओं के परम पिता और मातृ-शक्ति के शाश्वत आध्यात्मिक संयोजन के सिद्धान्त को अभिव्यक्त करता है। यह अपरिवर्तनशील परमब्रह्म और सक्रिय पराशक्ति का शाश्वत मिलन है, जिससे सभी परिवर्तनशील प्रकट होते हैं। इस उदात्त भावना को रखने से साधक में निम्न काम-प्रवृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। लिंग और योनि का अध्यात्मीकरण करने और ईश्वरत्व भावना करने से साधकों को कामुक विचारों से मुक्ति प्राप्त होती है। इस उदात्त भावना द्वारा समस्त क्षुद्र विचार लुप्त हो जाते हैं। भगवान् शिव का अपनी शक्ति के साथ शाश्वत आत्मानन्द और शाश्वत आत्म-वृद्धि के लिए परम सृष्टि के इस सिद्धान्त की यह भावना के ही विश्व के समस्त यौन-सम्बन्ध प्रकटीकरण हैं।

लिंग और योनि का संयोजन भगवान् शिव का अपनी आदि शक्ति के संयोग से सृष्टि-रचना का प्रतीक है।

आजकल के पढ़े-लिखे कहलाने वाले समाज में दार्शनिक और आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि का अभाव है। अत: वह लिंग और योनि के संयोग को अनैतिक और अश्लील समझते हैं; क्योंकि विवेक, गहन विचार और सत्संग के अभाव के कारण उनमें अत्यधिक अज्ञानता है। सचमुच ही यह अत्यधिक शोकजनक अवस्था है। भगवान् इन अज्ञानी अल्पमति लोगों को ज्ञान प्रदान करें!

भगवान् शिव को प्राप्त करने के उपाय

तिरुमूलर का 'तिरुमन्त्रम्' एक काव्य ग्रन्थ है, जिसको पूर्ण करने में तीन सहस्र वर्ष लगे थे, ऐसा कहा जाता है। यह शैव धर्म और दर्शन के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्षों का प्रतिपादन करता है। पति, पशु और पाश का निरूपण इस पुस्तक में प्राचीन पद्धति के अनुसार किया गया है। 'तिरुमन्त्रम्' में तिरुमूलर की व्याख्या इस प्रकार है :

केवल भगवान् ही गुरु हैं। वही शिव अथवा सत्य का दर्शन कराते हैं। सत्-गुरु अम्बलम् अथवा चिदाकाश शिव हैं। आपको गुरु की खोज अपने हृदय में ही करनी पड़ेगी। गुरु की कृपा से ज्ञान, भक्ति, शुद्धता और सिद्धियों की प्राप्ति होती है। जो सौभाग्यशाली साधक शुद्धता और वैराग्य से सम्पन्न हैं, उन पर गुरु-कृपा अवतरित होती है।

पिपासु साधक को 'गुरु परम' से सहायता लेनी चाहिए। 'गुरु परम' साधक को आध्यात्मिक निर्देशन प्रदान करते हैं। तब 'शुद्ध गुरु' उस पर दिव्य कृपा करते हैं। जब साधक दिव्य कृपा प्राप्त कर लेता है, तब उसे अनेक शक्तियों, शुद्धि, मन्त्र जानने की शक्ति, उच्चतर सिद्धियों इत्यादि की प्राप्ति होती है। तब उसके समक्ष चिदाकाश में सत्-गुरु प्रकट होते हैं और उसके अणव (अहं), कर्म और माया तीनों प्रकार के बन्धन तोड़ देते हैं तथा उसकी मोक्ष के असीम साम्राज्य में, अथवा परमानन्द के परम पद में प्रवेश पाने में सहायता करते हैं। उसके पश्चात् शिव गुरु स्वयं प्रकट होते हैं और सत्, असत् तथा सदसत् को प्रकट करते हैं। जब जीव को इस परम ज्ञान की प्राप्ति होती है, तब वह स्वयं शिव बन जाता है। गुरु, जो स्वयं को प्रथम और बाद की अवस्था में व्यक्त करते हैं, स्वयं शिव ही हैं।

भक्त जब अपनी हृदय-गुहा में, त्रिकुटी में अथवा शीश में भगवान् का ध्यान करता है, तब उनकी कृपा प्राप्त कर लेता है। भगवान् के पावन चरणों का अत्यधिक गुण-गान

किया गया है। तिरुमूलर कहते हैं—''मेरे प्रभु के पावन चरण मन्त्र हैं, सौन्दर्य हैं और सत्य हैं।''

जो ज्ञेय, अर्थात् जानने योग्य है वह शिव आनन्द है, जो कि शिव और उनकी कृपा, शक्ति से उद्भूत है। ज्ञाता, जीव अथवा जीवात्मा है। शिव आनन्द में निवास करने से वह शिव को जान जाता है और शिव ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

शिव आनन्द को प्राप्त करना ही मोक्ष है। जो मोक्ष प्राप्त करता है, उसे शिव का परम ज्ञान प्राप्त हो जायेगा। जो शिव आनन्द में स्थित हो जाता है, वह ज्ञान और मोक्ष (परम पद) प्राप्त कर लेगा। जो जीव शिव आनन्द को जान लेता है, वह सदा के लिए उसमें निवास करता है। उसे शिव आनन्द में शिव और शक्ति की प्राप्ति होती है। वह वास्तविक ज्ञान से सम्पन्न हो जाता है, जो कि वास्तव में शिव और शक्ति का संयोग ही है। जो साधक वैराग्य, अनासक्ति, त्याग से सम्पन्न है, जो सदा भगवान् का गुण-गान करता और नियमित रूप से उपासना करता है, उसे भगवान् शिव मोक्ष का मार्ग दर्शा देते हैं।

भगवान् शिव का भक्त अपने तप और त्याग के द्वारा इस संसार और इन्द्रलोक के भी आकर्षणों का प्रतिरोध करने की शक्ति प्राप्त कर लेता है। वह इन्द्र द्वारा प्रदत्त देवलोक के सुखों को भी कुछ नहीं समझता। भगवान् शिव के संयोग से प्राप्त परम आनन्द में वह अत्यधिक सन्तुष्ट रहता है।

जब साधक कठोर तप करता है और ध्यान का अभ्यास करता है, तब उसे अनेक सिद्धियाँ प्राप्त होने लगती हैं। इन्द्र तथा अन्य देवता अत्यधिक भयभीत होने लगते हैं कि उनका पद चला न जाये। अत: वह अनेकों बाधाएँ खड़ी कर देते हैं और विभिन्न रूपों में उसे प्रलोभन देने लगते हैं; दिव्य रथ, अप्सराएँ तथा अन्य विभिन्न दैवी सुखों को उसके मार्ग में प्रस्तुत करते हैं। किन्तु सच्चे साधक अपने पथ पर अडिग रहते हैं। वह प्रलोभनों के समक्ष झुकते नहीं और लक्ष्य की ओर, शिव पद अथवा परमानन्द के परम पद की ओर बढ़ते जाते हैं। जो झुक जाता है, वह भटक जाता है। विश्वामित्र भटक गये।

सन्त तिरुमूलर कहते हैं—''ज्ञान का अभिमान त्यागो। आत्म-विश्लेषण करो। अपने अन्तर में देखो। आप शिव में दृढ़ता से स्थित हो जायेंगे। कोई आपको हिला नहीं सकेगा। आप जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जायेंगे।''

शैव सिद्धान्त भी केवल अद्वैत ही है। यह शिव अद्वैत है।

प्रसाद की महिमा

प्रसाद वह है, जो मन को शान्ति प्रदान करता है। कीर्तन, आराधना, पूजा, हवन और आरती के समय भगवान् को बादाम, किशमिश, दूध, मिठाई और फल का भोग लगाया जाता है। बेल-पत्र, पुष्प, तुलसी-दल और विभूति से पूजन किया जाता है, और यह सब भगवान् के प्रसाद के रूप में बाँटा जाता है। पूजा और हवन के समय जो मन्त्रोच्चारण किया जाता है, उससे यह समस्त सामग्री गुह्य शक्तियों से भर जाती है।

प्रसाद अत्यधिक शुद्धिकारक है। प्रसाद सर्व-रोग-हर (रामबाण) है। प्रसाद दिव्य अमृत है। प्रसाद भगवान् की साकार कृपा है। प्रसाद शक्ति का साक्षात् रूप है। प्रसाद दिव्यत्व का प्रकटीकृत रूप है। अनेक सच्चे साधकों को प्रसाद से ही विभिन्न अद्भुत अनुभूतियाँ प्राप्त हुई हैं। उनके अनेक असाध्य रोग दूर हो गये हैं। प्रसाद शक्ति-दाता, प्राण-दाता, पुष्टि-दाता और भक्ति-दाता है। इसे श्रद्धापूर्वक ग्रहण करना चाहिए।

एक सप्ताह के लिए वृन्दावन, पण्ढरपुर अथवा वाराणसी में रहें। आपको प्रसाद के रहस्यमय प्रभाव और उसकी महिमा ज्ञात हो जायेगी। प्रसाद सभी को उत्तम स्वास्थ्य, दीर्घ आयु, शान्ति और सम्पन्नता प्रदान करता है। शान्ति और आनन्द-प्रदाता प्रसाद की जय हो! प्रसाद-प्रदाता प्रभु की जय हो! अमरत्व और शाश्वत सुख-प्रदाता प्रभु की जय हो!

विभूति : भगवान् शिव का प्रसाद है जो मस्तक पर धारण किया जाता है, लघु अंश मुख में भी डाल सकते हैं।

कुमकुम : देवी अथवा शक्ति का प्रसाद है जिसे मस्तक पर आज्ञा अथवा भ्रूमध्य स्थान पर धारण किया जाता है।

तुलसी : भगवान् विष्णु, राम और कृष्ण का प्रसाद है। इसे खाना नहीं चाहिए। बादाम, किशमिश, मिठाई आदि का प्रसाद खाने के लिए है।

यह सभी प्रसाद महत्त्वपूर्ण धार्मिक उत्सवों में वितरित किये जाते हैं।

तीर्थाटन के लाभ

आप यदि 'औरटेल' की हृदय रोगों की चिकित्सा-सम्बन्धी पुस्तकें देखें, तो उनमें रोगी को धीमी गति से पर्वत पर चढ़ने के लिए कहा गया है। अतः कैलास-यात्रा आध्यात्मिक लाभों के साथ-साथ अनेक प्रकार के हृदय-सम्बन्धी रोगों के लिए भी अत्यन्त लाभदायक है। हृदय पुष्ट और शक्ति-सम्पन्न हो जाता है। समस्त हृदयी

संवाहिनियाँ, स्नायु, फुफ्फुसीय, अन्ननालीय और त्वचीय इत्यादि सभी तन्त्र पूरी तरह से ठीक और शुद्ध हो जाते हैं। तब वाष्प-स्नान की भी कोई आवश्यकता नहीं रहती। चलते समय आपको खूब पसीना आ जाता है। पूरा शरीर शुद्ध और ऑक्सीजन युक्त रक्त से भर जाता है। ऊँचे-ऊँचे देवदार के वृक्षों से छू कर आने वाली शीतल मन्द समीर से क्षयरोगी भी वापस लौटने पर स्वयं को निरोग अनुभव करता है। मोटापा भी कम हो जाता है। कैलास-यात्रा मोटापा दूर करने का तो सर्वोत्तम उपाय है। अनेक प्रकार के आमाशय के रोग, मूत्राम्ल रोग तथा अन्य बहुत से त्वचा-सम्बन्धी रोग भी ठीक हो जाते हैं। बारह वर्षों तक आपको कोई भी रोग नहीं होगा; क्योंकि आप नवीन इलेक्ट्रौन, नूतन अणुओं, नये रक्त-कोषाणुओं, नये परमाणु और परिष्कृत प्रोटोप्लाज्म द्वारा परिशुद्ध हुए नवीन न्यूक्ली हो जाते हैं। यह कोई अर्थवाद अथवा अतिशयोक्ति नहीं है। आपके एक पन्थ से दो काज हो जाते हैं। कैलास-यात्रा आपको प्रभु-कृपा और उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करती है। भगवान् शम्भू की जय हो! अपनी शक्ति पार्वती सहित कैलास में निवास करने वाले, अपने भक्तों को मुक्ति प्रदान करने वाले और हर, सदाशिव, महादेव, नटराज, शंकर इत्यादि विभिन्न नामों से जाने जाने वाले भगवान् की जय हो!

जीवन का लक्ष्य ईश्वर-साक्षात्कार है जो हमें संसार के दुःखों से, जन्म-मरण के चक्र से मुक्त करता है। हम नित्य नैमित्तिक कर्मों और यात्राओं इत्यादि को निःस्वार्थ भाव से करते जायें, तो इनके द्वारा शुभ गुणों की वृद्धि होती है। ऐसा होने से पाप नष्ट होते हैं जिसके परिणाम-स्वरूप मन की शुद्धि होती है। मन की शुद्धि के द्वारा संसार के वास्तविक स्वरूप का, इसकी असत्यता और मिथ्यात्व का ज्ञान होता है। इससे वैराग्य उत्पन्न होता है, जो कि मुक्ति की इच्छा—मुमुक्षुत्व उत्पन्न करता है। मुमुक्षुत्व उत्पन्न होने से इसकी प्राप्ति के साधनों की खोज प्रारम्भ होती है। तब फिर कर्मों के त्याग की भावना आती है। तब योग का अभ्यास प्रारम्भ होता है, जो कि मन के स्वभाव को परिवर्तित करके आत्मा अथवा ब्रह्म में स्थिति की ओर ले जाता है। इसके द्वारा श्रुतियों के गहन अर्थ, यथा '**तत् त्वम् असि**' का ज्ञान होने लगता है, जो अविद्या का अन्त करता है, जिससे निज स्वरूप में स्थिति हो जाती है। इस प्रकार आपने देखा कि तीर्थ-यात्रा जैसे कैलास-यात्रा इत्यादि एक परम्परा-साधना है, जो क्रमशः ईश्वर-साक्षात्कार की ओर ले जाती है, क्योंकि इससे चित्त-शुद्धि और निदिध्यासन होता है। ध्यान प्रत्यक्ष साधना है। विभिन्न सांसारिक कार्यों और चिन्ताओं में घिरे हुए गृहस्थों को इन तीर्थ-यात्राओं द्वारा अत्यधिक सुख और आराम मिलता है। ऐसी यात्रा से उनके मन ताजगी और स्फूर्ति प्राप्त करते हैं और यात्राओं के समय उनको साधु-सन्तों के दर्शनों का लाभ होता है। उनको अच्छे सत्संग की प्राप्ति का लाभ भी

हो सकता है। वह अपने संशयों का निवारण कर सकते हैं। अपनी आध्यात्मिक साधना में वह उनसे विभिन्न प्रकार ही सहायता प्राप्त कर सकते हैं। यही यात्रा का मुख्य उद्देश्य है।

प्रिय पाठक जन! अन्त में पुनः एक बार आपको वेदों और उपनिषदों का अन्तिम शब्द स्मरण करवाना चाहूँगा—तत् त्वम् असि। ॐ तत् सत्, ॐ शान्तिः; आप सबको शान्ति प्राप्त हो!

परिक्रमा के लाभ

किसी पवित्र स्थान के चारों ओर प्रदक्षिणा करने को परिक्रमा कहते हैं। यह कोई पर्वत-शिखर हो सकता है, पावन तीर्थ, अथवा कोई पवित्र माना जाने वाला स्थान-विशेष हो सकता है। यह चक्कर लगाना सामान्यतया कभी भी हो सकता है, और विशेष रूप में वर्ष में किसी नियत विशेष अवसर पर सामूहिक रूप से भी किया जाता है।

जब यह छोटे पैमाने पर किया जाता है, जैसे मन्दिर में मूर्ति के चहुँ ओर, पावन तुलसी अथवा पीपल वृक्ष के चतुर्दिक् किया जाये, तो इसे प्रदक्षिणा कहा जाता है। निःसन्देह परिक्रमा में भी प्रदक्षिणा ही की जाती है; किन्तु परम्परानुसार यह विस्तृत पैमाने पर होती है।

अधिक कठिन प्रकार की परिक्रमाओं का भी अत्यधिक प्रचलन है, उसमें अधिक शारीरिक कष्ट अथवा परिश्रम को सम्मिलित कर लिया जाता है। कुछ लोग धरती पर सीधे-लम्बे लेट जाते हैं और पूरे मार्ग को लोट-लोट (करवट लेते हुए) कर पूर्ण करते हैं। कुछ अन्य लोग दण्डवत् प्रणाम करते हुए धीरे-धीरे परिक्रमा करते हैं। कुछ अन्य लोग एक पग के अत्यन्त साथ सटा कर दूसरा पग रखते हुए समस्त मार्ग तय करते हैं। कुछ लोग अपना ही चक्र काटते हुए, आत्म-प्रदक्षिणा करते हुए सम्पूर्ण परिक्रमा करते हैं। यह सभी ढंग भक्त लोग तपस्या के रूप में अथवा कोई-न-कोई माँगी हुई मनौती को पूर्ण करने के लिए अथवा कोई नयी कामना मन में रख कर करते हैं। आपकी मानसिक अवस्था, आपके लक्ष्य और आपकी भावना के अनुसार परम आध्यात्मिक लाभ की प्राप्ति होती है।

हिमाच्छादित हिमालय में निर्भीक यात्री कैलास पर्वत की और उससे भी बढ़ कर मानसरोवर झील को भी साथ सम्मिलित करते हुए और भी विकट तथा दीर्घ परिक्रमा करते हैं। अन्य यात्री समस्त उत्तराखण्ड की—केदार-बदरी यात्रा एक ओर से जा कर दूसरी ओर से लौटते हुए (केदार, बदरी, गंगोत्री और यमुनोत्री) चारों धाम की परिक्रमा करते हैं।

सुदूर दक्षिण में पावन भक्त जन पवित्र अरुणाचल की तिरुवन्नामलाई में परिक्रमा करते हैं। राम-भक्त और कृष्ण-प्रेमी जन चित्रकूट पर्वत, अयोध्या, ब्रज, वृन्दावन, गोवर्धन और बदरीनाथ की परिक्रमा करते हैं।

परिक्रमा की गहन महत्ता इस तथ्य में निहित है कि भक्त उस स्थान, पर्वत अथवा तीर्थ के स्थूल भौतिक पक्ष को ही महत्त्व न दे कर जिस आध्यात्मिक शक्ति का वह प्रतीक है, जिस दिव्य उपस्थिति को वह अभिव्यक्त करता है, उसकी अनुभूति करें। श्रीमद्भगवद्गीता के दशम अध्याय में भगवान् श्री कृष्ण द्वारा की गयी अभिव्यक्ति से आप जान सकते हैं कि स्थान-विशेष किस प्रकार दिव्य उपस्थिति से परिपूरित हैं। श्रद्धा और विश्वास की दृढ़ भावना द्वारा आप इन पवित्र स्थानों में प्रवाहित होने वाले आध्यात्मिक स्पन्दनों के प्रवाह को पूर्णतया ग्रहण करने में सक्षम बनें। ये शक्तिशाली आध्यात्मिक तरंगें व्यक्ति के भीतर प्रवेश करके उसके समस्त कोशों—स्थूल और सूक्ष्म, सभी को शुद्ध पवित्र करती हुईं समस्त कुवासनाओं और कुसंस्कारों को समाप्त कर देती हैं। तमस् और रजस् क्षीण हो जाते हैं। सत्त्व का सघन प्रभाव सुप्त आध्यात्मिक प्रवृत्तियों को जाग्रत कर देता है। परिक्रमा के द्वारा भक्त उस पावन स्थान को ओत-प्रोत करने वाले दिव्य वातावरण का पान करता है और सात्त्विक तरंगों से भरपूर हो कर आता है। परिक्रमा करने की यही आन्तरिक कार्यान्विति और महत्ता है।

अत्यन्त शुद्धिकारक होने के कारण सभी भक्त तपश्चर्या के रूप में इसका आनन्द प्राप्त करते हैं। यह महान् आध्यात्मिक लाभ है और धार्मिक पुण्य-कार्य भी है। भक्त स्नान करता है, शुद्ध वस्त्र धारण करता है, मस्तक पर तिलक अथवा विभूति लगाता है, तुलसी या रुद्राक्ष की माला पहनता है और भगवन्नाम-स्मरण करता हुआ परिक्रमा आरम्भ करता है। परिक्रमा के मार्ग में वहीं रहने वाले साधु-संन्यासियों का बहुमूल्य सत्संग उपलब्ध हो जाता है। पावन नदियों, तालों (तालाबों)अथवा कुओं में (बड़ी परिक्रमाओं के समय) स्नान करने से आपके पाप नष्ट हो जाते हैं। परिक्रमा-मार्ग में स्थित पवित्र मन्दिरों के दर्शनों द्वारा आपका मन उन्नत हो जाता है और आप धन्य हो जाते हैं। गरमी, शीत, वर्षा, धूप और असुविधाओं को सहन करने से आपमें धैर्य और सहन-शक्ति का विकास होता है। कठिन परिक्रमाएँ करने से आप बहुत-सी ऐसी वस्तुओं का भी त्याग कर देते हैं जिनके साथ आपके मन को राग है। आपका मन अन्य सभी प्रकार के विचारों से मुक्त हो कर केवल एक दिव्य उपस्थिति को अनुभव करने में एकाग्र हो जाता है। अत्यन्त श्रद्धापूर्वक की गयी परिक्रमा के द्वारा एक ही कार्य से शरीर, मन और आत्मा—तीनों को उन्नत करने वाली त्रिविध साधना हो जाती है। तीर्थ-स्थानों और मन्दिरों की आध्यात्मिक तरंगें आपकी तुच्छ आसुरी वृत्तियों को शुद्ध करके आपको सत्त्व और शुद्धता से परिपूरित कर

देती हैं। आपको सत्संग खोजने की आवश्यकता नहीं रहती। महापुरुष स्वयमेव आपके पास स्वेच्छा से चले आते हैं, वह सदैव सच्चे गम्भीर साधकों की खोज में रहते हैं। इसीलिए वह बदरी, केदार, कैलास, हरिद्वार, वृन्दावन, मथुरा इत्यादि जैसे पावन स्थलों में निवास करते हैं।

धन्य ही हैं वे लोग, जो परिक्रमा में सम्मिलित होते हैं; क्योंकि वह शीघ्र ही शान्ति, आनन्द और मोक्ष प्राप्त कर लेंगे! अयोध्या के भगवान् श्री राम की जय हो! घट-घट-वासी श्री कृष्ण की जय हो, जिनका विशेष निवास-स्थान वृन्दावन है! भक्तों की जय हो! आप सबको उनके आशीर्वाद प्राप्त हों!

वास्तविक पुष्प और आरती

मन्दिर का गुम्बद ब्रह्मरन्ध्र का प्रतीक है। बलिपीठ नाभि अथवा मणिपूर चक्र का सूचक है। नन्दी आज्ञा चक्र को अभिव्यक्त करता है। ध्वज-स्तम्भ मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक जाने वाली सुषुम्ना नाड़ी का प्रतीक है।

दिग्देवता का निवास कानों में है। वायु त्वचा में, सूर्य नेत्रों में, वरुण जिह्वा में, अश्विन नासिका में, विष्णु चरणों में, इन्द्र हाथों में, अग्नि वाणी में, प्रजापति जननेन्द्रिय में, यम गुदा में, सूत्रात्मा प्राण में, हिरण्यगर्भ अन्तःकरण में, चन्द्र मन में, ब्रह्मा बुद्धि में, रुद्र अहंकार में, शिव चित्त में, सरस्वती जिह्वाग्र में, पार्वती अनाहत चक्र में, लक्ष्मी मणिपूर चक्र में, गणेश मूलाधार में और सच्चिदानन्द ब्रह्म का निवास सिर के शीर्ष-स्थान ब्रह्मरन्ध्र में है।

सत्य, अहिंसा, तपस्, दया, प्रेम, आत्म-संयम, सन्तोष, क्षमा, ज्ञान, समदृष्टि और शान्ति पूजा के वास्तविक फूल हैं। समस्त नाद अभिषेक के जल हैं। शुभ कर्म धूप-दर्शन है। वेदान्त पीताम्बर है। ज्ञान और योग कुण्डल हैं। तपस् और ध्यान दीपक हैं। जप चँवर है। अनाहत संगीत है। कीर्तन छत्र है। प्राणायाम पंखा है।

तत्त्व भगवान् के सेवक हैं। ज्ञान-शक्ति देवी है। आगम सेनापति है। अष्ट सिद्धियाँ भगवान् की द्वारपाल हैं। तुरीय भस्म है। वेद नन्दी बैल है। गुण त्रिशूल के सूचक हैं। पंचाक्षर यज्ञोपवीत है। शुद्ध जीव आभूषण है। वृत्तियाँ पूजोपकरण हैं। पंचभूत और पंचतन्मात्राएँ भगवान् की रुद्राक्षमालाएँ हैं। अहंकार बाघछाल का सूचक है।

क्रिया-शक्ति और शुभ कर्म भगवान् को समर्पित धूप-अगरु हैं। ज्ञान की उत्पादक चित्-शक्ति भी धूप है। अहंभाव और मन को भगवान् के चरण-कमलों में समर्पित करना

ही सच्चा नैवेद्य है। जिस प्रकार कर्पूर अग्नि में घुल कर उसी में मिल जाता है, ठीक इसी प्रकार सन्त का मन भी द्रवित हो जाता है और जीवात्मा परमात्मा में लीन हो कर एक हो जाता है। यही वास्तविक कर्पूर आरती है ।

अध्याय १०

शैव उपनिषद्

उपनिषदों के रुद्र

कुछ अज्ञानी लोग सोचते हैं कि रुद्र अपकारी देव हैं और विनाश करने वाले हैं। उनका विश्वास है कि रुद्र दण्ड देने वाले भगवान् हैं। ऐसा नहीं है। रुद्र ऐसे देवता हैं जो समृद्धि प्रदान करते हैं, कष्टों का निवारण करते हैं। वह उपकारक-देव हैं जो मंगल, सन्तान तथा पशु-धन के प्रदाता हैं। वह वैभव प्रदाता हैं।

शिव अथवा रुद्र का अर्थ है—वह जो दु:ख-ताप का हर्ता है। भव, शर्व, पशुपति, उग्र, महादेव, ईशान रुद्र के ही नाम हैं। पशुपति का अर्थ है—पशुओं का रक्षक।

वेदों में आपको इस प्रकार की प्रार्थनाएँ मिलेंगी जैसे—''हे रुद्र! हमारी सन्तान-वृद्धि हो!'' ''हे रुद्र! आप सर्वोपरि हैं, आप सबसे बढ़ कर शक्तिशाली हैं, हे वज्रधारी आप हमारी रक्षा करें, हमें कष्टों से पार उतारें, हमारी विपदाओं को दूर करें!'' ''हमारे द्वारा हुए पापों से हमें मुक्त करें!'' अत: रुद्र भयकारी भगवान् नहीं हैं, प्रत्युत मंगल और समृद्धि दाता हैं। समस्त विश्व के वही एकमात्र ईश्वर हैं।

रुद्र रमते साधुओं के आदर्श हैं; क्योंकि धर्मग्रन्थों में सभी देवी-देवताओं में से केवल एक रुद्र को ही भिक्षुक-देवता कहा गया है। ऋग्वेद की स्तुतियों में आपको कमण्डलु को धारण करने वाला कहा गया है।

श्वेताश्वतर उपनिषद् के तृतीय अध्याय में आता है—''केवल एक रुद्र हैं* जो अपनी शक्तियों द्वारा समस्त लोकों पर शासन करते हैं। वह एकमेव अद्वितीय हैं, उनके अतिरिक्त अन्य कोई है ही नहीं। वह समस्त प्राणी मात्र के हृदयों में स्थित हैं। वह समस्त लोकों का सृजन करते हैं, उनका पालन करते हैं और अन्तत: अपने में ही लय कर लेते हैं।''

रुद्र यहाँ परब्रह्म, अनन्त, परिपूर्ण परम सत्ता के प्रतीक हैं।

---

* एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु: (श्वेता. ३/२)

रुद्र समस्त वस्तु-पदार्थों की रचना करने के पश्चात् अन्त में अर्थात् महाप्रलय के समय सबको अपने में ही लय कर लेते हैं।

रुद्र भगवान् शिव का संहारकारी पक्ष है। ब्रह्माण्डीय क्रम-परम्परा में एकादश रुद्र हैं। गूढ़ार्थों में प्राण (अथवा दश इन्द्रियाँ) और मन ही एकादश रुद्रों के सूचक हैं। श्री हनुमान् भी रुद्र के ही अवतार हैं।

शिवपुराण में रुद्र शिव का ही अन्य नाम है। रुद्र वह हैं जो पापों का विनाश करके अपने भक्तों के कष्टों को दूर करते तथा उन पर ज्ञान और आनन्द की वृष्टि करते हैं। रुद्र समस्त प्राणी मात्र के अन्तर्यामी हैं। वह मूक द्रष्टा हो कर मानव के कार्यों और विचारों को देखते रहते हैं और उनके कर्मों के अनुसार फल देते हैं।

''वह भगवान् जिनके सर्वत्र ही नेत्र हैं, सब ओर मुख, हाथ और पैर हैं, वह अपने हाथों और पंखों से धरती और स्वर्ग की रचना करते हैं।''

हे रुद्र, देवों के स्रष्टा और पालक, महान् द्रष्टा, देवाधिदेव, हिरण्यगर्भ के भी रचियता हैं! हमें शुभ-विचार (शुद्ध-बुद्धि) प्रदान करें!

''हे रुद्र! आपका स्वरूप जो कि मंगलमय है, भयंकर नहीं है, आप अपने उसी कल्याणकारी आनन्दप्रद स्वरूप से हमें दर्शन दें! हे पर्वतों के निवासी प्रभु, हमें अपने मंगलमय दर्शन दें!''

रुद्राक्ष जाबाल उपनिषद्

हरि ॐ! श्री रुद्राक्ष जाबाल उपनिषद् द्वारा जाना जाने वाले श्री महारुद्र के परम प्रकाशमय परम शान्त स्वरूप को प्रणाम है!

भुशुण्ड ने श्री भगवान् कालाग्निरुद्र से प्रश्न किया कि रुद्राक्ष के दानों की उत्पत्ति कैसे हुई? उन्हें शरीर पर धारण करने से क्या फल होता है?

भगवान् कालाग्निरुद्र ने इस प्रकार उत्तर दिया—''त्रिपुर असुर के संहार हेतु मैंने नेत्र बन्द कर लिये। इस प्रकार मेरे नेत्र बन्द होने पर जल की बूँदें पृथ्वी पर गिरीं। इस अश्रु-जल-कणों से रुद्राक्ष की उत्पत्ति हुई।''

'रुद्राक्ष' शब्द मुख से उच्चरित करने से दश गायों के दान करने के समान पुण्य-लाभ प्राप्त होता है। इसको देखने और स्पर्श करने मात्र से इससे द्विगुणित फल की प्राप्ति होती है। इसकी महिमा का मैं वर्णन नहीं कर सकता। मैं मन को संयम में रख कर हजारों दिव्य वर्षों तक घोर तपस्या में लगा रहा। मेरे नेत्र बन्द थे। तब मेरी आँखों के कुछ

जल-बिन्दु गिरे और भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए वे अश्रु-बिन्दु स्थावर भाव को प्राप्त हो गये।

यह रुद्राक्ष पहनने से दिन अथवा रात में किये गये समस्त पाप-समूहों का नाश हो जाता है।

रुद्राक्ष के दर्शन मात्र से मान लें कि एक लाख गुणा लाभ होगा। किन्तु इसे धारण करने से यह लाभ एक करोड़ गुणा हो जायेगा। करोड़ ही क्यों, यह शत करोड़ गुणा हो जायेगा।

किन्तु जब व्यक्ति रुद्राक्ष को हर समय धारण किये रहे और रुद्राक्ष की माला से जप करे, तो वह जप सहस्र लाख करोड़ तथा सौ लाख करोड़ गुणा अधिक शक्तिशाली तथा फलदायी हो जायेगा।

रुद्राक्षों में, जो आँवले के फल के बराबर हो, वह श्रेष्ठ माना जाता है। जो बेर के फल के बराबर हो, वह मध्यम श्रेणी का कहा गया है। जो चने के बराबर हो, उसकी गणना निम्न कोटि में की गयी है।

वर्णाश्रम में चार प्रकार के जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्व और शूद्र जाति के हो कर उत्पन्न हुए हैं, वे तो व्यर्थ ही धरती पर भार स्वरूप ही हैं। वास्तविक ब्राह्मण तो श्वेत वर्ण के रुद्राक्ष हैं। रक्त वर्ण का रुद्राक्ष क्षत्रिय, पीत वर्ण का वैश्य और श्याम वर्ण का शूद्र है।

अतः ब्राह्मण जाति वाले श्वेत रुद्राक्ष, क्षत्रिय लाल रुद्राक्ष, वैश्य पीत तथा शूद्र को श्याम वर्ण का रुद्राक्ष धारण करना चाहिए।

समान आकार वाले, चिकने, मजबूत, स्थूल, कण्टक युक्त (उभरे हुए छोटे-छोटे दानों वाले) और सुन्दर रुद्राक्ष ही प्रयोग में लाने चाहिए। जिसे कीड़ों ने दूषित कर दिया हो, जो टूटा-फूटा हो, जो बिना कण्टक हो, जो व्रण युक्त हो तथा जो पूरा गोल न हो, उसको त्याग देना चाहिए।

जिस रुद्राक्ष में अपने-आप ही डोरा पिरोने योग्य छिद्र हो गया हो, वह उत्तम माना जाता है। जिसमें मनुष्य ने प्रयत्नपूर्वक छिद्र बनाया हो, वह निम्न श्रेणी का है। उत्तम श्रेणी के रुद्राक्ष श्वेत धागे में पिरो लेने चाहिए। शिव-भक्त को अपने समस्त शरीर में रुद्राक्ष धारण करने चाहिए। वह एक रुद्राक्ष चोटी में धारण करे, तीन सौ रुद्राक्ष शिर के चारों और माला बना कर लपेटे। छत्तीस गले में, सोलह प्रत्येक बाजू में, बारह वक्ष पर और पाँच सौ कमर के इर्द-गिर्द लपेट लेने चाहिए। एक सौ आठ दानों का यज्ञोपवीत बना कर उसे पहनना चाहिए। ग्रीवा में दो, तीन, पाँच अथवा सात रुद्राक्ष-मालाएँ धारण करनी चाहिए।

शिव-भक्त को सिर के चारों ओर, कानों में, ग्रीवा में, बाहों में, पेट के चारों ओर, प्रत्येक समय, भले ही वह सो रहा हो या खा रहा हो, रुद्राक्ष धारण किये रहना चाहिए।

यदि भक्त तीन सौ रुद्राक्ष धारण करता है तो वह न्यूनतम फलदायी है, यदि पाँच सौ पहनता है तो मध्यम श्रेणी का है; किन्तु यदि एक सहस्र धारण करता है, तो वह सर्वश्रेष्ठ फलदायी है।

जब भक्त सिर पर रुद्राक्ष धारण करे तो ईशान-मन्त्र से, कान में तत्पुरुष-मन्त्र से तथा गले और हृदय में अघोर-मन्त्र से रुद्राक्ष धारण करने चाहिए। दोनों हाथों में अघोर-बीज-मन्त्र से रुद्राक्ष धारण करे।

तब भुशुण्ड ने पुनः प्रश्न किया कि रुद्राक्ष के दानों के क्या भेद हैं और उनका क्या व कैसा प्रभाव है ? कृपया मुझे इन कल्याणकारी रुद्राक्षों के रहस्य, उनके विभिन्न मुखों तथा सबका क्या-क्या फल है, यह भी बतायें।

भगवान् कालाग्निरुद्र ने बताया कि एकमुखी रुद्राक्ष साक्षात् शिव का स्वरूप है। संयमित व्यक्ति (जिसने अपनी इन्द्रियों को नियन्त्रण में कर लिया हो) यदि इसे धारण कर ले, तो वह परम सत्ता के साथ एक हो जाता है। (रुद्राक्ष के विभिन्न मुखों के अनुसार उनके द्वारा प्राप्त फल की सूची निम्नांकित है।)

मुख	स्वरूप	फल
१	परम सत्य	मोक्ष-प्राप्ति
२	अर्धनारीश्वर	अर्धनारीश्वर की कृपा की प्राप्ति
३	त्रेताग्नि	अग्निदेव की कृपा
४	ब्रह्मा	ब्रह्मा का आशीर्वाद
५	पंच ब्रह्मा	नर-हत्या के पाप से मुक्ति
६	कार्तिकेय अथवा गणेश	चित्त-शुद्धि और ज्ञान की प्राप्ति
७	सप्तमल	उत्तम स्वास्थ्य और धन की प्राप्ति
८	अष्टवसु, अष्ट मात्रा या गंगा	इन देवताओं की कृपा तथा सत्य-प्राप्ति
९	नव-शक्ति	नव-शक्तियों की उपलब्धि
१०	यम	शान्ति की प्राप्ति
११	एकादश रुद्र	सब प्रकार की धन-सम्पदा की प्राप्ति
१२	महाविष्णु या द्वादश आदित्य	मोक्ष-प्राप्ति
१३	कामदेव	समस्त इच्छाओं की पूर्ति, कामदेव की कृपा
१४	रुद्र	समस्त रोगों का नाश

रुद्राक्षधारी मनुष्य अपने खान-पान में मदिरा, मांस, लहसुन, प्याज, गाजर इत्यादि वर्जित पदार्थों को त्याग दे। ग्रहण, विषु संक्रान्ति (मीन के अन्त तथा मेष के प्रारम्भ का काल), अमावास्या, पूर्णिमा तथा अन्य शुभ दिनों में रुद्राक्ष धारण करने से व्यक्ति समस्त पाप-तापों से मुक्त हो जाता है।

रुद्राक्ष का मूल तो ब्रह्मा, नाभि विष्णु, इसका मुख रुद्र तथा इसका छिद्र समस्त देवता कहे गये हैं।

एक दिन सनत्कुमार ने कालाग्निरुद्र से पूछा—"भगवन्! कृपया मुझे बतायें कि रुद्राक्ष धारण करने के क्या नियम हैं?" उसी समय निदघ, जड़भरत, दत्तात्रेय, कात्यायन, भारद्वाज, कपिल, वसिष्ठ, पिप्पलाद इत्यादि भी कालाग्निरुद्र के पास आ गये। तब भगवान् कालाग्निरुद्र ने उनके एकत्रित हो कर आने का कारण जानना चाहा। उन्होंने कहा कि वह सब रुद्राक्ष धारण करने की विधि जानने की इच्छा से आये हैं।

तब कालाग्निरुद्र ने बताया कि जो रुद्र के अक्ष (नेत्रों) से उत्पन्न हुए हैं, वह रुद्राक्ष कहलाते हैं। यदि इन रुद्राक्षों को एक बार हाथ से स्पर्श भी कर लिया जाये, तो दो सहस्र गायें एक-साथ दान कर देने जितने फल की प्राप्ति होती है। यदि इन्हें कान में पहना जाये, तो एकादश सहस्र गाय दान के समान फलदायी है। उसे एकादश रुद्रों की अवस्था की प्राप्ति होती है। यदि उन्हें सिर पर धारण किया जाये, तो उसे करोड़ गोदान करने का फल प्राप्त होता है। अधिक क्या कहूँ, इन सब अंगों से बढ़ कर कानों में रुद्राक्ष धारण करने का फल वर्णनातीत है।

जो भी इस रुद्राक्ष जाबाल उपनिषद् का अध्ययन करता है, वह भले ही बालक हो अथवा युवक हो, महान् हो जाता है। वह समस्त मन्त्रों के ज्ञाता शिक्षकों का भी गुरु बन जाता है। उपनिषद् के इन मन्त्रों सहित हवन तथा अर्चना करनी चाहिए।

जो ब्राह्मण सन्ध्याकाल में इस उपनिषद् के मन्त्रों का उच्चारण करता है, उसके दिन-भर में किये गये पाप नष्ट हो जाते हैं; जो मध्याह्न (दोपहर) में उच्चारण करता है, उसके छह जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं, जो प्रात:-सायं इसके मन्त्रों का उच्चारण करता है, वह जन्म-जन्मान्तर के पापों से छूट जाता है। उसे छह सहस्र लाख गायत्री-जप का फल प्राप्त हो जाता है।

वह ब्रह्म-हत्या, मदिरा-पान, स्वर्ण-चोरी, गुरुपत्नी से संभोग, पापी के संग वार्तालाप इत्यादि जैसे महापातकों से मुक्त हो कर शुद्ध-पवित्र हो जाता है।

उसे समस्त तीर्थाटन, समस्त पावन नदियों के स्नान का पुण्य-लाभ होता है। उसे शिव-सायुज्य की प्राप्ति होती है तथा उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

भस्म जाबाल उपनिषद्

मैं केवल वह परम ब्रह्म हूँ, जिसको अपने (आत्मा के साथ एकरूप होने के) सही अर्थों में जान लिये जाने पर, संसार को सत्य समझने का तथा स्वयं से भिन्न होने का अज्ञान (भ्रान्ति या माया) परम ज्ञान की विनाशकारी अग्नि में जल कर भस्मीभूत हो जाता है।

एक बार जाबालि के पुत्र भुशुण्ड कैलास पर्वत पर गये और उन्होंने भगवान् महादेव शिव जो ॐ कार स्वरूप हैं और जो ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र त्रियेक परमेश्वर से अतीत हैं—के समक्ष दण्डवत् प्रणाम किया।

भुशुण्ड ने भगवान् शिव की अत्यधिक श्रद्धापूर्वक बारम्बार फल, फूल और बिल्व-पत्रों से पूजा की। तब उन्होंने भगवान् से प्रश्न किया—"प्रभु! कृपया मुझे भस्म-धारण की विधि से सम्बन्धित समस्त वेदों का ज्ञान प्रदान कीजिए; क्योंकि मोक्ष प्राप्त करने का एकमात्र यही उपाय है। भस्म किस वस्तु की बनी हुई है? इसको कहाँ धारण किया जाना चाहिए? कौन-से मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिए ? कौन व्यक्ति इसके उपयुक्त हैं? इससे सम्बन्धित नियम क्या-क्या हैं? हीन जाति से उत्पन्न मुझे कृपया उपदेश करें।"

दयानिधान परमेश्वर ने कहा—"सर्व प्रथम भक्त देवताओं के प्रभाव को ध्यान में रखते हुए उचित मुहूर्त देख कर प्रातःकाल शुद्ध पवित्र गोबर ले कर आये, इसे पलाश वृक्ष के पत्ते पर रख कर वैदिक मन्त्रों 'त्र्यम्बकम्' इत्यादि के साथ धूप में सुखाये।

तब गाय के सूखे गोबर को किसी सुविधाजनक शुद्ध स्थान में रख कर, गृह्य-सूत्र-वर्णित अपने वर्णाश्रम के अनुकूल नियमों के अनुसार किसी भी अग्नि से जलाना चाहिए। उसके पश्चात् 'सोमाय स्वाहा' मन्त्रोच्चारण करते हुए घी, जौ और तिल की आहुतियाँ डालनी चाहिए। कुल एक सहस्र आठ आहुतियाँ अथवा सम्भव हो, तो इससे डेढ़ गुणा अधिक डाले। आहुति डालने के लिए पत्ते का स्रुव बनाये; ऐसा करने से व्यक्ति से कोई पाप नहीं होता।

तब अन्त में पूर्णाहुति के समय 'त्र्यम्बकम्' इत्यादि मन्त्र के साथ श्वेश्तकृत की आहुति डालनी चाहिए। उसी मन्त्र के साथ अष्ट दिशाओं (अग्नि की) बलि अर्पित करनी चाहिए। तब भक्त को अत्यन्त श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए।

तभी वह पवित्र होता है। तत्पश्चात् उसे पात्र में से पंच-ब्रह्म-मन्त्रों 'मानस्तोक', 'सद्योजातम्' इत्यादि के द्वारा इस भावना के साथ कि अग्नि भस्म है, वायु भस्म है, जल भस्म है, आकाश भस्म है, देवता भस्म है, ऋषि भस्म है, यह समस्त विश्व और

वस्तु-पदार्थ भस्म हैं; वह समस्त पापों को नष्ट करके पवित्र कर देने वाली भस्म के समक्ष प्रणाम करे।

इसके उपरान्त भक्त पवित्र किये हुए बायें हाथ के साथ 'वामदेवाय' (यह वामदेव के लिए है) कहते हुए 'त्र्यम्बकम्' इत्यादि मन्त्रों के साथ छिड़क दे, फिर 'शुद्धं शुद्धेना' इत्यादि मन्त्र के साथ स्वच्छ करने के लिए इसे भली-भाँति छान ले। तब उसे सिर से पैर तक पाँच ब्रह्म-मन्त्रों सहित धूलन (मर्दन या लेपन) कर लेना चाहिए। प्रथम, मध्यमा और अनामिका से, उसे 'सिर के लिए' तथा 'हे भस्म! तुम अग्नि में से हो' कहते हुए सिर पर धारण कर लेना चाहिए।

भस्म धारण करने के अंग	मन्त्र
१. मस्तक	त्र्यम्बकम् इत्यादि
२. ग्रीवा	नीलग्रीवाय इत्यादि
३. ग्रीवा की दाहिनी ओर	त्र्ययुशाम इत्यादि
४. दोनों कपोल	वाम इत्यादि
५. दोनों नेत्र	कालाय इत्यादि
६. दोनों कान	त्रिलोचनाय इत्यादि
७. चेहरा	श्रीनवम् इत्यादि
८. वक्ष	प्रवरावाम इत्यादि
९. नाभि	आत्मने इत्यादि
१०. दाहिने कन्धे के नीचे	नाभिः इत्यादि
११. दाहिने कन्धे के मध्य में	भवाय इत्यादि
१२. वक्ष के दाहिनी ओर	रुद्राय इत्यादि
१३. दाहिनी भुजा के पीछे	शर्वाय इत्यादि
१४. बायें कन्धे के नीचे	पशुपतये इत्यादि
१५. बायें कन्धे के मध्य	उग्राय इत्यादि
१६. बायीं भुजा के मध्य	अग्रेवधाय इत्यादि
१७. बायीं भुजा के पीछे	दूरेवधाय इत्यादि
१८. काँखें या बगलें	नमो हन्त्रे इत्यादि
१९. समस्त अंग	शंकराय इत्यादि

इसके उपरान्त भक्त भगवान् शिव के समक्ष 'सोमाय' इत्यादि मन्त्र सहित प्रणाम करे। वह हाथ प्रक्षालन करे और जल मिश्रित भस्म को 'आपः पुनन्तु' इत्यादि मन्त्र सहित पान करे। किसी भी कारण से उस भस्म मिश्रित जल को गिराये नहीं।

इस प्रकार यह भस्म धारण का विधिपूर्वक प्रातः, दोपहर और सायं काल तीन बार अभ्यास करना चाहिए। ऐसा न करने से उसका पतन हो जायेगा। सभी ब्राह्मणों के लिए यही विधान है। भस्म धारण किये बिना, ऐसा किये बिना वह जल तक ग्रहण न करे। यदि किसी कारणवश ऐसा करने में भूल हो जाये, तो वह गायत्री जप भी उस दिन न करे, कोई यज्ञ न करे; देवताओं, ऋषियों अथवा पितरों को तर्पण न करे। यह शाश्वत धर्म है, जो पापों का नाशक तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है।

ब्राह्मणों, ब्रह्मचारियों, गृहस्थों, वानप्रस्थियों और संन्यासियों—सभी के लिए यही नित्य-क्रिया का विधान है। इसमें यदि एक बार भी प्रमादवश भूल हो जाये, तो उसे कण्ठ तक जल में खड़े हो कर १०८ गायत्री जप करना तथा उपवास करना चाहिए। यदि संन्यासी से भस्म-धारण एक दिन भी छूट जाये, तो उसे दिन-भर उपवास तथा एक सहस्र प्रणव जप करके शुद्धिकरण करना चाहिए। अन्यथा, भगवान् ऐसे संन्यासी को कुत्तों और भेड़ियों के आगे फेंक देंगे।

यदि इस प्रकार की भस्म उपलब्ध न हो सके, तो कोई भी सुविधानुसार प्राप्त हो सकने वाली भस्म, निर्धारित मन्त्रोच्चारणपूर्वक धारण करें। ऐसा करने से सभी प्रकार के पापों का नाश हो जाता है।

तब भुशुण्ड ने पुनः प्रश्न किया—"ब्राह्मण के लिए अन्य कौन-से ऐसे नित्य-कर्म करने का विधान है, जिनके न करने पर उन्हें पाप का भागी होना पड़ता है? तब उन्हें किसका ध्यान करना चाहिए? किसे स्मरण करना चाहिए? ध्यान-विधि क्या है? इसे कहाँ करना चाहिए? कृपा करके मुझे विस्तार से कहें!"

भगवान् ने संक्षेप में उत्तर दिया कि सर्वप्रथम भक्त को प्रातः सूर्योदय से पूर्व शैया त्याग देनी चाहिए।

नित्य-कर्म, शुद्धिकरण-कर्मों के पश्चात् उसे स्नान करना चाहिए। रुद्रसूक्त पाठ सहित वह शरीर-शुद्धि करे। तब वह शुद्ध धुले वस्त्र धारण करे। इसके पश्चात् सूर्यदेव का ध्यान करे तथा सभी निर्धारित अंगों पर भस्म धारण करे। तब वह बताये गये नियमानुसार श्वेत रुद्राक्ष धारण करे। भस्म धारण करने के लिए निम्नांकित नियम भी बताये गये हैं :

अंग	संख्या (रेखाओं की)
१. सिर	४०
२. वक्ष	१ या ३
३. कान	११
४. ग्रीवा	३२
५. बाहें	१६ प्रत्येक पर
६. कण्ठ	१२ दोनों ओर
७. अंगुष्ठ	६ प्रत्येक पर

इसके उपरान्त भक्त हाथ में कुशा ले कर सन्ध्या-वन्दन करे। उसे शिव-षडक्षर अथवा शिव-अष्टाक्षर का जप करना चाहिए। **'ॐ नमः शिवाय'** तथा **'ॐ नमो महादेवाय'** दो मन्त्र हैं। यह परम सत्य और सर्वोच्च उपदेश है। मैं ही देवाधिदेव, महादेव भगवान् शिव हूँ, जो समस्त लोक-लोकान्तरों का नियन्ता हूँ। मैं ही अव्यक्त परम ब्रह्म हूँ, मैं ॐकार हूँ। मैं ही सबका स्रष्टा, पालनकर्ता और संहारकर्ता हूँ। मेरे ही भय से समस्त कार्य नियमानुसार चल रहे हैं। मैं ही यह जगत् हूँ और इसके पंचमहाभूत हूँ। मैं ही परम सत्य, परम सत्ता हूँ। उपनिषदों का ब्रह्म मैं ही हूँ। यह परम विद्या है।

मोक्ष का प्रदाता केवल मैं ही हूँ। अतः सभी लोग अन्तिम सहायता के लिए मेरे ही पास आते हैं। यही कारण है कि जो मेरे त्रिशूल के ऊपर स्थित काशी—वाराणसी में प्राण तजते हैं, उन्हें मैं अपने स्वरूप में ही लय कर लेता हूँ। इसलिए सबको वाराणसी में ही तप करना चाहिए। किसी भी कारण से वाराणसी की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। सबको ज़हाँ तक सम्भव हो, काशी में ही निवास करने का प्रयत्न करना चाहिए। काशी से उत्तम कोई स्थान नहीं है।

वाराणसी में भी सर्वोत्तम पावन स्थल शिव मन्दिर है, जहाँ पूर्व दिशा में धन का निवास है, दक्षिण में विचार का वास है, पश्चिम में वैराग्य निवास करता है तथा उत्तर में ज्ञान विद्यमान है। वहाँ इन सबके मध्य स्थान में मुझ परमात्मा की पूजा की जानी चाहिए। वाराणसी—काशी का वह लिंग सूर्य, चन्द्रमा अथवा सितारों द्वारा प्रकाशित नहीं है। उस स्वयं-प्रकाशित, 'स्वयम्भू' लिंग—'विश्वेश्वर' का मूल पाताल में है। वह मैं हूँ। मेरी पूजा उसी के द्वारा की जानी चाहिए। जिसने उपरोक्त विधि से भस्म और रुद्राक्ष धारण किये हुए हों, मैं उसे समस्त पाप-तापों से मुक्त कर दूँगा।

मेरा अभिषेक करने से वह मेरी सायुज्य-अवस्था को प्राप्त हो जाता है। मेरे अतिरिक्त अन्य किसी का अस्तित्व नहीं है। मैं सबको तारक मन्त्र से दीक्षित करता हूँ। जो मोक्ष के आकांक्षी हैं, उन्हें वाराणसी में निवास करना चाहिए। मैं उनके हित की रक्षा करता हूँ। मैं ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—तीनों का प्रभु हूँ। जो भी नर-नारी वाराणसी में देह त्यागेंगे, भले ही वे कितने भी दुराचारी क्यों न हों, मोक्ष प्राप्त करेंगे। अन्य पापात्मा मृत्यु के पश्चात् प्रज्वलित अग्नि-कुण्डों में जलाये जायेंगे। अत: प्रत्येक भक्त को वाराणसी में ही निवास करना चाहिए, जो कि मेरा प्राण लिंग है।

त्रिपुरतापिनी उपनिषद्

मैं परम सत्य की स्तुति करता हूँ जो कि परम ज्ञान है, उसे त्रिपुरतापिनी उपनिषद् की विद्या द्वारा जाना जा सकता है।

भगवान् ने भयंकर विनाशकारी महाकाल का रूप ले कर तीनों लोकों भू:, भुव: और स्व: को आच्छादित कर लिया। तब उन्होंने आदिशक्ति को प्रकट किया, अर्थात् आदिशक्ति उनके हृदय में से प्रकट हुई। यही शक्ति है जो शिव माया नाम से जानी जाती है और इसका बीज अक्षर 'ह्रीं' है। तब समस्त जगत् इस शक्ति द्वारा आच्छादित हो गया। क्योंकि उसने तीनों लोकों अथवा पुरों को आच्छादित कर लिया, अत: वह 'त्रिपुरा' कहलायी।

यह त्रिपुरा शक्ति में श्रीविद्या नामक विद्या है, जो निम्न वैदिक मन्त्रों द्वारा प्राप्त हो सकती है :

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो न: प्रचोदयात्। परो रजसे सावदोम्॥

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेद:।
सन: पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्नि: ॥

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥

यह शताक्षरी (सौ अक्षरों वाली) परम विद्या है। यह परमेश्वरी, स्वयं त्रिपुरा है।

उपर्युक्त मन्त्रों में प्रथम चार श्लोकों में परब्रह्म की महिमा का वर्णन है। द्वितीय में शक्ति की महिमा वर्णित है। तृतीय में स्वयं भगवान् शिव की महिमा का वर्णन किया गया है।

इस विद्या में समस्त लोकों, समस्त वेदों, सम्पूर्ण शास्त्रों, सभी पुराणों और समस्त धर्मों का वर्णन है तथा यह शिव और शक्ति के योग से उद्भूत प्रकाश (ज्ञान) स्वरूप है।

अब हम इन पद्यांशों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और गुह्य अर्थ जानने का प्रयास करेंगे। यहाँ 'तत्' शब्द से भाव स्वयं उस शाश्वत परब्रह्म से है। यह उन भगवान् के लिए प्रतीक रूप से प्रयुक्त हुआ है जो समस्त परिभाषाओं और तर्कों से परे हैं। यह भगवान् स्वयं पराविद्या की साकार प्रतिमा हैं, अर्थात् वह चाहते हैं कि वे पराविद्या के रूप में रहें। केवल वे ही महाप्रभु शिव हैं जिनकी सन्त, योगी इत्यादि सभी यज्ञादि द्वारा आकांक्षा रखते हैं। अत: यह इच्छा की सृष्टि है।

अत: भगवान्, जो कि समस्त इच्छाओं की पहुँच से परे हैं, तो भी स्वयं इच्छा करते हैं और सर्व-इच्छित भी हैं। भाषा की वर्णानुक्रमिक सूची के स्रष्टा वे ही हैं। अत: उन्हें 'काम' अथवा कामना (इच्छा) कहा जाता है। काम को अभिव्यक्त करने वाले अक्षर को 'क' कहा गया है, अत: 'तत्' शब्द 'क' अक्षर का प्रतीक है। 'तत्' शब्द का यह अर्थ है।

'सवितु:' संस्कृत के 'सुंज प्रानिपरासवे' धातु से निकला है, जिसका अर्थ है—सब प्राणी-मात्र का रचयिता। वह महान् शक्ति है। यह महाशक्ति अथवा देवी त्रिपुरा महाकुण्डली (यन्त्र) में समाहित है। अत: अग्नि-गोलक (सूर्य का) को जानना चाहिए। त्रिकोण की यह 'ई' शक्ति अक्षर से अभिव्यक्त होती है। अत: हमें 'सवितु:' शब्द से अक्षर 'ई' जानना चाहिए।

'वरेण्यम्' का अर्थ है—पूजा करने योग्य, जो अनश्वर और प्रशंसा-स्तुति करने योग्य हो। अत: जान लेना चाहिए कि 'वरेण्यम्' से अक्षर 'र' ले लेना चाहिए। अब 'भर्गो' और 'धीमहि' की व्याख्या की जायेगी। 'ध' अक्षर का अर्थ है—धारणा अथवा एकाग्रता। भगवान् की धारणा सदैव 'धी' अथवा बुद्धि से की जाती है। 'भर्ग' स्वयं भगवान् हैं, जिन्हें केवल चतुर्थ अवस्था पर पहुँचने पर ही अनुभव किया जा सकता है, और यही वह परब्रह्म है जो सर्वत्र व्याप्त है। इस चतुर्थ अवस्था को अभिव्यक्त करने वाला अक्षर 'ई' है और यही मन्त्र के उपर्युक्त शब्दों का अर्थ है। अब हम 'महि' शब्द की व्याख्या करेंगे। 'महि' का अर्थ है—महानता, निष्क्रियता, शक्ति, दृढ़ता; और यह उस तत्त्व से सम्बन्धित है जिसमें ये गुण हैं। यह पृथ्वी है जो 'ल' अक्षर से व्यक्त होती है। यह परमोच्च अवस्था है। अत: यह लकार पृथ्वी का गुण प्रतिपादित करते हुए समस्त सागरों, वनों, पर्वतों और सप्त द्वीपों का प्रतीक स्वरूप है। अत: देवी के रूप में पृथ्वी कहलाने वाली यह 'महि' शब्द से जानी जाती है।

अब 'धियो यो नः प्रचोदयात्' की व्याख्या करते हैं। 'परा' स्वयं अविनाशी शिव हैं, जो परमात्मा हैं। इसका निहितार्थ इस प्रकार है—हमें जड़ रूप लकार, अथवा ज्योतिर्लिंग, अथवा भगवान् शिव का ध्यान करना चाहिए, जो समस्त सत्ताधारियों में परमोच्च हैं। यहाँ किसी भी प्रकार के ध्यान की इच्छा नहीं है। यह समस्त ध्यानों से अतीत अवस्था है। अतः हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि वह हमारे मन को उस निर्विकल्प अवस्था की ओर उन्मुख करें, जहाँ पहुँच कर समस्त चिन्तन समाप्त हो जाता है। यह प्रार्थना मौखिक नहीं होनी चाहिए। इसकी केवल मन में भावना करनी चाहिए।

अब है—'परो रजसे सावदोम्'। परम सत्य के स्वरूप पर ध्यान करने के पश्चात् एक शुद्ध, आनन्दपूर्ण, ज्ञानपूर्ण विशाल प्रकाश उद्‌भूत होगा, जिसका वास्तविक निवास हृदय-गुहा में है। सम्पूर्ण ज्ञान और वाणी का यही सार है। यही वास्तविक शक्ति है। इसे पंचाक्षर कहते हैं, क्योंकि पंचभूतों का स्रष्टा यही है। विवेकशील को यह भली-भाँति जान लेना चाहिए।

यह विद्या भक्त के लिए सर्व सुख-प्रदायिनी है। अतः बत्तीस अक्षरों की इस विद्या को भली-भाँति जान लेने के पश्चात् भक्त को 'ह' अक्षर का चिन्तन करना चाहिए, जो शिव का स्वरूप है, जो अविनाशी, नित्य-शुद्ध अवस्था है। सूर्य और चन्द्रमा के योग से, अर्थात् शिव और शक्ति के योग से उद्भूत यह अक्षर 'ह' 'हंस' है। यह काम का बीज है। इस विद्या के द्वारा हम परम ब्रह्म शिव का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

इस संयोजन को जीवात्मा के परमात्मा के साथ संयोग के रूप से भी जाना जाता है। अतः 'ह' से भाव शाश्वत अवस्था अथवा परम मोक्ष-प्राप्ति से भी है।

यह श्रीविद्या की व्युत्पत्ति है। जो इसे जान लेता है, वह रुद्र स्वरूप को प्राप्त होता है। वह विष्णुलोक को भेद कर परब्रह्म तक पहुँच जाता है।

अब द्वितीय मन्त्र आता है। यह मन्त्र त्रिपुरादेवी की महिमा का वर्णन करता है।

'जात' शब्द का अर्थ है भगवान् शिव। जिसने 'वर्ण-मात्रिका' के प्रथम अक्षरों को उत्पन्न किया, जो ॐ कार में बिन्दु रूप से है, वह 'जात' कहा जाता है। अथवा इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि जिसने उत्पन्न होते ही काम-पूर्ति की इच्छा की उसे 'जात' कहा जाता है। इस प्रकार देवी त्रिपुरा की विद्या उसी प्रकार मन्त्र के विभिन्न शब्दों की (मन्त्रशास्त्र के अनुसार) विभक्ति करके भली-भाँति समझनी चाहिए। तब इस मन्त्र से सब प्रकार की रक्षा प्राप्त हो सकती है। इसमें सर्वप्रथम जानने योग्य यह है कि 'जात' एकमेव प्रकाश स्वरूप परमात्मा हैं। त्रिपुरा से सम्बन्धित समस्त विद्याओं का मूल आधार यही मानना चाहिए। यहाँ यह भी जानना चाहिए कि अक्षर 'स' शक्ति का प्रतीक है और अक्षर 'सोमम्'

शिव की अवस्था का द्योतक है। जो यह जान लेता है, उसे यश और नाम की प्राप्ति होती है।

अत: यह विद्या, जिसमें त्रिपुरादेवी का सदैव निवास है, को समस्त विद्याओं का मूलाधार जानना चाहिए और भक्त को सदैव इस विद्या का स्वाध्याय और पाठ करना चाहिए। यह शिव और शक्ति की शक्तियों की द्योतक है। इसे स्वयं श्री त्रिपुराम्बा की भुजा कहा गया है। यही विद्या जब ध्यान के लिए प्रयोग की जाती है, तो 'सर्वतोधिरा' कही जाती है।

त्रिपुरा का यह श्री विद्या चक्र समस्त चक्रों का सम्राट् है। यह व्यक्ति को अभीष्ट फल प्रदान करता है। इसकी उपासना बिना किसी भेदभाव के हर कोई कर सकता है। यह चक्र मोक्ष का द्वार है तथा योगी जन इस विद्या के द्वारा ब्रह्म-भेदन करके परम आनन्द को प्राप्त करते हैं। यह चक्र त्रिपुरादेवी का गृह है।

इसके पश्चात् मृत्युंजय अनुष्टुप मन्त्र आता है। 'त्र्यम्बकम्' ('त्रयनाम अम्बकम्') का अर्थ है—तीन लोकों के भगवान्। 'त्रयनाम' का अर्थ है—तीनों लोकों का। 'अम्बकम्' इनका पति अथवा नियन्ता। 'यजामहे' का अर्थ है—'सेवामहे' अथवा सेवा करो। इसके अतिरिक्त 'महे' का अर्थ है—'मृत्युंजय' अथवा मृत्यु का नाशक। अत: 'यजामहे' शब्द यहाँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

'सुगन्धिम्' शब्द का अर्थ है—सब ओर से यश प्राप्त करना। 'पुष्टिवर्धनम्' शब्द का अर्थ है—जो समस्त लोकों की रचना करता है, उनका पालन करता है, उनमें विद्यमान है और उनका मोक्ष-प्रदाता है।

'उर्वारुकम्' का अर्थ है—खीरा (ककड़ी फल)। 'उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।' खीरा लता के साथ जुड़ा (बँधा) रहता है। इसी प्रकार मनुष्य तथा अन्य जीव संसार के साथ बन्धन में बँधे रहते हैं। यहाँ इसका अर्थ है—समस्त प्राणियों को संसार की माया के बन्धन से मुक्त करके परमानन्द प्राप्त कराना, ठीक उसी प्रकार सहजता से, जैसे खीरा अपनी लता के बन्धन से छूट जाता है।

जो व्यक्ति मृत्यु पर विजय प्राप्त करना चाहता है, उसे 'मृत्युंजय' मन्त्र का जप करना चाहिए। जो रुद्र बनना चाहता है, उसे 'ॐ नम:' मन्त्र का जप करना चाहिए। तब उसे सर्वोत्तम फल की प्राप्ति होगी।

इसके अतिरिक्त एक और मन्त्र है। 'तद् विष्णो: परमं पदम्' इत्यादि। विष्णु वह है जो समस्त विश्व में व्याप्त है। उसका लोक जो आकाश की भाँति है, 'परमं पदम्' कहलाता है। 'सूर्य:' का अर्थ उन विद्वानों से है जो वास्तविकता को अर्थात् ब्रह्मा इत्यादि

को जान गये हैं। विष्णु के उस परम पद का प्रत्येक जीव के अन्तर में निवास है। निवास का अर्थ है—'वसति'। इसीलिए वह 'वासुदेव' कहलाते हैं। श्री वासुदेव का शक्ति-सम्पन्न द्वादशाक्षरी मन्त्र 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' सब-कुछ है। वह व्यक्ति को सर्व पाप-तापों से मुक्त करने में समर्थ है। इस मन्त्र का ज्ञाता उस ब्रह्म पुरुष तक पहुँच जाता है जो अ, उ और म् —इन तीन अक्षरों के प्रणव का साकार रूप है।

इसके अतिरिक्त एक अन्य शक्तिशाली मन्त्र 'हंस सुचिशत' इत्यादि है। यह सूर्यदेव का महान् मन्त्र है। और एक अन्य जानने योग्य मन्त्र 'गणानां त्वा' है। यह गणपति का मन्त्र है। जो इसका ज्ञान प्राप्त कर लेता है तथा शिव, विष्णु, सूर्य और गणपति मन्त्रों का जप करता है, उसे त्रिपुरदेवी का साक्षात्कार प्राप्त होगा।

गायत्री के चार पाद हैं। प्रात:काल वह 'गायत्री' कहलाती है, अपराह्न में वह 'सावित्री' नाम से जानी जाती है, सायंकाल में उसे 'सरस्वती' कहते हैं। जब चतुर्थ पाद में होती है, तो उसे सदा अजपा कहते हैं। इस देवी का 'अ' से 'क्ष' तक पचास अक्षरों का स्वरूप है। इस रूप में देवी द्वारा समस्त शास्त्र तथा सम्पूर्ण लोक आच्छादित हैं। उन देवी को बारम्बार प्रणाम है।

अत: जो भक्त त्रिपुरदेवी की इन मन्त्रों सहित उपासना करता है, वह सत् स्वरूप परमात्मा का सत्य द्रष्टा हो जाता है। तब वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। प्रत्येक को इसका भली-भाँति ज्ञान होना चाहिए।

अब हम त्रिपुर-उपासना के कर्मकाण्ड की व्याख्या करेंगे। यह शक्ति अथवा आदि माया परम ब्रह्म को निर्दिष्ट करती है। वह ब्रह्म पराविद्या है और परमात्मा नाम से जाना जाता है। यह परब्रह्म ही सुनने वाला, जानने वाला, देखने वाला, निर्देशक, अनुभव करने वाला और परम पुरुष है जो सब प्राणियों का आत्मा हो कर उनके भीतर निवास करता है। यही जानना आवश्यक है। यहाँ न कोई जगत् है, न ही अजगत् है; न भगवान् है, न भगवान् का अभाव है; न प्राणी है, न ही प्राणी का अभाव है; न ब्राह्मण है, न ही अब्राह्मण है; इस प्रकार निर्वाण उद्भासित होता है जो पर ब्रह्म है।

चिन्तन करने वाला मन बद्ध कहलाता है। जो कुछ भी चिन्तन नहीं करता, वह मुक्त कहा जाता है। ऐसे मन के द्वारा ही ब्रह्म का ज्ञान हो सकता है। अत: प्रत्येक व्यक्ति को विषय-चिन्तन से मन को मुक्त रखना चाहिए।

जब तक मन विचारों से पूर्णतया रिक्त नहीं हो जाता, व्यक्ति को प्राण-नियन्त्रण का प्रयास करना चाहिए। यह शाश्वत ज्ञान है। अन्य सब-कुछ मात्र व्यर्थ पुस्तकीय ज्ञान है।

परब्रह्म में विचार तथा अविचार में कुछ भेद नहीं है। वहाँ सब एक-समान है। वहाँ न कोई विचार है, न ही विचार करने वाला।

इस प्रकार अन्ततः भक्त को धीरे-धीरे जान लेना चाहिए कि ब्रह्म उसका अपना निज स्वरूप ही है। तब वह आनन्दपूर्ण मोक्ष को प्राप्त होगा।

यही परम सत्य की व्याख्या है। तब न कोई मोक्ष का आकांक्षी रहता है, न ही मुक्त रहता है, न वैराग्य शेष रहता है, न ही साधना, न ही कोई विनाश रहता है।

ब्रह्म दो हैं—एक शब्द ब्रह्म और एक परब्रह्म। जो शब्द ब्रह्म की प्रवीणता प्राप्त कर लेता है, वह परम-ब्रह्म तक पहुँच जाता है। जो यह समस्त ज्ञान प्राप्त कर लेता है, उसे ज्ञान-प्राप्ति के उपरान्त उन पुस्तकों को उसी प्रकार त्याग देना चाहिए जैसे अनाज प्राप्त करने के लिए भूसे को फेंक दिया जाता है।

इस प्रकार परमब्रह्म-पद की व्याख्या की गयी। जो इस महाविद्या का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वह सबके लिए उपास्य हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। यह एक महाउपनिषद् है।

रुद्र उपनिषद्

अब मैं उस परम ब्रह्म के पवित्र स्वरूप की शरण लेता हूँ जो रुद्रहृदय उपनिषद् नामक विद्या द्वारा जाने जाते हैं।

एक बार श्री शुकदेव जी अपने हृदय में श्री महादेवरुद्र के पावन स्वरूप को नमन करते हुए, भस्म और रुद्राक्ष धारण करके 'तारसार महावाक्य-मन्त्र' का जप मन में करते हुए, अपने पिता श्री व्यास महर्षि के पास गये और इस प्रकार प्रश्न किया :

प्रभो, समस्त देवताओं में भगवान् कौन है? और सबका वास किसमें है? किस देव की उपासना करने से समस्त देवता प्रसन्न होंगे ?

यह प्रश्न सुन कर व्यास जी ने इस प्रकार उत्तर दिया :

भगवान् रुद्र में सब देवता निवास करते हैं। सब देवता शिव स्वरूप ही हैं। रुद्र भगवान् के दक्षिण पार्श्व में सूर्य, चतुर्मुखी ब्रह्मा तथा तीनों अग्नियाँ हैं। वाम पार्श्व में श्री उमा देवी, विष्णु और सोम (चन्द्रमा) स्थित हैं।

उमा ही विष्णु है। विष्णु ही चन्द्रमा है। अतः जो विष्णु की उपासना करते हैं, वह शिव की उपासना है। और जो शिव की उपासना करते हैं, वह वास्तव में विष्णु की ही पूजा

करते हैं। जो भगवान् रुद्र से द्वेष और घृणा करते हैं, वे वास्तव में श्री विष्णु से ही घृणा करते हैं। जो भगवान् शिव के निन्दक हैं, वे वास्तव में श्री विष्णु के ही निन्दक हैं।

रुद्र जीव के उत्पत्तिकर्ता हैं और बीज का भ्रूण रूप भगवान् विष्णु हैं, शिव ही ब्रह्मा हैं, ब्रह्मा ही अग्नि हैं। रुद्र ही ब्रह्मा और विष्णु रूप हैं। यह सारा विश्व अग्नि और सोम से पूर्ण है। सृष्टि में जितने प्राणी पुलिंग रूप से हैं, वे सभी रुद्र हैं तथा स्त्रीलिंगात्मक समस्त जीव श्री भवानी देवी हैं। इस प्रकार जड-चेतन-मय सम्पूर्ण सृष्टि उमा और रुद्र रूप है। व्यक्त संसार भगवती उमा का और अव्यक्त संसार रुद्र का रूप है। उमा और शंकर दोनों के मिलने से विष्णु कहे जाते हैं।

अत: सबको श्री महाविष्णु को श्रद्धापूर्वक नमन करना चाहिए। वह आत्मा हैं। वह परमात्मा हैं। वह अन्तरात्मा हैं। ब्रह्मा अन्तरात्मा हैं, शिव परमात्मा हैं, विष्णु इस विश्व के शाश्वत आत्मा हैं। लोक-त्रय रूप विश्व की शाखाएँ पृथ्वी पर फैली हुई हैं। इसके अग्र भाग विष्णु, मध्य भाग ब्रह्मा और मूल भाग रुद्र हैं।

कार्य रूप विष्णु, क्रिया रूप ब्रह्मा और कारण रूप रुद्र हैं। इस प्रकार भगवान् रुद्र ने ही प्रयोजन के अनुसार अपने तीन रूप धारण कर लिये हैं।

रुद्र धर्म हैं, विष्णु संसार रूप हैं, ब्रह्मा ज्ञान रूप हैं। इसलिए जो ज्ञानी पुरुष रुद्र नाम का जप और कीर्तन करता है, सब पापों से छूट जाता है।

रुद्र पुरुष हैं और उमा स्त्री हैं। इस रूप-द्वय में भगवान् शिव को और भगवती उमा को नमस्कार है!

रुद्र ब्रह्मा हैं। उमा सरस्वती हैं। दोनों रूपों में उमा-महेश्वर को नमस्कार है!

रुद्र विष्णु हैं। उमा लक्ष्मी हैं। दोनों रूपों में दोनों को नमस्कार है।

सूर्य रुद्र हैं। उमा छाया हैं। उनके इन दोनों रूपों को नमस्कार है!

रुद्र चन्द्रमा हैं, उमा तारा हैं। उनके इन दोनों रूपों को नमस्कार है!

दिवस रूप रुद्र, रात्रि रूप उमा को नमस्कार है।

यज्ञ और वेदी रूप शिव और उमा को नमस्कार है!

अग्नि और स्वाहा रूप में रुद्र और उमा को नमस्कार है!

वेद रूप में रुद्र और शास्त्र रूप में उमा को नमस्कार है!

वृक्ष रूप में रुद्र और लता रूप में उमा को नमस्कार है!

सुगन्ध रूप में रुद्र और पुष्प रूप में उमा को नमस्कार है।

अर्थ रूप में रुद्र और शब्द रूप में उमा, दोनों को नमस्कार है!

लिंग और पीठ रूप में रुद्र और उमा दोनों को नमस्कार है!

इस प्रकार श्री रुद्र और उमा को इन मन्त्रों सहित पृथक्-पृथक् नमस्कार करना चाहिए। हे पुत्र शुक! इन श्लोकों के द्वारा तुम्हें उस परब्रह्म पर ध्यान करना चाहिए जो इन्द्रियातीत है, सत्-चित्-आनन्द स्वरूप है तथा मन, वाणी से अगोचर है। जो यह जान लेता है, उसे फिर और कुछ भी जानना शेष नहीं रहता; क्योंकि सभी कुछ उनका ही रूप है, उनसे भिन्न कुछ भी नहीं है।

परा और अपरा नाम की दो विद्याएँ हैं। यह साधक के लिए ज्ञातव्य हैं। चारों वेद और षडदर्शन, यह अपरा विद्या हैं। इनमें आत्म-विषय के अतिरिक्त अन्य सब ज्ञान भरा हुआ है। परन्तु जिसके द्वारा आत्मा का ज्ञान होता है, वह परा विद्या है। उसी में परम अविनाशी आत्म-तत्त्व है। वह दिखायी नहीं पड़ता, न ग्रहण किया जा सकता है। उसका नाम, रूप, गोत्रादि कुंछ नहीं है। उसके न नेत्र हैं, न कान, हाथ-पाँव भी नहीं हैं। वह विषयों से परे, नित्य, सूक्ष्मातिसूक्ष्म होने से सर्वगत और निर्विकार है। सबका आश्रय है, ज्ञानी पुरुषों के द्वारा वह जाना जाता है।

भगवान् शिव जिन्होंने परम ज्ञान-मार्ग के रूप में घोर तप किया, उन्हीं में से यह सम्पूर्ण जगत् की रचना हुई, जिसे समस्त जीव भोगते हैं। यह जगत् माया है। यह स्वप्न के समान प्रतीत होता है। सत्य के समान दिखायी पड़ने वाला यह संसार, रस्सी में सर्प के आभास के समान ब्रह्म में ही स्थित है। यही परम सत्य है। यथार्थ में कोई सृष्टि है ही नहीं। ब्रह्म अविनाशी और सत्य है। इस प्रकार जानने वाला पुरुष मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।

केवल ज्ञान से ही संसार का पाश छिन्न-भिन्न हो सकता है, कर्म से यह बन्धन नहीं कट सकता। अत: मुमुक्षु को ब्रह्मनिष्ठ एवं श्रोत्रिय गुरु की शरण लेनी चाहिए। वह गुरु उस शिष्य को आत्मा और ब्रह्म के एकत्व का ज्ञान कराने वाली परा विद्या सिखायेगा। अज्ञान अथवा अविद्या के बन्धन कट जाने पर शिष्य भगवान् सदाशिव की शरण में जाये; सत्य स्वरूप मोक्ष के आकांक्षी के लिए यही ज्ञातव्य है।

ब्रह्म रूप लक्ष्य के लिए प्रणव धनुष रूप और आत्मा बाण की भाँति है। बाण के सदृश्य ही आत्मा को ब्रह्म के साथ एक हो जाना चाहिए।

किन्तु धनुष, बाण और लक्ष्य—ये तीनों की सदाशिव से भिन्न नहीं हैं। जिस परमात्मा के परम धाम में चन्द्र, सूर्य और सितारे भी नहीं होते, जहाँ वायु तथा अन्य देव

गण भी पहुँच नहीं पाते, वहाँ वही परमात्मा साधक द्वारा चिन्तन किये जाने पर अपने निर्मल और निर्गुण रूप से सदा-सर्वदा प्रकाशमान होते हैं।

इस शरीर रूपी वृक्ष पर जीव और परमात्मा, दो पक्षियों का निवास है। जीव अपने कर्मों का फल खाता (भोगता) है; किन्तु परमात्मा इससे अलिप्त रहता है, वह साक्षी स्वरूप में प्रकाशित रहता है। वह किसी रूप में कर्ता नहीं है। वह अपनी माया के द्वारा जीव का रूप ले लेता है। यह भिन्नता वास्तव में ऐसे ही ही है जैसे घटाकाश की परम आकाश से है, वास्तव में दोनों में कोई भिन्नता है ही नहीं। एकमात्र शिव ही है, अद्वैत और परिपूर्ण,किसी भी प्रकार का कोई भेद है ही नहीं।

ऐसा ज्ञान जब हो जाता है, तो मनुष्य शोक और मोह से मुक्त हो जाता है, माया का आवरण छिन्न-भिन्न हो जाता है और अद्वैत परमानन्द की प्राप्ति सहज ही हो जाती है। विचार करें कि आप ही समस्त विश्व के आधार हैं, आप एकमेव, केवल, सच्चिदानन्दघन हैं। सब लोग यह सत्य नहीं समझ पाते। जो माया से मुक्त हैं, वही इस रहस्य को जान पाते हैं। ऐसे सिद्ध पुरुष कहीं आते-जाते नहीं। घटाकाश की परमाकाश के साथ एकता की भाँति वे परब्रह्म के साथ स्वयं ब्रह्म हो जाते हैं।

जो इस रहस्य का ज्ञाता है, वह वास्तव में मुनि है, स्वयं परम ब्रह्म है, सच्चिदानन्द है, वही परम शान्ति को प्राप्त है।

अध्याय ११

शैव आचार्य

अप्पर अथवा तिरुनावुकरसर

अप्पर चार तमिल शैव समय परमाचार्यों में से एक हैं। वह सम्बन्धर के समकालीन थे। वह तमिलनाडु में कुडलूर जिले में तिरुअमुर के एक (वेलाला) किसान थे। उनका जन्म पुगलनार और मदिनियार के घर हुआ। माता-पिता ने उन्हें मरुलनीक्कियर (अन्धकार अथवा अज्ञान को दूर करने वाला) नाम दिया। अप्पर का अर्थ है पिता। मरुलनीक्कियर को अप्पर नाम सर्वप्रथम सम्बन्धर द्वारा दिया गया था। उसने अपने परस्पर के अनेक सम्मिलनों में से ही एक बार के मिलन में इन्हें अप्पर कह कर बुलाया था। उनके आत्मोत्तेजक और श्रेष्ठ सम्बोधन गीतों ने उन्हें तिरुनावुक्करसर अथवा वागीश उपाधि से विभूषित करवा दिया। वह प्रभु-प्रेरित व्यक्ति थे। विभिन्न देवालयों की तीर्थयात्रा के समय उन्होंने प्रभु को सम्बोधित करके अनेक अत्यन्त मनमोहक भजनों की रचना की। सातवीं सदी के मध्य वह अत्यधिक प्रसिद्ध सन्त कवि हुए।

तिलकवतियार अप्पर की बड़ी बहन थी। उनकी सगाई कल्लिपहैयार नामक एक व्यक्ति से हुई थी जो पल्लव राजा की सेना में सेनापति था। कल्लिपहैयार को उत्तरी भारत की ओर से आने वाले किसी आक्रमणकारी के साथ युद्ध करना पड़ा, जहाँ युद्धभूमि में वीरगति को प्राप्त हो गये। तिलकवतियार के माता-पिता की भी मृत्यु हो गयी थी। कल्लिपहैयार की मृत्यु का समाचार जब तिलकवतियार ने सुना, तो उसने तुरन्त चिता में साथ ही सती होने का निश्चय कर लिया। मरुलनीक्कियार को जब अपनी बहन के इस इरादे का पता चला, तो वह तत्काल उसके पास गये और उसके पैरों में गिर कर कहने लगे—"मैं केवल आपके सहारे ही जीवित हूँ, यदि आप अपना जीवन समाप्त करने लगेंगी, तो मैं उससे पहले ही प्राण त्याग दूँगा।" तिलकवतियार का हृदय यह सुन कर द्रवित हो गया। उसने अपना निर्णय बदल दिया और निस्सहाय छोटे भाई का सहारा बनने तथा तपोमय जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया।

अप्पर धर्म-परिवर्तन करके जैन धर्मावलम्बी हो गये। उन्होंने समस्त जैन धर्म ग्रन्थों का अध्ययन किया। वह पाटलीपुत्र चले गये और जैन धर्म ग्रन्थों के प्रकाण्ड पण्डित होने के कारण वहाँ धर्मगुरुओं में से एक हो गये।

अप्पर की बहन को जब उनके जैन धर्मावलम्बी हो जाने का ज्ञान हुआ, तो वह दुःख से अत्यधिक आक्रान्त हो गयी। वह अपना जन्म-स्थान छोड़ कर निकट के गाँव तिरु आदिग चली गयी। वहाँ शिव मन्दिर में ध्यान-प्रार्थना में समय व्यतीत करने लगी। वह भाई के प्रत्यावर्तन के लिए भगवान् से प्रार्थना करती रहती थी।

अप्पर ऐसे भयंकर उदरशूल से ग्रसित हो गये, जो किसी प्रकार भी ठीक नहीं हो रहा था। वह जैन पोशाक तथा पात्र एक ओर फेंक कर अपनी बहन के पास चले गये। उसने उनके मस्तक पर भस्म लगायी तथा उन्हें शिव मन्दिर में ले गयी और वहाँ भगवान् के सम्मुख दण्डवत् प्रणाम तथा पूजा करने के लिए कहा। अप्पर ने इसी प्रकार किया। भयंकर उदरशूल उसी क्षण काफूर हो गया। उसने भगवान् शिव की स्तुति की।

जैनी आध्यात्मिक गुरु ने पाटलीपुत्र में अप्पर के पलायन की सूचना जैन राजा कडवर को दी। कडलूर उस समय पल्लव राजा कडवर द्वारा शासित था। आध्यात्मिक गुरु ने राजा को अप्पर को उत्पीड़ित करने के लिए उकसाया।

अप्पर ने पल्लव राजधानी की ओर प्रस्थान किया और राजा के सम्मुख उपस्थित हुए। अप्पर को भिन्न-भिन्न ढंगों से उत्पीड़ित किया गया। उन्हें प्रज्वलित चूनाभट्ठी में फेंक दिया गया। उन्हें बलपूर्वक विषपान कराया गया। उन्हें मारने के लिए एक हाथी से कुचलवाया गया। एक भारी पत्थर के साथ बाँध कर उन्हें समुद्र में फिंकवा दिया गया। किन्तु प्रत्येक बार भगवान् ने उनकी रक्षा की। वे जीते-जागते तिरुप्पतिरुपुलियूर पहुँच गये।

पल्लव राजा अप्पर की महानता को पहचान गये और उनके चरणों में गिर पड़े। उन्होंने भी जैन धर्म का त्याग कर शैवमत को गले लगा लिया। उन्होंने तिरुवदिगै में एक अत्यन्त भव्य शिव मन्दिर गुणतरवीच्चरम् बनवाया।

इसके पश्चात् अप्पर विभिन्न पवित्र स्थलों के तीर्थाटन के लिए निकल पड़े। उन्होंने चिदम्बरम्, सीरकालि तथा अन्य कई स्थलों के दर्शन किये तथा भगवान् शिव की प्रशंसा में तेवारम् (भक्ति गीतों) की रचना करके गाया।

अप्पर ने उस समय तिंगलूर में सन्त अप्पूदि अडिगल से भी भेंट की। उन्होंने अप्पूदि के पुत्र को, जिसे कोबरा सर्प ने डस लिया था, पुनर्जीवित किया।

तत्पश्चात् अप्पर ने तिरुवेन्नैनेलूर, तिरुवामत्तूर, तिरुकोयिलूर तथा तिरुपेन्नाडकम् इत्यादि पवित्र स्थानों के दर्शन किये तथा वहाँ भगवान् शिव की उपासना की। अन्ततः वह तिरुतुंगानैमडम् पहुँचे और भगवान् से प्रार्थना की—"हे शिवशंकर! हे अर्धनारीश्वर! हे सबके जन्म दाता और प्राण हर्ता! मैं जैनधर्मियों द्वारा स्पर्शित अपने इस शरीर को रखना नहीं चाहता। आप मेरी देह पर अपने त्रिशूल और नन्दी का चिह्न अंकित कर दें।" उन्होंने एक पदिगम (भजन) गाया। तत्काल भगवान् शिव की कृपा से शिव गण उपस्थित हो गये और अप्पर के कन्धे पर त्रिशूल और नन्दी की मोहर लगा दी।

तब अप्पर सम्बन्धर से मिलने के लिए सीरकालि की ओर चले। वे सम्बन्धर के चरणों में गिर पड़े। सम्बन्धर ने इस वेलाला सन्त को, "मेरे प्यारे अप्पर !" कह कर सम्बोधित किया।

एक बार सम्बन्धर पालकी में बैठ कर अप्पर से मिलने के लिए तंजोर जिले के तिरुप्पुन्दुरुत्ति में गये। अप्पर उनसे पूर्व ही वहाँ पहुँच गये और स्वयं पालकी उठा कर चलने लगे। सम्बन्धर ने पूछा—"अप्पर कहाँ हैं?" अप्पर ने उत्तर दिया—"मैं यहाँ हूँ, पालकी को उठाये हुए हूँ।" सम्बन्धर तत्क्षण पालकी से नीचे उतर कर उनके गले लग गये और उनके नेत्रों से प्रेमपूर्ण अश्रु प्रवाहित होने लगे।

अप्पर तिरुचट्टिमुट्रम् गये। वहाँ उन्होंने एक पदिगम (भक्तिमय पद) गाया और कहा—"हे प्रभु, मेरे शरीर छोड़ने से पहले, अपने पद-कमल मेरे सिर पर रख दें।" उन्हें आकाशवाणी सुनायी दी—"तिरुनल्लूर पहुँच जाओ।" अप्पर ने ऐसा ही किया, वह तिरुनल्लूर पहुँच गये। भगवान् शिव ने अपना चरण अप्पर के शीश पर रख दिया। अप्पर धरती पर लोट गये, उनका हृदय अवर्णनीय आनन्द से आप्लावित हो गया।

तब अप्पर तिरुवंबर, तिरुकडवूर और मिललै गये। मिललै में भयंकर अकाल पड़ा हुआ था। वहाँ शिव-भक्तों को भूख से तड़पते हुए देख कर अप्पर और सम्बन्धर के हृदय व्याकुल हो गये। भगवान् शिव ने उन दोनों को स्वप्न में दर्शन दिये और कहा—"दुःखी मत होओ, मैं तुम्हें स्वर्ण-मुद्राएँ दूँगा।" उन्हें नित्य प्रातः मन्दिर में स्वर्ण मुद्राएँ पड़ी मिलने लगीं और उन्होंने लोगों को राजसी भोजन खिलाया।

अप्पर और सम्बन्धर ने तंजोर जिले के वेदारण्यम् मन्दिर के दर्शन किये। यहाँ एक प्राचीन शिव मन्दिर था, जिसके पट दीर्घकाल से बन्द पड़े थे। पहले वहाँ स्वयं वेद भगवान् आ कर भगवान् शिव की पूजा करते थे, किन्तु अब उन्होंने आना छोड़ दिया था, क्योंकि लोगों ने जैन धर्म के प्रभाव में आ कर वेद पढ़ने-पढ़ाने की उपेक्षा कर दी थी। सम्बन्धर ने अप्पर से कहा—"आइए और अपने भक्तिपद गायें जिससे कि मन्दिर के पट खुल जायें।"

अप्पर ने गाया और द्वार खुल गये। तब फिर सम्बन्धर ने गाया जिससे कि द्वार पुन: बन्द हो जायें, और ऐसा ही हुआ।

एक बार तीर्थयात्रा के समय रास्ते में अप्पर को बहुत भूख लगी। भगवान् शिव ने मार्ग में एक तालाब और बगीचे की रचना कर दी और उन्हें भोजन भी दिया।

अप्पर ने कैलास पर्वत जाने के लिए यात्रा प्रारम्भ की। यात्रा अत्यन्त कठिन थी, उनके पाँव में भयंकर घाव हो गये। उन्हें आकाशवाणी सुनायी दी। यह भगवान् शिव की आवाज थी—"हे अप्पर, उठो! सरोवर में स्नान कर लो। तुम्हें तिरुवैयार में ही मेरे और कैलास पर्वत के दर्शन होंगे।" अप्पर ने सरोवर में स्नान किया और बाहर निकले, तो कावेरी के तट पर तिरुवैयार के एक मन्दिर में थे। बाहर उन्हें सर्वत्र भगवान् शिव और माँ शक्ति ही दिखायी दिये। वह मन्दिर के भीतर प्रविष्ट हुए और वहाँ उन्हें कैलास पर्वत तथा कैलास पर्वत के भगवान् शिव के दर्शन हुए। अप्पर यह अद्भुत दृश्य देख कर आनन्दविभोर हो गये तथा पदिगम (पद) गाने लगे।

अन्तत: वह तिरुवलूर के निकट पुम्पुकलर में पहुँचे तथा अपने जीवन के अन्तिम दिन उन्होंने वहीं व्यतीत किये। यहाँ भगवान् ने उनकी महानता लोगों को दर्शाने के लिए उनकी परीक्षा ली और जब वह मन्दिर में सेवारत थे तो उनके पाँव तले हीरे, जवाहरात तथा स्वर्ण प्रकट कर दिया। अप्पर ने उन्हें पत्थर-कंकड़ की भाँति एक ओर फेंक दिया। अप्सराओं ने भी उनके समक्ष प्रकट हो कर लुभाने का प्रयत्न किया, किन्तु अप्पर अपने ध्यान में अबाध मग्न रहे। अन्तत: ८१ वर्ष की आयु में आप भगवान् शिव की परम ज्योति में लीन हो गये।

(२)

अप्पर ने अपने भक्तिमय पदों के द्वारा शैव सिद्धान्त दर्शन की विचारधारा की नींव रखी। अप्पर के काव्यगीत कल्पना-शक्ति, आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि, धार्मिक भावनाओं तथा श्रेष्ठ आध्यात्मिक अनुभूति से आपूरित हैं।

अप्पर सम्बन्धर से अधिक विद्वान् थे। उनका व्यक्तित्व अत्यन्त सशक्त था। उन्होंने एक अनुकरणीय शिव-भक्त का जीवन व्यतीत किया। उन्होंने जैन धर्म का प्रभाव समाप्त कर दिया। उन्होंने सदैव शिवपंचाक्षर मन्त्र का गुणगान किया। उन्होंने कहा—"ब्राह्मणों का विलक्षण आभूषण है षडंगों सहित वेद तथा शैवों का विलक्षण आभूषण पंचाक्षर है।" उनके अनुकरणीय जीवन, सुमधुर काव्य, विषद विद्वत्ता तथा उत्कट भक्ति भावना ने असंख्य लोगों को आकर्षित किया। उनके अगणित भक्त तथा शिष्य थे। उनका प्रभाव

अकथनीय था। अप्पर की कृतियों में से, उनकी तीन सौ के लगभग काव्य रचनाएँ उपलब्ध हैं जो तीन पुस्तकों के रूप में प्राप्त हैं। इनकी बारह पुस्तकें तमिल शैव भक्ति काव्य की हैं जो तिरुमुरै नाम से जानी जाती हैं।

अप्पर का कथन है—"सब-कुछ भगवान् शिव का प्रकटीकृत स्वरूप है। शिव नारायण, ब्रह्मा, चारों वेद, पवित्रतम, पुरातन और परिपूर्ण हैं। यद्यपि शिव ये सब-कुछ हैं, तथापि वे इनमें से कुछ भी नहीं हैं। वह नाम-रूप से रहित, जन्म-मृत्यु और रोगों से रहित हैं। वह सर्वातीत और सर्वव्यापी, एक ही साथ हैं।

"भगवान् शिव का प्रेम अनुभव करना और फिर अभिव्यक्त भी करना चाहिए। गीत गायें, प्रार्थना करें, पूजा करें, अश्रु बहायें, नृत्य करें! भगवान् शिव गीत का संगीत और लय हैं, फल की मिठास हैं, मन का चिन्तन हैं, आँखों की चमक हैं। वे न पुरुष हैं, न ही नारी हैं। वे अपरिमेय हैं।

"इन्द्रियों को नियन्त्रित करें। नियमित ध्यान करें। चरियाई, क्रियाई, योग और ज्ञान का अभ्यास करें। वैराग्य भाव विकसित करें। तीनों शरीरों से अतीत जायें। आत्मा को परमात्मा शिव के साथ संयुक्त करें। आपको परम आनन्द और अमरत्व प्राप्त होगा। आप भगवान् शिव के दर्शन प्राप्त कर सकते हैं—यदि आप अपने देह रूपी गृह के भीतर, मन के दीपक को, ध्यान के घृत से भर कर, जीवन की बाती से, ज्ञान के प्रकाश में उनको निहारने का अभ्यास करेंगे तो!

"सत्य का हल चलायें। ज्ञान-प्राप्ति की इच्छा के बीज बोयें। असत्य के झाड़-झंखाड़ को निकाल फेंकें। धैर्य के जल से मन का सिंचन करें। आत्म-विश्लेषण और अन्तर्निरीक्षण द्वारा भीतर झाँकते हुए अपने कामों पर दृष्टि रखें। यम और नियमों अथवा सदाचार पालन की बाड़ बनायें। आप शीघ्र ही शिवानन्द अर्थात् परम आनन्द की प्राप्ति करेंगे।

"अपने शरीर को भगवान् शिव का मन्दिर समझें, मन को उपासक, सत्य को पूजा में अनिवार्य शुद्धि और पवित्रता, मन रूपी आभूषण को लिंग, प्रेम को घी, दूध इत्यादि पूजन-सामग्री। इस प्रकार भगवान् शिव की आराधना करें। मन की एकाग्रता और पंचाक्षर पर ध्यान के बिना भगवान् की प्राप्ति नहीं हो सकती।"

आप सब अप्पर के उपदेशों और शिक्षाओं का अनुसरण करके शिव-पद की, परम आनन्द के नित्य धाम की प्राप्ति करें!

तिरुज्ञान सम्बन्धर

सम्बन्धर का जन्म तंजोर जिले में चिदम्बरम् के निकट सीरकालि में ब्राह्मण दम्पति शिवपादहृदयर् एवं भगवती के घर हुआ।

एक बार शिवपादहृदयर् और भगवती स्नान के लिए सरोवर पर गये। बालक भी माता-पिता के संग चला गया। वे बालक को सरोवर-तट पर बैठा कर स्नान के लिए जल के भीतर उतर गये। माता-पिता को न देख कर बालक "अप्पर!" कह कर रोने लगा। माता-पिता को बालक की आवाज सुनायी नहीं दी। भगवान् शिव और पार्वती को उसकी चीख सुनायी पड़ी। वे दोनों शिशु के समक्ष प्रकट हो गये। पार्वती ने बालक को दूध दिया। बालक ने दूध के साथ ही दिव्य ज्ञान का दुग्ध पान किया। उसी क्षण से वह विभिन्न शिव मन्दिरों में भगवान् शिव का स्तुति-गान करने लगे। उन्होंने भावोद्दीपक और उत्कृष्ट भक्ति गीत तेवारम् गाये। यह घटना उस समय घटी, जब यह अभी तीन वर्ष के ही बालक थे।

माता-पिता जब स्नान करके बालक के निकट आये, तो उसके मुख में दूध लगा हुआ था और नेत्रों से अश्रु टपक रहे थे। पिता ने पूछा—"मेरे बच्चे, तुम्हें दूध किसने दिया?" बालक के मुख से गीत की धारा फूट पड़ी, जिसमें शिव-पार्वती की अपार अनुकम्पा का विषद वर्णन करते हुए समस्त घटना बतायी गयी थी। माता-पिता का हृदय आनन्द से आप्लावित हो गया। उन्होंने इसका नाम तिरुज्ञान सम्बन्धर रख दिया, क्योंकि उन्हें भगवान् की कृपा से दिव्य ज्ञान की उपलब्धि हुई थी। यह पिल्लैयर नाम से भी जाने जाते थे।

तब सम्बन्धर तिरुकोलक्का की ओर चल दिये। वहाँ भगवान् शिव के सम्मुख भजन गाया। भगवान् ने इन्हें स्वर्ण करताल उपहार दिया

तिरुएरुक्कत्तंपुलियार में एक शिव-भक्त था। उसका नाम तिरुनीलकण्ठ याल्पनार था। वह याल् (वीणा) वाद्य अत्यन्त निपुणता से बजाता था। वह सम्बन्धर के प्रति अपना सम्मान प्रकट करने के लिए सीरकालि गया। सम्बन्धर उसे शिव मन्दिर ले गये और वहीं पर उसका संगीत सुना। याल्पनार ने सम्बन्धर से अनुनय करते हुए कहा—"कृपया मुझे सदा के लिए अपने साथ रख लें, मैं आपके पदिगमों के साथ अपना याल् बजाया करूँगा। मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लें।" सम्बन्धर मान गये। तब सम्बन्धर, उनके माता-पिता और याल्पनार चिदम्बरम् पहुँचे और भगवान् नटराज की उपासना की। वहाँ एक दिन सम्बन्धर को तीन सहस्र ब्राह्मणों में, तीन सहस्र शिव गणों के दर्शन हुए।

सम्बन्धर को अरत्तुरै में भगवान् शिव की पूजा करने की इच्छा हुई। वह पाँव-पयादे ही चले। अधिक थक जाने के कारण वह रास्ते में मारनपाडि में रात्रि में रुक गये। क्योंकि वह अभी छोटे बालक ही थे, इसलिए अधिक चलने से उनके पाँवों में घाव हो गये। अरत्तुरै के भगवान् ने पुजारियों को स्वप्न में दर्शन दिये और कहा—"सम्बन्धर मेरे दर्शनार्थ आ रहा है, मन्दिर के भीतर मोतियों वाला छत्र और मोती के परदे वाली पालकी पड़ी है, वह ले जा कर उसे दो।" पुजारी उठ गये और मन्दिर में जा कर देखा, तो स्वप्न वाली दोनों वस्तुओं को वहाँ पड़े पाया। उन्होंने दोनों चीजें ले जा कर मारनपाडि में सम्बन्धर को दीं, और साथ ही भगवान् के आदेश को भी उन्हें बताया। सम्बन्धर को पहले से ही ज्ञात था, क्योंकि भगवान् ने उन्हें भी स्वप्न में यह सब बता दिया था।

फिर सम्बन्धर का पुजारियों ने उपनयन-संस्कार किया। सम्बन्धर ने वेद-वेदांगों का अध्ययन नहीं किया था, किन्तु उन्होंने साथ-साथ वेदमन्त्रोच्चारण किया और उसकी व्याख्या भी की। पुजारी आश्चर्य से हतप्रभ हो गये।

अप्पर ने सम्बन्धर की महिमा सुनी। वह चिदम्बरम् से सीरकालि सम्बन्धर के प्रति अपना सम्मान अभिव्यक्त करने के लिए आये। सम्बन्धर उनका स्वागत करने आगे तक आये। दोनों परस्पर अत्यन्त स्नेहपूर्वक मिले। अप्पर उनके घर कई दिनों तक रुके।

मलाया देश की राजकन्या किसी असाध्य रोग से पीड़ित थी। राजा सब प्रकार की चिकित्सा करवा चुका था। अन्ततः वह उसको तिरुपास्सिलसिरमम मन्दिर ले गया और वहाँ भगवान् के सम्मुख रख दिया। सम्बन्धर मन्दिर में आये और देखा कि राजकन्या अचेतावस्था में पड़ी हुई है। उनका हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने एक पदिगम् (भक्तिपद) गाया और भगवान् की पूजा की। प्रत्येक बन्द की अन्तिम पंक्ति थी—"क्या भगवान् के लिए इस कन्या को इतना कष्ट देना उचित है।" राजकन्या तुरन्त अच्छी-भली हो गयी। वह उठ खड़ी हुई और सम्बन्धर के चरण-कमलों में प्रणाम किया।

तब सम्बन्धर तिरुपट्टीस्वरम् मन्दिर की ओर चले। अत्यधिक ग्रीष्म ऋतु का दिन था। तिरुपट्टीस्वरम् के भगवान् ने अपने गणों द्वारा, उनकी गरमी से रक्षा करने के लिए मोतियों की पालकी भेजी।

सम्बन्धर ने एक पदिगम गा कर तिरुवाडुतुरै के प्रभु से एक सहस्र स्वर्णमुद्राएँ प्राप्त कीं। इस पद के प्रत्येक बन्द की अन्तिम पंक्ति में वह पूछते हैं—"मुझ पर शासन करने की यही विधि है क्या? क्या आपके पास मुझे देने के लिए कुछ भी नहीं है? क्या आपकी कृपा-दृष्टि मुझ पर इसी भाँति होगी? मुझ पर दया करने का यही ढंग है क्या?" उन्होंने स्वर्णमुद्राएँ अपने पिता को दे दीं।

सम्बन्धर तब तिरुमरुगल की ओर बढ़े। वहाँ एक यात्री को सर्प ने डस लिया था। उसकी पत्नी, पति की मृत्यु से शोकातुर हो विलाप कर रही थी। सम्बन्धर ने करुणाजनक स्वर में पद गाया। यात्री पुनर्जीवित हो गया।

तब सम्बन्धर तिरुवीलिमिललै नामक स्थल पर पहुँचे। वहाँ भयंकर अकाल पड़ा हुआ था। उन्होंने भगवान् की स्तुति की। उन्हें प्रतिदिन भक्त जनता में भोजन-सामग्री बाँटने के लिए पर्याप्त धन मन्दिर में ही मिललै के भगवान् ने प्रदान किया।

पाण्ड्या राजा के मन्त्री कुलक्सिरैयार ने सम्बन्धर को महल में आमन्त्रित किया। वह शिव-भक्त था। रानी मंग्यरकरसि भी शिव-भक्त थी। सम्बन्धर मदुरै गये और वहाँ भगवान् की पूजा की।

जैन धर्मावलम्बियों ने ईर्ष्यावश सम्बन्धर के शिविर को आग लगा दी। सम्बन्धर ने एक पद गाया। अग्नि शमित हो गयी, किन्तु पाण्ड्या राजा को तीव्र ताप ने ग्रसित कर लिया। चिकित्सक और जैन, कोई भी राजा का उपचार करने में सफल न हुए। राजा ने सम्बन्धर से प्रार्थना की। सम्बन्धर ने पवित्र भस्म की प्रशंसा में एक पद गाया और वह भस्म राजा के शरीर पर लगा दी। राजा उसी समय ठीक हो गया।

तब यह निर्णय किया कि सम्बन्धर और जैन, दोनों को ही अपने लेखन-कार्य अग्नि में डालने होंगे और यदि सम्बन्धर का धर्म अधिक अच्छा है, तो उनके द्वारा अग्नि में डाले गये ताड़-पत्र जलेंगे नहीं। ऐसा ही हुआ, सम्बन्धर परीक्षा में सफल हो गये।

उसके पश्चात् एक परीक्षा और थी। जैन कट्टरपन्थियों ने कहा कि जो सच्चा धर्म होगा, उसकी ताड़-पत्रों पर लिखित कृतियाँ वैगै नदी की धारा के विपरीत प्रवाहित होनी चाहिए। मन्त्री ने प्रश्न किया—"जो पराजित होगा, उसके लिए क्या दण्ड रहेगा?" जैन पन्थियों ने कहा—"उसे मृत्यु-दण्ड दिया जायेगा।" जैन कट्टरपन्थियों ने एक ताड़-पत्र नदी में डाला, वह धारा के प्रवाह के साथ बह गया। सम्बन्धर ने एक ताड़-पत्र पर अपने पदों में से एक पद लिख कर नदी में छोड़ा, यह धारा के विपरीत प्रवाहित हो कर तिरुवेडंगम नामक स्थान पर पहुँच गया। सम्बन्धर ने ताड़-पत्र को रोकने के लिए एक पद गाया, वह रुक गया। मन्त्री ने पत्र उठाया और राजा को दिखाया।

कुछ कट्टरपन्थी जैनों को फाँसी पर लटका दिया गया। शेष ने शैव धर्म अपना लिया। सम्बन्धर राजा-रानी के साथ मदुरै गये और वहाँ भगवान् की स्तुति में पद गाये।

सम्बन्धर तिरुकोल्लम्पुदूर में, वहाँ के भगवान् शिव के दर्शन करने के लिए गये, किन्तु वहाँ नदी में बाढ़ आयी हुई थी। नाविकों ने नाव द्वारा नदी पार करने का विचार त्याग

दिया और तट पर ही नाव बाँध कर कहीं चले गये। सम्बन्धर ने नाव खोल ली और पद-गान करते हुए अपने साथियों के ले कर नदी के दूसरी ओर पहुँच गये।

सम्बन्धर के अनुयायी भक्त जन यात्रा के समय विजय का तूर्य-वादन करते हुए जाते थे। यह देख कर बौद्ध उनसे ईर्ष्या करने लगे। उन्होंने अपने आध्यात्मिक गुरु बुद्धनन्दी को सूचना दी। बुद्धनन्दी ने सम्बन्धर को वाद-विवाद करने के लिए आमन्त्रित किया।

सम्बन्धर के एक शिष्य सम्बन्धररनालयर, जो कि अपने गुरु के सभी पदों को लिपिबद्ध करता था, ने सम्बन्धर के एक पद को गाया और फिर कहा—''इस बुद्धनन्दी के शीश पर गाज गिरे!'' तत्काल ही बुद्धनन्दी के सिर पर गाज गिर पड़ी और उसका वहीं प्राणान्त हो गया। कुछ बौद्ध भाग खड़े हुए, शेष ने शैव धर्म को अपना लिया और मस्तक पर विभूति का लेपन कर लिया।

मयिलापुर में एक शिवनेसर चेट्टियार नामक शिव-भक्त रहता था। गहन तपस्या के पश्चात् उसके घर एक कन्या ने जन्म लिया, जिसका नाम उसने पूम्पावै रखा। ज्ञानसम्बन्धर की प्रशंसा सुन कर उसने मन में धारणा बना ली कि वह अपनी समस्त धन-सम्पदा और कन्या इस सन्त को अर्पित करेंगे। एक दिन जब पूम्पावै उपवन में पुष्प चयन कर रही थी, तो उसे भयंकर विषयुक्त सर्प ने डस लिया। उसी क्षण उसकी मृत्यु हो गयी। शिवनेसर ने उनकी अस्थियाँ एक घड़े में डालीं और उसे रेशमी वस्त्र से सुसज्जित करके कन्निकामडम में रख दिया। शिवनेसर ने सम्बन्धर को वहाँ आमन्त्रित किया। सम्बन्धर आये और कपालीश्वर भगवान् के दर्शन किये। भक्त-समूह ने उन्हें शिवनेसर की कन्या की मृत्यु के सम्बन्ध में बताया। सम्बन्धर ने शिवनेसर से वह अस्थि-राख युक्त घड़ा ले कर आने के लिए कहा। शिवनेसर तत्काल घड़ा ले आया। सम्बन्धर ने एक पदिगम् (दस पद) गाया। पूम्पावै अपार सौन्दर्य से युक्त कमल में से लक्ष्मी के समान घड़े में से प्रकट हो गयी। शिवनेसर का हृदय अपार आनन्द से भर गया। आकाश से देवताओं ने पुष्प-वर्षा की। तब सम्बन्धर सीरकालि चले गये।

ब्राह्मण सम्बन्धर के पास गये और कहा—''हे स्वामी, अब आपको किसी योग्य कन्या से विवाह करना ही होगा, जिससे कि वेदोक्त यज्ञ किये जा सकें।'' सम्बन्धर मान गया। पिता तथा ब्राह्मणों ने नम्बियाण्डार नम्बि की कन्या को दुल्हन के रूप में चयन किया। विवाहोत्सव नल्लूरपेरुमणम में करना निश्चित हुआ। सम्बन्धर ने अपनी चयनित दुल्हन के साथ मन्दिर में प्रवेश किया। जब वह भगवान् के निकट पहुँचे तो वह, उनकी होने वाली पत्नी तथा उनके सभी भक्त-अनुयायी भगवान् की परम ज्योति में लीन हो गये।

सम्बन्धर अपने पदिगमों में से एक में कहते हैं—''ओ मूर्ख प्राणी! दिनों को व्यर्थ व्यतीत न हो जाने दो। भगवान् नीलकण्ठ की सेवा करो। उनके गुणगान का श्रवण करो। उनके रूप का ध्यान धरो। सदैव पंचाक्षर जपो। शिव-भक्तों की संगति में रहो। उनका नाम आप और आपके बाल-बच्चों पर आने वाले भय और कष्टों को दूर कर देगा। भगवान् शिव की उपासना करो। वह आपको परम आनन्द और मोक्ष प्रदान करेंगे।''

सुन्दरमूर्ति

तमिलनाडु के नावलूर नगर में एक शडैयनार नाम के ब्राह्मण थे। वह अत्यन्त धर्मात्मा तथा शिव-भक्त थे। उनके एक अत्यन्त धर्मनिष्ठ पुत्र थे, जिनका नाम नम्बिआरुरर अथवा आलल सुन्दरर था। उन्हें सुन्दरमूर्ति नयनार नाम से भी जाना गया है।

सुन्दरमूर्ति नयनार एक महान् शिव-भक्त थे। यह चार शैव आचार्यों में से एक हैं। तिरुण्णैनल्लूर के भगवान् शिव एक वृद्ध ब्राह्मण के रूप में, उनके विवाह के दिन उनके समक्ष प्रकट हुए। उस वृद्ध ब्राह्मण ने कहा कि यह सुन्दरर मेरा दास है, अत: इसे मेरी सेवा करनी चाहिए। भगवान् का नाम तडुत्ताट्कोण्ड ईश्वरर है अर्थात् वह भगवान् जिन्होंने सुन्दरर को रोका और संसार से बचाया।

सुन्दरमूर्ति ने अनेकों मन्दिरों के दर्शन किये। वे अदिगै वीराट्टनम् गये। भगवान् शिव उनके सम्मुख प्रकट हुए और अपने चरण उनके सिर पर रख दिये। फिर सुन्दरर तिरुवारूर गये। भगवान् शिव ने उन्हें अपना मित्र बना लिया।

कमलिनि कैलास में उमादेवी की सेविका थी। उसने अपने हृदय में अलाला सुन्दरर के साथ विवाह करने की इच्छा रखी हुई थी, अत: उसे तिरुवारूर में जन्म ले कर संसार में आना पड़ा। उसका नाम परवै रखा गया। उसकी विवाह योग्य आयु हो गयी। तिरुवारुर के भगवान् ने भक्तों को स्वप्न में दर्शन दिये और कहा—''परवै और सुन्दरमूर्ति के विवाह का प्रबन्ध करो।'' भगवान् शिव ने परवै और सुन्दरमूर्ति को भी यह बता दिया। सुन्दरर ने परवै से विवाह किया और दोनों प्रसन्नतापूर्वक रहे।

तिरुवारुर में अकाल पड़ गया। भगवान् शिव ने सुन्दरमूर्ति को दर्शन दिये और उन्हें अनाज के ढेर प्रदान किये। इतनी अधिक मात्रा में अनाज को कहीं और ले जाना ही असम्भव था। सुन्दरमूर्ति ने भगवान् शिव को ही सहायता करने के लिए कहा। शिव गण प्रकट हुए और समस्त अनाज परवै के घर पहुँचा दिया गया।

जब सुन्दरर तिरुप्पगलूर में थे, तब उन्होंने अपनी पत्नी के लिए भगवान् से स्वर्णमुद्राएँ देने की प्रार्थना की और वह सिर के नीचे ईंट रख कर सो गये। जब वह सो कर उठे, तो देखा वह ईंट सोने की बन गयी थी। एक अन्य बार जब वह विरुद्धाचलम् की ओर जा रहे थे, तब भी उन्हें स्वर्ण प्राप्त हुआ। भगवान् के आदेश अनुसार उन्होंने इन स्वर्णमुद्राओं को मणिमुत्तु नामक नदी में फेंक दिया, और उन्हें पुन: वही स्वर्णमुद्राएँ तिरुवारुर के सरोवर में से मिल गयीं। भगवान् ने उन्हें तिरुकुडलैयारुर का मार्ग भी बताया।

जब सुन्दरर तिरुक्कारुकावुर जा रहे थे, तब भगवान् ने उन्हें भोजन दिया तथा एक अन्य बार भगवान् ने उनके लिए भिक्षा भी माँगी।

सुन्दरमूर्ति तिरुवोत्तियूर गये। वहाँ भगवान् शिव की सहायता से एक गहन शिव-भक्त सांगिली से उनका विवाह सम्पन्न हुआ। कैलासवासिनी भगवती उमा की ही एक अन्य सेविका ने सांगिली के रूप में जन्म लिया था। सुन्दरमूर्ति ने भगवान् से प्रार्थना की कि जब वह सांगिली के साथ एकनिष्ठ रहने की शपथ लेंगे, तो भगवान् मगिला वृक्ष के नीचे रहें। सुन्दरर चाहते थे कि सांगिली मन्दिर के भीतर चली जाये, किन्तु भगवान् ने उसे पहले ही बता दिया था कि वह मन्दिर में नहीं, वृक्ष के नीचे होंगे। अत: सांगिली ने सुन्दरर से वृक्ष के नीचे ही आने के लिए कहा जो उन्हें स्वीकार करना पड़ा। बाद में जब उन्होंने सांगिली को छोड़ कर अकेले ही उत्सव देखने के लिए तिरुवारुर जा कर शपथ भंग कर दी, तो उन्हें नेत्र-ज्योति से हीन होना पड़ा।

सुन्दरमूर्ति ने भगवान् से कहा—"यदि आपने मुझे अन्धा ही बनाना है, तो कृपा करके मुझे एक छड़ी तो दे दो।" और भगवान् ने उन्हें तुरुवेण्पाक्कम में छड़ी प्रदान कर दी। जब सुन्दरर कांचीपुरम् आये, तो उनके बायें नेत्र की ज्योति वापस लौट आयी। जब उन्होंने तिरुवारुर में भगवान् की स्तुति की, तो दाहिने नेत्र की ज्योति भी पुन: प्राप्त हो गयी।

एक बार सुन्दरमूर्ति तिरुप्पुकोलियूर में सड़क पर जा रहे थे, तो उन्होंने मार्ग के एक ओर के घर में लोगों को रोते-चिल्लाते सुना और उसी के सामने के घर में अन्य लोगों को प्रसन्नता से नाचते देखा। उन्होंने आश्चर्यचकित हो कर किसी से इसका कारण पूछा, तो ज्ञात हुआ कि दो पाँच-पाँच वर्ष के बालक सरोवर में स्नान कर रहे थे, एक बालक को मगर द्वारा निगल लिया गया और दूसरा बच गया। जिसे निगल लिया गया, उसके घर में माता-पिता अत्यधिक शोकाकुल हो विलाप कर रहे हैं और जिसके प्राण बच गये, उसके माता-पिता बालक के यज्ञोपवीत का उत्सव मना रहे हैं।

सुन्दरर का हृदय व्याकुल हो गया। उन्होंने एक पदिगम भगवान् शिव अविनाशी की स्तुति करते हुए गाया। भगवान् यम की आज्ञा से मगर बालक को सरोवर-तट पर जीवित छोड़ गया। बालक के माता-पिता आनन्दातिरेक से भर कर सुन्दरर के चरणों में गिर पड़े।

तीर्थयात्रा करते हुए सुन्दरर कावेरी के तट पर पहुँचे। नदी में बाढ़ आयी हुई थी। वह तिरुवायुर में भगवान् शिव के दर्शन करना चाहते थे। उन्होंने एक पदिगम गाया। नदी ने उन्हें मार्ग दे दिया। वह तिरुवायुर पहुँचे और भगवांन् की आराधना की।

तिरुपेरूमंगलम में एक कलिकमार नामक भगवान् शिव के महान् भक्त थे। वह जन्म से पिल्लै जाति के थे। उन्होंने यह समाचार सुना कि सुन्दरर ने भगवान् शिव को सन्देशवाहक बना कर परवै के पास भेजा, तो उन्होंने कहा—"भक्त हो कर भगवान् को अपना सेवक बना कर आज्ञा करता है! और वह भी एक स्त्री के लिए? ऐसा करने वाला क्या भक्त हो सकता है! मैं ही पापी हूँ, जो ऐसी बात सुन कर भी मेरे प्राण नहीं चले गये! मैंने लौह शलाका से अपने कान क्यों नहीं बधिर कर लिए, भक्त कहलाने वाले की ऐसी बात सुन कर?"

सुन्दरर को कल्लिकमर नयनार की ऐसी स्थिति के सम्बन्ध में ज्ञात हुआ। उन्हें पहले ही अपनी महान् भूल का बोध था। उन्होंने भगवान् से क्षमा की याचना की। भगवान् ने इन दोनों भक्तों का परस्पर मेल कराना चाहा। उन्होंने कलिकमार को जठरशोथ के रोग से पीड़ित कर दिया तथा स्वप्न में दर्शन दे कर कहा—"इस रोग का केवल सुन्दरर ही उपचार कर सकता है।" कल्लिकमर ने कहा—"सुन्दरर से चिकित्सा करवाने से कष्ट सहन करना अच्छा है।" भगवान् ने सुन्दरर को आज्ञा दी—"जाओ, कल्लिकमर को रोग मुक्त करो।"

सुन्दरर ने अपने आने का समाचार कल्लिकमर को भेजा। कल्लिकमर ने विचार किया—"सुन्दरर से उपचार करवाने से पूर्व ही मुझे अपना प्राणान्त कर देना चाहिए।" उन्होंने अपनी आँतें काट डालीं और प्राणान्त कर लिया। उनकी पत्नी ने अत्यन्त सम्मानपूर्वक सुन्दरर का स्वागत किया।

सुन्दरर ने कल्लिकमर की पत्नी से कहा—"मैं आपके पति की चिकित्सा करना तथा उनके साथ कुछ समय व्यतीत करना चाहता हूँ।" वह मौन रही तथा आस-पास के लोगों से कहा कि उन्हें बता दें कि उसके पति को कोई रोग नहीं है और वह सो रहे हैं। सुन्दरर ने यह सुन कर कहा कि उनकी कल्लिकमर को देखने की अत्यन्त तीव्र इच्छा है। तब उन लोगों ने कल्लिकमर की मृत देह दिखा दी। उनका शव देखते ही सुन्दरर ने अपने भी प्राणान्त कर लेने के लिए तलवार निकाल ली। भगवान् की कृपा से कल्लिकमर पुनर्जीवित हो उठे और उन्होंने सुन्दरर के दोनों हाथों को पकड़ लिया। सुन्दरर उनके चरणों में गिर पड़े।

कल्लिकमर ने भी उनके चरण-कमलों में प्रणाम किया। दोनों परस्पर आलिंगनबद्ध हो गये। दोनों भगवान् के मन्दिर में गये और आराधना की। तब दोनों एक-साथ तिरुवारुर की ओर चले।

परवै सुन्दरर के प्रति अत्यधिक क्रोधित थी; क्योंकि उन्होंने उसके अतिरिक्त सांगिली से विवाह कर लिया था। सुन्दरर ने भगवान् से परवै का क्रोध शान्त करने की प्रार्थना की। भगवान् दो बार सांगिली के घर गये, उसे शान्त किया और पुन: उनका मिलन करवा दिया। अपने भक्त के लिए भगवान् ने सन्देशवाहक दूत तक का कार्य किया। अपने सच्चे भक्तों के लिए भगवान् दास तक बन जाते हैं।

सुन्दरमूर्ति सांसारिक जीवन से विरक्त हो गये। उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की कि वे इनको वापस कैलास ले चलें। तब भगवान् ने उनके लिए श्वेत हाथी भेजा।

सुन्दरमूर्ति ने विभिन्न धार्मिक स्थलों पर मन्दिरों में भगवान् की स्तुति में पद गाये। यह गीत तेवारम कहलाते हैं। यह पुस्तक रूप में संगृहीत हैं। आज भी सभी भक्त अत्यन्त श्रद्धापूर्वक यह तेवारम गाते हैं। सुन्दरमूर्ति, अप्पर अथवा तिरुनावुक्करसर तथा तिरुज्ञान सम्बन्धर द्वारा गाये गये पद तेवारम कहलाते हैं। माणिक्कवाचकर द्वारा गाये गये पद तिरुवाचकम कहे जाते हैं।

सुन्दरमूर्ति की भगवान् शिव के साथ सख्य भाव की भक्ति थी। अत: वह भगवान् के साथ पूर्णतया मित्रवत् भाव रखते थे और अत्यन्त सहज भाव से भगवान् से स्वर्ण, मोती की माला, कस्तूरी, बहुमूल्य हीरे-मोतियों के हार, ऐनक, छड़ी, वस्त्र, सुगन्धित द्रव्य, आभूषण, वायु के वेग से दौड़ने वाले घोड़े, स्वर्णिम पुष्प, पालकी, तिरुवारुर की तिहाई सम्पदा इत्यादि कुछ भी माँग लेते थे। वह स्वयं सुख भोगने की इच्छा से कुछ नहीं माँगते थे। उनकी निजी स्वार्थपूर्ण इच्छा कुछ भी नहीं थी। अपने लिए उन्होंने कुछ नहीं रखा। जो उन पर आश्रित थे, उन्हीं की आवश्यकता के लिए इन वस्तुओं का उपयोग उन्होंने किया।

सुन्दरमूर्ति ने संसार को सख्य भाव की भक्ति का मार्ग दर्शाया।

माणिक्कवाचकर

माणिक्कवाचकर का जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ। मदुरै से सात मील दूर वैकै नदी के तट पर तिरुवाटूबुर नामक स्थान उनका जन्म-स्थान है। सम्भवतया उनका जीवन-काल ६५० ई. से ६९२ ई. तक का है। कुछ विद्वान् उनका काल दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी के

मध्य का मानते हैं। उनकी मित्रता मदुरै के राजा अरिमर्दन पाण्डियन के साथ हो गयी और उनके प्रमुख मन्त्री बन गये। वह तिरुवादऊर के नाम से भी जाने जाते हैं।

पाण्ड्य-नरेश ने माणिक्कवाचकर को बहुत-सा धन दे कर राज्य के लिए बढ़िया घोड़े ख़रीदने के लिए भेजा। मार्ग में तिरुपेरुन्दुरै के उपवन में उन्होंने भगवान् शिव का कीर्तन-गायन सुना। वहाँ भगवान् शिव एक शिवयोगी के वेष में अपने गणों को शिष्यों के रूप में संग ले कर एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए थे। वे माणिक्कवाचकर को शिवज्ञान में दीक्षित करने के आशय से ही आये थे।

माणिक्कवाचकर ने भगवान् के चरणों पर गिर कर स्वयं को समर्पित कर दिया। भगवान् शिव ने उन्हें गुह्य शिवज्ञान में दीक्षित किया। माणिक्कवाचकर जितना भी पाण्ड्य-नरेश का धन लाये थे, वह सब उन्होंने शिव-मन्दिरों के निर्माण तथा शिव-भक्तों को भोजन खिलाने में व्यय कर दिया। उन्होंने सर्वस्व त्याग कर कौपीन धारण कर लिया और संन्यासी बन गये। राजा के पास इसकी शिकायत पहुँची।

राजा ने माणिक्कवाचकर को पत्र लिख कर भेजा और तुरन्त अपने सामने उपस्थित होने की आज्ञा दी। माणिक्कवाचकर ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। भगवान् ने उन्हें कहा—"मैं आवणि मूल में घोड़े ले कर पहुँच जाऊँगा, तुम निश्चिन्त हो कर पहले पहुँच जाओ और राजा को यह हीरक दे देना।" माणिक्कवाचकर मदुरै पहुँचे, राजा को हीरक दिया और कहा—"घोड़े आवणि को यहाँ आ जायेंगे।" आवणि से दो दिन पूर्व जब घोड़ों की कोई सूचना आती दिखायी नहीं दी, तब राजा धैर्य खो बैठा। उसने सोचा माणिक्कवाचकर ने धोखा दिया है; अत: उन्हें कारावास में डाल दिया गया, अत्यधिक यातनाएँ दी गयीं।

आवणि मूल की प्रात: घोड़े पहुँच गये। भगवान् शिव ने साईस का वेष धारण किया हुआ था। अपने भक्तों के प्रति कितने दयालु हैं भगवान्! राजा अत्यधिक प्रसन्न हुआ। उसने माणिक्कवाचकर से क्षमा-याचना की और कारावास से मुक्ति दी। भगवान् ने अपनी लीला द्वारा सियारों को घोड़े बना दिया था। प्रात: सभी घोड़े पुन: सियार बन गये। राजा के क्रोध का पारावार न रहा। उसने माणिक्कवाचकर को अत्यधिक यातना देनी प्रारम्भ कर दी। उन्हें दोपहर १२ बजे कड़ी धूप में वैकै नदी की तपती रेत में खड़ा रखा गया। भगवान् ने अपने भक्त के रक्षार्थ तत्काल नदी में बाढ़ ला दी। सारा नगर जलमग्न हो गया।

अन्य मन्त्रियों ने राजा से कहा कि एक महात्मा को कष्ट देने के कारण ही हमें यह मुसीबत झेलनी पड़ रही है। राजा ने तुरन्त माणिक्कवाचकर को मुक्त कर दिया तथा किसी भी प्रकार से यह बाढ़ रोकने की प्रार्थना करने लगा। जैसे ही माणिक्कवाचकर नदी के तट

पर आये, बाढ़ शान्त हो गयी। राजा ने समस्त प्रजा को एक-एक टोकरी मिट्टी नदी के तट पर डालने की आज्ञा दी। सभी दरारें भर दी गयीं। केवल वन्दि नामक एक बुढ़िया के हिस्से की दरार शेष रह गयी। वह बूढ़ी अत्यन्त दुःखी थी। भगवान् दयापूर्वक एक कुली के रूप में उसके सम्मुख प्रकट हुए तथा मुट्ठी-भर चावल के बदले में उसके लिए मिट्टी की टोकरी ढोने की प्रार्थना की; किन्तु मिट्टी से खेलते रहे, कुछ भी काम न किया। राजा को इसका ज्ञान हुआ, तो उसे बहुत क्रोध आया और वह छड़ी से वन्दि के कुली को मारने लगा। छड़ी की चोट का कष्ट स्वयं राजा तथा समस्त प्रजा जनों को अनुभव हुआ। कुली अन्तर्धान हो गया। राजा समझ गया कि यह सब भगवान् शिव की लीला थी। उसे माणिक्कवाचकर की महानता का भी बोध हो गया।

तब माणिक्कवाचकर को भगवान् शिव के दर्शन हुए। भगवान् ने उन्हें समस्त तीर्थस्थलों के दर्शन करने और फिर चिदम्बर जाने की आज्ञा दी। माणिक्कवाचकर तिरुवण्णमलै, कांचिपुरम् तथा अन्य तीर्थस्थानों के दर्शन करते और अपने तिरुवाचकम् गान करते हुए अन्ततः चिदम्बरम् पहुँचे। यहीं पर उन्होंने 'तिरुक्कोवै' की रचना की।

तदुपरान्त माणिक्कवाचकर ने बौद्ध गुरु के साथ शास्त्रार्थ किया और उसे पराजित कर दिया। भगवती सरस्वती ने बौद्ध गुरु तथा उसके शिष्य—दोनों को मूक बना दिया। बौद्ध राजा ने उनसे कहा—"आपने मेरे धर्मगुरु और उनके समस्त शिष्यों को मूक बना दिया है, यदि आप मेरी मूक पुत्री को वाचाल कर दें, तो मैं और मेरी समस्त प्रजा—सभी शैव धर्म अपना लेंगे।" तब माणिक्कवाचकर ने राजपुत्री से कुछ प्रश्न किये। वह बोल कर उत्तर देने लग गयी। इससे बौद्ध राजा तथा उसकी प्रजा ने शैव धर्म ग्रहण कर लिया। माणिक्कवाचकर ने बौद्ध गुरु तथा उसके शिष्यों को भी वाणी लौटा दी।

तब भगवान् ब्राह्मण के रूप में माणिक्कवाचकर के पास आये। माणिक्कवाचकर ने सम्पूर्ण तिरुवाचकम् उनके सम्मुख गा दिया। ब्राह्मण ने उसे पनईताड़-वृक्ष के पत्तों पर लिख दिया तथा अन्त में लिखा—"माणिक्कवाचकर ने इसे सुनाया, तिरुचित्तम्बल उडैयार ने लिखा।" ब्राह्मण ने इसे 'पंचाक्षर पडि चित्सवै' में रख दिया। तब चिदम्बरम् के ब्राह्मणों ने इसे माणिक्कवाचकर को दिखाया तथा इसके पदों के अर्थ की व्याख्या करने की प्रार्थना की। माणिक्कवाचकर ने उत्तर दिया—"यह तिल्लै नटराज ही इन पदों की व्याख्या हैं।' वह उसी समय भगवान् नटराज के चरणों में, बत्तीस वर्ष की आयु में ही, लीन हो गये।

माणिक्कवाचकर के पदों की संख्या बावन है। यह समस्त पदगीत 'तिरुवाचकम्' नामक काव्य ग्रन्थ में संग्रहीत हैं। यह अत्यन्त सौन्दर्ययुक्त, पावन, उदात्त तथा भावप्रेरक

हैं। इसमें अलंकृत काव्य छठा है। दक्षिण भारतीय भक्त नित्य तिरुवाचकम् गान करते हैं; जो भी इनका श्रवण करता है, उसका हृदय उसी समय द्रवित हो जाता है।

प्रिय पाठक जन! माणिक्कवाचकर के जीवनचरित्र को पढ़ कर आप समझ सकते हैं कि भगवान् शिव भक्तों के दास बन जाते हैं।

तिरुमूलर

तिरुमूलर नयनार शैव सिद्धान्त दर्शन के प्रमुख ग्रन्थों में से एक स्तोत्र-ग्रन्थ माने जाने वाले 'तिरमन्तिरम्' नामक आगम-ग्रन्थ के रचयिता थे।

वह एक महान् शिवयोगी थे जिन्होंने भगवान् शिव के द्वारपाल नन्दी की कृपा प्राप्त की थी। वह कैलास से दक्षिण भारत आये थे। उन्हें दक्षिण भारत में स्थित पौदिगै पर्वत पर अगस्त्य ऋषि के दर्शन करने की इच्छा थी। वह केदारनाथ, नेपाल, अविमुक्तम्, विन्ध्याचल, काशी, कालहस्ति, तिरुवालंगाड्डु, काञ्चिपुरम, तिरुवदिगै, चिदम्बरम और पेरुपट्रपुलियूर गये। तब वह तिरुवाड्डुतुरै आ गये और वहीं भगवान् की उपासना की।

जब यहाँ से वह आगे चले और कावेरी के तट पर जा रहे थे, तो वहाँ इन्हें गायों के रम्भाने की आवाज सुनायी दी जिनका मूलन नामक ग्वाला, जो कि चात्तनूर का निवासी था, मर गया था। यह शिवयोगीश्वर गायों की ऐसी शोकातुर स्थिति देख करुणा से द्रवित हो गये। वह उस ग्वाले की मृत देह में प्रवेश कर गये और गायों को ले कर उनके घर की ओर चले। जब वह ग्वाले के घर पहुँचे, तो मूलन की पत्नी उनके निकट आयी; किन्तु उन्होंने स्वयं को स्पर्श करने से हटा दिया और उससे वार्ता तक नहीं की। मूलन की स्त्री, अपने पति के इस निष्ठुर व्यवहार से अत्यन्त व्याकुल हुई और रात-भर रोती रही। मूलन के शरीर में प्रविष्ट शिवयोगी ध्यान लगा कर बैठ गये और बहुत देर तक निश्चेष्ट समाधि अवस्था में ही बैठे रहे। उस समय लोगों ने उन्हें देखा और कहा कि यह तो कोई महान् योगी है। वह समाधि से उठे और अपने असली शरीर में पुन: प्रविष्ट होने के लिए उसी स्थान पर गये; किन्तु उनका शरीर वहाँ पर नहीं मिला। उन्होंने अपनी योग-शक्ति द्वारा दिव्य दृष्टि से जान लिया कि भगवान् की इच्छा है कि उनके द्वारा शैवागम शास्त्र का दक्षिण भारत के लोगों के लिए तमिल भाषा में पद्यात्मक अनुवाद हो; इसलिए वही इनके शरीर को वापस कैलास ले गये हैं।

तब वह तिरुवाड्डुतुरै चले गये, भगवान् शिव पर ध्यान लगाया तथा शैव दर्शन सिद्धान्त को तीन सहस्र पदों में, एक पद प्रतिवर्ष करके लिखा। उन्होंने संस्कृत शैवागमों के शैव धर्म सिद्धान्तों का तमिल भाषा में पद्यानुवाद किया। उनकी रचनाएँ नींव बनीं, जिसके

आधार पर तमिल शैव दर्शन सिद्धान्त की संरचना हुई। यह महान् कार्य सम्पन्न करने के पश्चात् वह पुनः शिवधाम कैलास लौट गये।

तिरुमूलर ने वर्णन किया है कि राजयोग अर्थात् अष्टांगयोग की साधना करने से क्या-क्या फल-प्राप्ति होती है। यमों का अभ्यास करने से भगवती उमा का आशीर्वाद तथा अमरपति-पद की प्राप्ति होती है। नियम-साधना करने से योगी को शिव-पद की उपलब्धि होती है। आसन-साधना के द्वारा वह दिव्य-नाद-श्रवण करता है। प्राणायाम-साधना करने से वह पद प्राप्त होता है जिसमें समस्त देवता उसका गुण-गान करते हैं। प्रत्याहार-साधना करने से उसे शिव-सारूप्य प्राप्त होगा तथा देवता भी उसे शिव-समान देख कर असमंजस में पड़ जायेंगे। धारणा की साधना करके वह ब्रह्मलोक तथा विष्णुलोक तक कहीं भी जा सकता है। ध्यान-साधना करने से उसे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्र के लोक की प्राप्ति, सालोक्य प्राप्ति होगी। समाधि-साधना करने के द्वारा योगी समस्त उपाधियों से मुक्त हो कर भगवान् शिव के साथ एकत्व अर्थात् तत् पदम् की प्राप्ति कर लेगा।

बसवन्न

बसवन्न महान् वीर-शैव समाज के धार्मिक गुरु थे। वह बासवराजा, बासवेश्वर नामों से भी जाने जाते थे। वह गहन गम्भीर चिन्तनशील थे। उन्होंने सामाजिक समंजन तथा चिन्तन-शैली में पर्याप्त परिवर्तन किये।

वह कर्नाटक प्रान्त के शैव सुधारक थे। शिवाचार नाम से जाने जाने वाले सम्प्रदाय को वर्तमान रूपरेखा उन्होंने ही दी थी।

उनका काल बारहवीं शताब्दी था। उनका जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। उन्होंने अपनी जाति की पूजा-पद्धति अत्यन्त रूढ़िवादी तथा कर्मकाण्ड-प्रधान हो जाने के कारण त्याग दी तथा वीर शैव सम्प्रदाय, जो उस समय अत्यन्त प्रचलित था, को अपना लिया।

वह कल्याण के बिज्जाला राजा के दरबार में मुख्यमन्त्री थे। वह अत्यन्त लोकप्रिय मन्त्री थे। वह अत्यन्त दयालु, उदात्त, विनम्र, अत्यन्त प्रीतिकर तथा निर्भीक व्यक्ति थे। उन्हें भगवान् के प्रति अथाह श्रद्धा और विश्वास था। लोग उनकी आज्ञा का पालन करते तथा उनकी पूजा करते थे। वह जन-साधारण में भी घुल-मिल जाते थे। वह उनके कष्टों को प्रेमपूर्वक सुनते थे और उन्हें दूर कर देते थे। जनता के साथ उनका मित्रवत् सम्बन्ध था। अपने धर्मप्रचारार्थ उन्होंने अथक परिश्रम किया। इस सक्रिय प्रचार-प्रसार के कारण उनके अनेक शत्रु बन गये। देश में गृह आन्दोलन हो गये। इसी अराजकता के समय में राजा

बिज्जाला की मृत्यु हो गयी, इसी समय बसवन्न का जीवन भी समाप्त हो गया। यद्यपि उनका प्राणान्त कैसे हुआ, यह स्पष्ट ज्ञात नहीं है।

वह एक सुधारक थे। वह वीर शैव लहर के नायक बन गये। उन्होंने ऐसा सम्प्रदाय स्थापित किया जो आज अनेक लोगों को मान्य है। इसके द्वारा निर्धन पुजारी वर्ग विकसित हुआ। इसने प्राचीन पुरोहित-वर्ग की समाप्ति कर दी। जन-साधारण में परम सत्य की स्थापना हेतु इसने स्थानीय (देशी बोली) भाषाओं को माध्यम बनाया। इसमें स्त्रियों को सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्र में विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। इसने उच्च-निम्न सभी के लिए परम लक्ष्य-प्राप्ति के लिए एक-समान आदर्श बताया।

बसवन्न ने सत्य के लिए महान् त्याग किया। लोगों ने उन्हें अपना गुरु माना। उनके वचन, उनके हृदय की आवाज थे। अत: वह सबके हृदय में सीधा प्रवेश कर जाने में सक्षम थे। वह सरल, सीधे और शक्ति-सम्पन्न होते थे। उनके द्वारा स्थापित सदाचार के नियम उदात्त और प्रशंसनीय हैं। वे सत्य के सच्चे जिज्ञासु थे तथा सत्य-प्राप्ति हेतु बड़े-से-बड़ा बलिदान करने को तत्पर थे। वे प्रेम और करुणा की साकार प्रतिमा थे। उनके उपदेशों का सारतत्त्व है—प्राणी मात्र के प्रति प्रेम अथवा वैश्व-प्रेम।

अध्याय १२

शिव-भक्त

सन्त और मनीषी

सन्त कौन है? जो सदा भगवान् अथवा परब्रह्म में निवास करता है, जो अहंकार, रुचि-अरुचि, स्वार्थपरता, दम्भ, ममता, काम, क्रोध, लोभ इत्यादि से मुक्त है, जो समदृष्टि, सन्तुलित मन, दया, सहनशीलता, सदाचार तथा वैश्व-प्रेम की भावना से सम्पन्न है तथा जिसको आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त है, वह सन्त है।

सन्त और मनीषी जन समस्त जगत् के लिए ही आशीर्वाद स्वरूप हैं। वे श्रेष्ठ आध्यात्मिक ज्ञान, आध्यात्मिक शक्तियों तथा अनन्त आध्यात्मिक सम्पदा के परिरक्षक हैं। राजा-महाराजा तक उनके चरण-कमलों में नत-मस्तक होते हैं। राजा जनक ने ऋषि याज्ञवल्क्य से कहा था—"हे पूज्यवर! आपश्री के उदात्त पावन निर्देशन में प्राचीन औपनिषदिक ज्ञान प्राप्त करके मैं आपका ऋणी हूँ। आपके श्रीचरणों में मैं अपना सम्पूर्ण राज्य समर्पित करता हूँ! और मैं आपका अब दास हूँ। एक सेवक हो मैं आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा में हूँ।"

सन्त और ऋषियों का ऐसा उदारचेता स्वभाव होता है। उनका अस्तित्व मात्र अन्यों को प्रेरित करता तथा उकसाता है कि वह भी उनके-जैसे बनें और उसी आनन्दपूर्ण स्थिति को प्राप्त करें जो कि उन्होंने प्राप्त की हुई है। यदि उनकी विद्यमानता से ऐसा न होता, तो आपका आध्यात्मिक विकास और मोक्ष भी न होता उनकी महिमा अकथनीय है। उनका ज्ञान अगाध है। वह समुद्र के समान गहन, हिमालय की भाँति स्थिर, हिम की भाँति शुद्ध और सूर्य के समान प्रकाशमान हैं। व्यक्ति जन्म-मरण के इस भयंकर संसार रूपी समुद्र को उनकी कृपा, सत्संग अथवा सन्त-संगति के द्वारा पार कर लेता है। उनके निकट रहना सर्वोच्च शिक्षा है। उनसे प्रेम करना सर्वोत्तम सुख है। उनका नैकट्य ही सच्ची शिक्षा है।

वे गाँव-गाँव घूम कर दिव्य ज्ञान का प्रचार-प्रसार करते हैं। वे दर-दर भटक कर ज्ञान बाँटते हैं। वे अपनी आवश्यकता-पूर्ति हेतु अल्पतम ग्रहण करते हैं और स्वयं सर्वोत्तम ज्ञान-संस्कृति तथा प्रबुद्धता लोगों को प्रदान करते हैं। उनका जीवन ही लोगों के लिए

अनुकरणीय उदाहरण है। वह प्रवचन करते हों अथवा न करते हों, ज्ञानोपदेश देते हों अथवा न देते हों, इससे कुछ अन्तर नहीं पड़ता।

केवल सन्त और मनीषी ही राजा-महाराजाओं के सच्चे परामर्शदाता बन सकते हैं, क्योंकि वे निःस्वार्थ भावना तथा सर्वोत्कृष्ट विवेक से सम्पन्न होते हैं। मात्र वे ही जन-सामान्य में नैतिक सुधार ला सकते हैं। केवल वे ही परम आनन्द तथा मोक्ष-प्राप्ति का मार्ग दर्शा सकते हैं। शिवाजी के पथ-प्रदर्शक समर्थ स्वामी रामदास थे। राजा दशरथ के पथ-प्रदर्शक महर्षि वसिष्ठ थे।

सन्तों के जीवन-चरित्र पढ़ें, आप तत्क्षण प्रेरणा प्राप्त करेंगे। उनके वचन स्मरण करें, आप तत्काल उन्नत हो जायेंगे। उनके चरण-चिह्नों पर चलें, आप दुःख-कष्टों से मुक्त हो जायेंगे। इसलिए 'सन्त-चरित्र' नामक पुस्तक आपकी निश्चित रूप से 'शाश्वत-सखा' होनी चाहिए। यह सदा आपके पास, आपकी जेब में, आपके सिरहाने होनी चाहिए।

अपनी दोष-दृष्टि के कारण उन पर अकारण ही दोष अथवा त्रुटियाँ न थोपें। आप उनके गुणों का अनुमान नहीं लगा सकते। विनम्र हो कर उनके चरणों में बैठें। अपने हृदय और आत्मा से उनकी सेवा करें और अपने संशयों का निवारण करें। उनसे निर्देशन प्राप्त करें तथा उन निर्देशों का गम्भीरता से अभ्यास करें। निःसन्देह आप लाभान्वित होंगे।

प्रत्येक विद्यालय, प्रत्येक महाविद्यालय, प्रत्येक छात्रावास, प्रत्येक कारावास, प्रत्येक संस्था और प्रत्येक घर में पथ-प्रदर्शन के लिए सन्त का होना अनिवार्य है। सन्तों का अभाव नहीं है। आप उन्हें चाहते ही नहीं हैं। आप उनके पास जाना ही नहीं चाहते। आप उनकी सेवा करना नहीं चाहते। आप उच्चतर वस्तु की आकांक्षा ही नहीं करते। आप फूटी कौड़ियों और काँच के टुकड़ों को ले कर ही पूर्णतः सन्तुष्ट हैं। उच्चतर दिव्य ज्ञान तथा आन्तरिक शान्ति प्राप्त करने की आध्यात्मिक क्षुधा-पिपासा आपमें है ही नहीं।

सन्तों और मनीषियों की कोई जाति नहीं होती। उनकी जाति-पाति न देखें। आपको सन्तोष नहीं होगा। आप उनके सद्गुणों को हृदयंगम नहीं कर सकते। उच्चतर धर्म में न कोई जाति है, न कोई मत-पथ। मोची, जुलाहे और शूद्र महान् सर्वश्रेष्ठ सन्त हुए हैं। विवेक और आत्मज्ञान केवल ब्राह्मणों की बपौती नहीं है। दक्षिण भारत के ब्राह्मण केवल ब्राह्मण दण्डी स्वामियों का ही सम्मान करते हैं और केवल उन्हें ही भोजन-भिक्षा देते हैं। यह गम्भीर त्रुटि तथा महान् भूल है। कितनी शोचनीय स्थिति है उनकी! यही कारण है कि सन्त दक्षिण भारत भ्रमणार्थ नहीं जाते, वहाँ निवास नहीं करते। पंजाब और गुजरात में सन्तों के प्रति श्रद्धा-भक्ति है। इसीलिए सन्त उधर ही जाते हैं और लोग उनसे आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करते हैं।

यह संसार इन सन्तों और ऋषि-मुनियों से परिपूर्ण हो जाये! आप सब उनके सत्संग-लाभ और उपदेश-लाभ से परम लक्ष्य प्राप्त करें! सन्त-मनीषियों के आशीर्वाद आप सब पर हों!

मार्कण्डेय

मार्कण्डेय भगवान् शिव के महान् भक्त थे। उनके पिता मृकण्डु ने पुत्र-प्राप्ति के लिए गहन तपस्या की। भगवान् प्रकट हुए और कहा—"हे ऋषि! आपको मूर्ख और दुष्ट दीर्घ आयु सम्पन्न कुपुत्र चाहिए, अथवा ऐसा बुद्धिमान् सुपुत्र जो सोलह वर्ष की आयु में मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा?" मृकण्डु ने उत्तर दिया—"हे प्रभु, मुझे सुपुत्र ही प्रदान करें।"

बालक को अपने भाग्य के सम्बन्ध में ज्ञात हो गया और उसने गहन श्रद्धा-भक्ति सहित सम्पूर्ण हृदय से भगवान् शिव की उपासना प्रारम्भ कर दी। अपनी मृत्यु के लिए निश्चित दिन आ जाने पर वह गहन ध्यान और फिर समाधि में लीन हो गया। यमदूत उसके निकट आ कर स्पर्श तक करने का साहस न कर पाये। अत: यमराज स्वयं उसके प्राण लेने के लिए आये। बालक ने भगवान् शिव से रक्षार्थ प्रार्थना की और शिवलिंग को आलिंगन-बद्ध कर लिया। यमराज ने बालक तथा लिंग दोनों पर मृत्युपाश फेंका। भगवान् लिंग में से तत्काल प्रकट हो गये और बालक की रक्षा करने के लिए यमराज को मार दिया। उसी समय से भगवान् मृत्युंजय तथा काल-काल कहलाने लगे।

तब देवता भगवान् शिव के पास आये और प्रार्थना की—"हे प्रभु, आपको बारम्बार प्रणाम है! यमराज को अपनी भूल के लिए क्षमा कर दें! हे करुणानिधान, उन्हें जीवन-दान दें!" तब भगवान् ने उनकी प्रार्थना पर यमराज को पुन: जीवन प्रदान कर दिया। उन्होंने मार्कण्डेय को भी वरदान दिया कि वह सदैव शोडष वर्षीय बालक ही रहेंगे। वह चिरंजीवी हैं। दक्षिण भारत में आज भी नर-नारी बालकों को आशीर्वाद देते समय यही कहते हैं—"मार्कण्डेय सम चिरंजीवि रहो!"

तप और ध्यान द्वारा आप तीनों लोकों के किसी भी वस्तु-पदार्थ को प्राप्त कर सकते हैं।

ऋषभ योगी की कथा

स्कन्दपुराण के ब्रह्मोत्तर काण्ड में यह कथा सात अध्यायों में वर्णन की गयी है।

मन्दार अवन्ती के एक महान् विद्वान् थे। किन्तु वह पिंगला नामक वेश्या के साथ रहते थे। ऋषभ एक महान् शिवयोगी थे, जो मन्दार के घर एक दिन अतिथि बन कर रहे थे।

मन्दार और पिंगला ने अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिपूर्वक उनकी सेवा की तथा आशीर्वाद प्राप्त किया।

निश्चित समय पर दोनों की मृत्यु हो गयी। मन्दार का जन्म दसरना के राजा वज्रबाहु के पुत्र के रूप में हुआ। जब अभी वह माँ के गर्भ में ही था, तो उसकी माता सुमति को राजा की अन्य रानियों ने ईर्ष्यावश विष दे दिया। माँ और शिशु दोनों अत्यन्त बीमार हो गये और उनका कोई उपचार न हो सका। राजा की आज्ञा से दोनों को वन में एकाकी छोड़ दिया गया।

भगवान् की कृपा से उन्हें एक धनाढ्य व्यापारी ले गया और उनकी भली-भाँति देख-रेख करने लगा। बालक की दशा दिन-प्रतिदिन बिगड़ती गयी और अन्ततः उसकी मृत्यु हो गयी। माता अपने पुत्र की मृत्यु से अत्यन्त शोकातुर थी। अब ऋषभ का आगमन हुआ। उन्होंने माता को धैर्य बँधाने तथा दार्शनिक उपदेश देने का प्रयास किया, किन्तु उस पर इसका प्रभाव न हुआ। तब योगी ने शिव-भस्म से बालक को स्पर्श किया और बालक पुनः जीवित हो उठा। उन्होंने बालक और उसकी माता को अपने योग-बल से पूर्णतया स्वस्थ और सुन्दर बना दिया। उन्होंने बालक का नाम भद्रायु रखा और उसे शिवकवच सिखाया। उन्होंने उसे एक तलवार, एक शंख तथा दस सहस्र हस्ति-बल प्रदान किया। उन्होंने उसे शिव-भस्म भी दी। तब योगी चले गये।

भद्रायु तथा व्यापारी का पुत्र सुनया इकट्ठे प्रसन्नतापूर्वक रहने लगे। भद्रायु ने सुना कि उसके पिता मगधनरेश हेमरथ द्वारा अपदस्थ करके बन्दी बना लिये गये हैं। वह सुनया के साथ गया, शत्रुओं को पराजित किया तथा अपने पिता को छुड़ा लिया, साथ ही मगध राजा द्वारा बन्दी बनाये गये समस्त मन्त्रियों और रानियों को भी मुक्त करवा दिया। वह मगध के राजा और उसके परिजनों को अपने पिता के पास बन्दी छोड़ कर वापस घर लौट आया। उसने अपने पिता को अपना परिचय नहीं दिया। पिता ने लड़के की वीरता की अत्यन्त प्रशंसा की तथा उसके प्रति अत्यन्त आभार अभिव्यक्त किया। इस प्रकार महान् शिवयोगी ऋषभ ने उस भद्रायु पर इतनी कृपा की जिसने मन्दार के रूप में चरित्रहीन होने पर भी उनकी एक दिन सेवा की थी।

आर्यव्रत के राजा चित्रवर्मा के सीमन्तिनि नाम की कन्या थी। निशाध के नल और दमयन्ति के पुत्र इन्द्रसेन के बेटे चन्द्रांगद का इस सीमन्तिनि से विवाह हुआ। विवाह के कुछ ही काल पश्चात् जब वह नौकाविहार कर रहे थे, तो चन्द्रांगद यमुना में डूब गया। नागकन्याएँ चन्द्रांगद को नागलोक में तक्षक के पास ले गयीं।

सीमन्तिनि को ज्योतिषि द्वारा ज्ञात हो गया था कि वह चौदह वर्ष की आयु में वैधन्य को प्राप्त होगी। अत: उसने याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी से भगवान् शिव की सोमवार और प्रदोष-पूजन करने की दीक्षा ग्रहण की थी। विधवा हो जाने के बाद भी उसने यह पूजा निरन्तर जारी रखी।

चन्द्रांगद के यह इच्छा व्यक्त करने पर कि वह अपनी पत्नी के साथ जीवन व्यतीत करना चाहता है, तक्षक ने उसे यमुना-तट पर पुन: छोड़ दिया। एक दिन सोमवार की सन्ध्या वेला में जब सीमन्तिनि यमुना-तट पर स्नान के लिए गयी, तो उसका पति से पुनर्मिलन हो गया।

चन्द्रांगद की अनुपस्थिति में जो शत्रु राजा उसके पिता को अपदस्थ करके स्वयं राजा बन बैठा था, उसे चन्द्रांगद ने पराजित किया और पुन: अपने पिता को सिंहासन पर बैठा दिया। सीमन्तिनि और चन्द्रांगद का भगवान् शिव की अनुकम्पा से पुनर्मिलन हो गया।

सीमन्तिनि प्रत्येक सोमवार को भगवान् शिव और पार्वती के सम्मानार्थ ब्राह्मणों की सपत्नीक पूजा किया करती थी और उपहार भेंट दिया करती थी। दो ब्राह्मण लड़के विदर्भ-नरेश के पास जा कर अपने विवाहार्थ धन-प्राप्ति की प्रार्थना करने लगे। राजा ने उन्हें कहा कि तुम दोनों पति-पत्नी का वेष धारण करके सीमन्तिनि के पास चले जाओ। उन्होंने सीमन्तिनि की भक्ति की परीक्षा लेने के लिए ऐसा किया। लड़कों ने इसी प्रकार किया। सीमन्तिनि उन्हें देख कर हँस पड़ी और फिर शिव-पार्वती के रूप में उनकी पूजा की। दोनों में से एक लड़का जो लड़की बना हुआ था, स्त्री बन गया। जो सीमन्तिनि की शक्ति से स्त्री बन गया था, उसके पिता ने राजा से इस मुसीबत से छुटकारा दिलाने की प्रार्थना की। राजा ने पार्वती से प्रार्थना की। पार्वती ने अपनी भक्त के कार्य में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया, किन्तु उसके एक और पुत्र उत्पन्न होने का वरदान दे दिया। उन दोनों लड़कों को परस्पर विवाह करके पति-पत्नी रूप में जीवन व्यतीत करना पड़ा।

सीमन्तिनि के एक कृतिमालिनी नाम की पुत्री थी। यह कृतिमालिनी पूर्व-जन्म की पिंगला वेश्या थी, जिसे शिव योगी ऋषभ की कृपा प्राप्त हुई थी। ऋषभ चन्द्रांगद के पास गये और कृतिमालिनी का विवाह भद्रायु से कर देने के लिए कहा। उन्होंने चन्द्रांगद को भद्रायु की समस्त कथा सुनायी। चन्द्रांगद ने भद्रायु के साथ अपनी पुत्री कृतिमालिनी का विवाह कर दिया। उन्होंने विवाह में भद्रायु के पिता को भी आमन्त्रित किया। जब वज्रबाहु ने चन्द्रांगद के दामाद को देखा, तो वह पहचान गया कि यह तो वही लड़का है जिसने मगध-नरेश को पराजित करके इसका राज्य और स्वयं इसे भी छुड़वाया था। तब उसे

माँ-बेटे, सुमति और भद्रायु की कथा बतायी गयी। वज्रबाहु अपनी रानी, पुत्र और पुत्रवधु को अपनी राजधानी ले गये।

महान् शिवयोगी ने अपने श्रद्धालु उपासकों, मन्दार और पिंगला को एक बार पुनः मिला दिया। यद्यपि उन्होंने असंयत, लम्पट जीवन ही जिया था, तथापि भगवान् की कृपा के कारण उनकी रक्षा हुई तथा सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे। एक दिन भद्रायु वन में से जा रहा था, उसने एक शेर द्वारा घसीट कर ले जायी जा रही ब्राह्मण स्त्री के चीखने की आवाज सुनी। उसने जी-तोड़ प्रयत्न किया; किन्तु स्त्री के रक्षार्थ शेर को न मार सका। ब्राह्मण राजा को अपशब्द कहने लगा—"ओ कायर राजा! तुममें शेर को मार सकने का भी बल नहीं है, कैसे राजा हो तुम!" भद्रायु ने उस ब्राह्मण को उसकी पत्नी के स्थान पर कुछ भी वस्तु, यहाँ तक कि स्वयं अपनी रानी भी, देने का वचन दिया। ब्राह्मण ने उसकी रानी की ही माँग की। भद्रायु ने अपनी रानी उसे सौंप दी तथा रानी कृतिमालिनी के बिना जीवित न रहने की इच्छा से प्राण त्यागने को तत्पर हो गया।

तब भगवान् शिव तथा पार्वती उस शिव-भक्त राजा भद्रायु के सम्मुख प्रकट हुए और बोले—"हमने तुम्हारी शक्ति और धर्म की परीक्षा लेने के लिए ही यह सब किया था।" तब भगवान् ने भद्रायु और कृतिमालिनी को शिव-सायुज्य प्रदान किया तथा उनकी प्रार्थना से उनके माता-पिता को तथा वैश्य और उनके पुत्र को भी शिव-सायुज्य प्रदान कर दिया। ब्राह्मण की पत्नी को पुनर्जीवित कर दिया तथा इन दोनों को आशीर्वाद दिया।

यह कथा शिव-भक्ति की महिमा को, शिव-भक्तों की महानता को, प्रतिदिन शिव-पूजन के तथा विशेष रूप से सोमवार और प्रदोष के दिन सन्ध्यासमय शिव-पूजन के महत्त्व को स्पष्ट रूप से प्रकट करती है।

पुष्पदन्त

पुष्पदन्त एक महान् शिव-भक्त थे। वह गन्धर्वराज थे। उनकी दन्तावलि मल्लिका पुष्प की भाँति अत्यन्त सुन्दर थी। अतः उनका नाम पुष्पदन्त 'पुष्प-जैसे दाँतों वाला' हो गया।

पुष्पदन्त वायु-गमन की सिद्धि से सम्पन्न थे। वह वाराणसी के राजा बाहु के उपवन से शिव-पूजन के लिए पुष्प लिया करते थे। क्योंकि वह वायु में विचरण कर सकते थे, अतः उपवन के रक्षक माली उन्हें ढूँढ़ नहीं पाते थे। मालियों को सन्देह हुआ कि कोई रहस्यमयी, अलौकिक शक्ति से सम्पन्न व्यक्ति चुपके-चुपके उद्यान से फूल ले जाता है। अतः उसे पकड़ने के लिए उन्होंने एक योजना बनायी।

उन्होंने भगवान् शिव पर चढ़ाये गये पुष्प उद्यान में भिन्न-भिन्न स्थानों पर बिखेर दिये। उन्होंने सोचा कि वह रहस्यमय व्यक्ति उन पुष्पों पर पैर रख कर चलेगा।

सदा की भाँति पुष्पदन्त पुष्प लेने के लिए आये। वह उपवन में फैले फूलों के ऊपर चलते रहे। अनजाने में भगवान् को समर्पित पुष्प रौंद दिये जाने से उनके द्वारा भगवान् अपमानित किये गये थे, अत: उनकी वायु-विचरण की शक्ति जाती रही। वह पकड़ लिये गये और राजा के सम्मुख प्रस्तुत कर दिये गये।

पुष्पदन्त ने भगवान् शिव को प्रसन्न करने के लिए एक स्तुति गायी और राजा के फूल चुरा लेने के अपराध से स्वयं को बचा लिया। भगवान् की कृपा से वायु में गमन करने की सिद्धि भी उन्हें पुन: प्राप्त हो गयी।

यह प्रख्यात स्तुति 'शिवमहिम्नस्तव' के नाम से जानी जाती है। यह पावन, उदात्त तथा प्रेरणास्पद भावनाओं से सम्पन्न है। उत्तरी भारत के मन्दिरों में सायंकालीन पूजा-आरती के पश्चात् यह नित्य गायी जाती है। यह प्रत्येक व्यक्ति के हृदय को छू लेने वाली है। यह प्रभावपूर्ण, लयपूर्ण, संगीतमय तथा गहन भक्ति-भावना से सम्पन्न है। इसे कण्ठस्थ करके नित्य गाना चाहिए। इससे आपको परम, शाश्वत, आनन्दमय शिव-सालोक्य की प्राप्ति होगी।

कण्णप्प नायनार

तिण्णन, जो कण्णप्पन नाम से जाने जाते हैं, दक्षिण भारत के उडुप्पर नामक किसी जंगली प्रदेश में व्याध जाति के सरदार नागन के पुत्र थे। नागन किशोरावस्था से ही भगवान् सुब्रह्मण्यम के भक्त थे। तिण्णन किशोरावस्था से ही धनुष-बाण, भाला, तोमर तथा अन्य अस्त्र-शस्त्र चलाने और आखेट करने में निपुण हो गया। नागन पर बुढ़ापा आ रहा था। अत: तिण्णन को अपनी जाति का सरदार बना दिया गया। अब तिण्णन अपने अन्य साथियों सहित आखेट के लिए निकला। वन-वन घूमते हुए उन्हें एक जंगली सुअर मिला। जिसका बहुत देर तक पीछा करते-करते, कभी पर्वत के ऊपर, कभी नीचे भागते-भागते अन्तत: उसको मारने में सफल हो गये। किन्तु अत्यधिक थक जाने के कारण तथा क्षुधा-पीड़ित हो जाने के कारण आखेट को उसी समय पका कर खाने का विचार किया। इसलिए वह निकट ही कालाहस्ति पर्वत की ओर चल दिये। मार्ग में तिण्णन के साथी ने पर्वतों के अधिष्ठाता देवता कुडुमित्तेवर के दर्शन करने का आग्रह किया; अत. वह पर्वत देव के दर्शनार्थ उसी ओर चल पड़े।

जैसे-जैसे वह पर्वत की ओर ऊपर चढ़ते जाते थे, तिण्णन को प्रतीत हो रहा था मानो उनके ऊपर अब तक जो बोझ पड़ा हुआ लगता था, वह लुप्त होता जा रहा हो। उन्होंने निश्चय कर लिया कि भगवान् के दर्शन पहले करके तभी कुछ खायेंगे। जैसे ही वह मन्दिर के सम्मुख पहुँचे, तो देखा वहाँ शिवलिंग है। यह देख कर उनके आनन्द का पारावार न रहा। ईश्वर के दर्शन करते ही वह तो प्रेम की साकार मूर्ति ही हो गये, अपूर्व भक्ति और अनन्त प्रसन्नता के रूप में परिणित हो गये। जैसे माँ की सदियों से बिछुड़े अपने बच्चे को देखने से दशा होती है, ऐसे तिण्णन दिव्य प्रेम और हर्षातिरेक की गहन भावपूर्ण समाधि में लीन हो गये। वाह! भगवान् शिव के प्रथम दर्शन से ही क्या असीम, अवर्णनीय, अनन्त प्रसन्नता और उल्लास से वह भर गये। भगवान् के प्रति आनन्द और प्रेम से भर कर वह आँखों से अश्रु बहाते हुए सिसकियाँ भर-भर कर रोने लगे। उन्हें सब-कुछ विस्मृत हो गया—भोजन, साथी और स्वयं अपना शरीर भी।

वह यह सोच-सोच कर अत्यन्त व्याकुल होते रहे कि भगवान् यहाँ पर्वत पर नितान्त एकाकी हैं और वन्य पशुओं से भी सुरक्षित नहीं हैं। कोई भी उनको हानि पहुँचा सकता है। अतः उन्होंने रात-भर वहीं रहना निश्चित कर लिया। भगवान् को भूख भी लगी होगी, यह विचार आते ही वे मारे हुए सुअर का मांस पका कर लाने के लिए भागे। उन्होंने स्वाद चख कर अच्छे-अच्छे टुकड़े चुने और उन्हें भगवान् को खिलाने के लिए भून लिया, शेष को फेंक दिया। तब वह नदी की ओर गये और अभिषेक के लिए मुख में जल भर कर ले आये। मार्ग में अच्छे सुन्दर फूल ढूँढ़ कर उन्हें अपने केशों के बीच खोंस लिया। इस प्रकार भली-भाँति भगवान् की पूजा के लिए तैयार हो कर वह मन्दिर में पहुँचे। भगवान् पर जो फूल पहले चढ़े हुए थे, उन्हें पैर के जूते द्वारा उतार दिया, मुख से ही जल छिड़क कर अभिषेक किया, अपने केशों से निकाल कर पुष्प अर्पित किये और अत्यन्त प्रेम से आग्रह करके भुने हुए मांस का भोग दोनों हाथों से उनके सम्मुख रखा। तब धनुष पर बाण चढ़ा कर मन्दिर के द्वार पर प्रभु की रक्षा के लिए रात-भर प्रहरी बन कर खड़े रहे। प्रातः होते ही, भगवान् के लिए पुनः प्रसाद लाने के लिए, शिकार लेने चल दिये।

जब तिण्णन आखेट के लिए गये हुए थे, तब मन्दिर का पुजारी शिवगोचरियार, जो कि भगवान् का भला और सच्चा भक्त था, मन्दिर पहुँचा। उसके आश्चर्य और निराशा का ठिकाना न रहा, जब उसने देखा कि मन्दिर में चारों तरफ कच्चा मांस, हड्डियाँ बिखरी पड़ी हैं और पुष्प-सज्जा भी खराब कर दी गयी है। किन्तु उसे कोई व्यक्ति वहाँ दिखायी नहीं दिया, जिसने यह कार्य करके मन्दिर की पवित्रता को नष्ट किया था। अतः स्थान-शुद्धि के लिए उपयुक्त मन्त्रोच्चारण करते हुए, उसने मन्दिर को शुद्ध करके नित्य की पूजा-अर्चना की तथा उसके उपरान्त मन्दिर के पट बन्द करके चला गया।

तिण्णन आखेट करके पूर्व की भाँति मांस (गोश्त) का प्रसाद ले कर पहुँचे, पुजारी के सुसज्जित पुष्पों को हटा कर अपने ढंग से अपने लाये पुष्प चढ़ाये और प्रसाद अर्पित किया। रात्रि-भर जाग कर पहरा दिया और प्रात: पुन: प्रसाद के लिए आखेट करने चले गये। इसी प्रकार पाँच दिन व्यतीत हो गये और माता-पिता के लाख अनुनय-विनय करने पर भी वह भगवान् के ही पास रहने के लिए दृढ़ रहे।

शिवगोचरियार प्रतिदिन की इस घटना से इतने दु:खी थे कि उन्होंने भगवान् से रो कर शिकायत की और प्रार्थना की कि वे ही इस समस्या का अन्त करें। भगवान् शिव ने उन्हें स्वप्न में दर्शन दिये तथा उनकी अनुपस्थिति में होने वाली इस घटना को सविस्तार बताया। यह भी बताया कि तिण्णन के इस समस्त कार्य के पीछे उनका भगवान् के प्रति अथाह शुद्ध किन्तु अबोध प्रेम ही है। भगवान् ने कहा—"मैं उनके द्वारा जल के अभिषेक की प्रतीक्षा में रहता हूँ और उससे अति-प्रसन्न हूँ। इसका मूल्य मुझे गंगा-जल से भी अधिक प्रतीत होता है। शुद्ध और गहन श्रद्धा, भक्ति और प्रेम सहित किये गये कार्य मुझे वैदिक मन्त्रों सहित किये गये अनुष्ठानों और कर्मकाण्डों से कहीं अधिक मूल्यवान् लगते हैं।" तब भगवान् गंगाधर ने पुजारी से आगामी प्रात: मन्दिर में आने और तिण्णन क्या करता है, यह छिप कर देखने के लिए कहा।

तिण्णन प्रसाद लाया और अपने नित्य के ढंग से अभिषेक और पुष्प-सज्जा की तैयारी की। अब भगवान् ने सोचा कि शिवगोचियार देखे और तिण्णन की प्रभु के प्रति प्रेम और भक्ति की सीमा को जाने। अत: तिण्णन जब प्रसाद अर्पित कर रहा था, तो उसने क्या देखा कि भगवान् की दाहिनी आँख में से रक्त के अश्रु प्रवाहित हो रहे हैं। तिण्णन बिलकुल ही घबरा गया। उसका हृदय दु:ख से कातर हो गया। उसे समझ नहीं आ रहा था कि क्या करे! वह रोने और विलाप करने लगा। कभी वह रक्त बन्द करने के लिए कोई-कोई पत्ता ला कर लगाने लगा। वह स्वयं अपने-आपको कोसने लगा; क्योंकि रक्त की धारा अविरल बह रही थी, और वह रोक नहीं पा रहा था। अन्तत: उसे एक युक्ति सूझी। उसने तीखे बाण की नोक से अपनी दाहिनी आँख निकाली और भगवान् की आँख पर रख कर धीरे से दबाया। उसके आनन्द का ठिकाना न रहा; क्योंकि रक्त बहना बन्द हो गया था। वह असीम प्रसन्नतापूर्वक आनन्दोन्मत्त हो कर नाचने लगा। किन्तु अचानक क्या देखता है कि भगवान् की बायीं आँख से भी रक्त बह रहा है। इस पर क्षण-भर के लिए दु:ख और सन्ताप में घबराया; किन्तु शीघ्र ही पूर्व-युक्ति उसे स्मरण हो आयी और वह सँभल गया और उसने तुरन्त अपनी बायीं आँख भी निकाल कर भगवान् को लगाने के निश्चय कर लिया। किन्तु जब उसकी दोनों आँखें ही नहीं रहेंगी, तब वह रक्त बहने वाली भगवान् की आँख कैसे देख कर ठीक जगह पर अपनी आँख लगा पायेगा। अत: उसने अपने बायें पैर के जूते की नोक

भगवान् की बायीं आँख के ऊपर रखी और अपने हाथ के बाण की नोक से अपनी बायीं आँख निकालने लगा। किन्तु भगवान् इतने निष्ठुर नहीं कि अपने भक्त को इतना कष्ट सहते देख सकें। तत्क्षण भगवान् प्रकट हो गये और तिण्णन का हाथ पकड़ कर रोकते हुए बोले—"ठहरो, मेरे कण्णप्प (**कण—आँख, अप्प—वत्स**)। फिर भगवान् ने उसे अपने निकट खींच लिया और इन त्याग व प्रेम की मूर्ति को अपने दाहिनी ओर सदा के लिए रख लिया।

उपरोक्त कण्णप्प की कथा सर्वोच्च श्रद्धा और विश्वास का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत करती है। यद्यपि वह जाति से व्याध थे जो कि भगवान् की आराधना के नीति-नियमों से पूर्णतया अनभिज्ञ और लापरवाह थे, तथापि भगवान् के प्रति उनकी श्रद्धा, भक्ति और त्याग सर्वोपरि थे। उनकी मात्र यह गहन भक्ति और प्रेम की भावना ही उन्हें भगवान् से सर्वोच्च वरदान, अर्थात् आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करवा पायी। केवल छह दिन ही उन्होंने अपने ढंग से भगवान् की पूजा की; किन्तु उनकी भक्ति में जो श्रद्धा और प्रेम था, वह असीम था।

आप सबको इन महान् शिव-भक्त कण्णप्प का आशीर्वाद प्राप्त हो ! आप सब भी इन महान् दक्षिण भारतीय भक्त के उदाहरण का अनुसरण करके अपने जीवन का परम लक्ष्य प्राप्त करें!

सिरुत्तोण्ड नायनार

तिरुचेट्टांकुडि के परंजोदियार, चोला नरेश के राज्य में सेनापति थे। वह युद्ध-कला में प्रवीण थे तथा चोल- नरेश के लिए उन्होंने बहुत से युद्ध जीत कर दिये थे। सेनापति होते हुए भी उनकी भगवान् शिव के प्रति तथा शिव-भक्तों के प्रति भी अपार श्रद्धा और भक्ति थी और यह नित्यप्रति विकसित होती जा रही थी। भगवान् के भक्त के रूप में वह अपनी विनम्रता के लिए प्रसिद्ध थे और उन्हें ठीक ही सिरुत्तोण्ड नायनार कहा जाने लगा। उन्होंने अपने सेनापति-पद से त्याग ले लिया और अपना जीवन भगवान् शिव की उपासना तथा शिव-भक्तों की सेवा में लगा दिया। कोई एक दिन भी ऐसा नहीं होता था, जब वह शिव-भक्तों को खिलाये बिना स्वयं भोजन कर लें। इतनी उनकी श्रद्धा और भक्ति थी। इस प्रकार वह अपनी पत्नी और पुत्र सीरालन के साथ आनन्दपूर्वक रहते थे।

एक बार क्या हुआ कि भगवान् शिव वैरवर (भैरव) के वेष में उनके द्वार पर भिक्षा के लिए आये। उसी समय सिरुत्तोण्ड भोजन के लिए शिव-भक्तों की खोज में गये थे। वैरवर (भैरव) द्वार पर कुछ समय प्रतीक्षा करते रहे, तभी सिरुत्तोण्ड कोई भी शिव-भक्त न मिलने

के कारण अत्यन्त निराश हो कर वापस लौटे, द्वार पर खड़े प्रतीक्षारत वैरवर (भैरव) को देख वह अत्यन्त हर्षित हो गये। अब वैरवर ने कहा कि वह उनके घर भोजन करने के इच्छुक हैं; किन्तु उनकी अपनी कुछ इच्छाएँ हैं, यदि वह उन्हें पूर्ण करेंगे, केवल तभी वह भोजन ग्रहण करने को तैयार होंगे। सिरुत्तोण्ड के सहर्ष स्वीकार कर लेने पर वैरवर (भैरव) ने कहा कि उनके लिए एक ऐसे पाँच वर्षीय बालक का मांस पकाया जाये जो पूर्णत: स्वस्थ हो तथा उसके समस्त अंग पूर्ण हों। जो शरीर और दिमाग से पूर्णत: स्वस्थ और विकार रहित हो। यद्यपि भक्त पहले ऐसा बालक कहीं से भी ढूँढ़ कर नहीं ला सकने की चिन्ता में किंचित् घबराया; किन्तु शीघ्र ही उन्होंने अपने पुत्र सीरालन को समर्पित करने का निश्चय कर लिया, जिससे कि भिक्षु का भोजन हो जाये।

पति-पत्नी इच्छित भोजन तैयार करने में शीघ्रता से जुट गये। माता ने अपने पुत्र को गोद में रखा और पिता ने उसकी गरदन तथा प्रत्येक टाँग-बाँह इत्यादि काट कर पकानी आरम्भ की। इस प्रकार सिर के अतिरिक्त सब-कुछ पका दिया। और फिर भिक्षु के कहने पर सिर भी पका दिया गया। जब भोजन तैयार कर परोस दिया और वैरवर खाने के लिए बैठा, तो उन्होंने खाने से इनकार कर दिया कि पहले सिरुत्तोण्ड अपने पुत्र को बुला कर अपने साथ बैठाये, तब ही वह भोजन करेंगे। पहले तो सिरुत्तोण्ड ने कहा कि उनका पुत्र अभी नहीं आ सकता; किन्तु उनके बारम्बार आग्रह करने पर वह इस प्रकार सीरालन को, भगवान् में अत्यन्त श्रद्धा और गहन विश्वास रखते हुए, पुकारने लगे मानो वह विद्यालय से आ रहा हो। उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उनकी पुकार के उत्तर में बालक ने जवाब दिया और गली के दूसरे किनारे से ठीक इसी प्रकार आता दिखायी दिया मानो विद्यालय से आ रहा हो। बालक को ले कर वह घर में प्रविष्ट हुए; किन्तु तब वहाँ न पका हुआ मांस था, न ही वैरवर। कितनी व्याकुलता उन्हें हुई! किन्तु तभी भगवान् शिव पार्वती और साथ में सुब्रह्मण्यम् सहित प्रकट हो गये। उन्होंने पति-पत्नी दोनों ही को अपने प्रति तीव्र भक्ति और गहन श्रद्धा के लिए अत्यन्त आशीर्वाद दिये तथा सिरुत्तोण्ड को परिवार सहित अपने साथ ले गये। साधु के भोजन के लिए अपने पुत्र का बलिदान कर देने वाले भक्त को भगवान् ने ऐसा वरदान दिया।

आप सबके हृदय में भगवान् के प्रति ऐसा उत्कट प्रेम और ऐसा दृढ़ विश्वास व गहन भक्ति विकसित हो! सिरुत्तोण्ड के आशीर्वाद आप सब पर हों!

भगवान् शिव की माता

प्राचीन काल में दक्षिण भारत में कारैक्काल में धनदत्तन नाम का एक धनवान् व्यापारी रहता था। भगवान् के आशीर्वाद से उसके एक पुत्री का जन्म हुआ। कन्या का नाम

पुनितावति रखा गया। यही पुनितावति बाद में कारैक्काल अम्मैयार के नाम से जानी गयी। यह नायनारों (दक्षिण भारत के प्रसिद्ध शिव-भक्तों) में से एक मानी जाती है।

पुनितावति अत्यन्त विदुषी, सुन्दर तथा पुण्यात्मा थी। वह भगवान् शिव की स्तुति तथा नाम-स्मरण किया करती तथा मस्तक पर भस्म धारण किये रहती थी।

नागपट्टिणम के धनाढ्य व्यापारी के पुत्र परमदत्तन के साथ उसका विवाह हुआ। परमदत्तन भी अत्यन्त सुन्दर और बुद्धिमान् व्यक्ति थे। वह अत्यन्त उच्च चरित्र से सम्पन्न थे। अपने पिता से आज्ञा ले कर वह अपने श्वसुर के घर रहते थे।

पुनितावति अत्यन्त भक्तिभाव और प्रसन्नतापूर्वक नित्य शिव-भक्तों को भोजन खिलाया करती थी तथा भगवान् के भजन गाते हुए श्रवण किया करती थी। वह सदैव **'अतिथि देवो भव'** वेदोक्ति का स्मरण किया करती थी। भक्तों को भोग लगा कर शेष अन्नभोग को दोनों पति-पत्नी अत्यन्त प्रेमपूर्वक अमृततुल्य मान कर ग्रहण करते थे।

एक दिन एक रमते साधु उनके घर आये तथा परमदत्तन को दो पके हुए आम दे गये। परमदत्तन ने वह आम अपनी पत्नी को दे दिये और स्वयं अपने काम में लग गये। बाद में एक कोई भक्त आये और अत्यन्त भूखे होने के कारण शीघ्र कुछ खाने को माँगा। भोजन अभी तैयार नहीं था; अत: उन्होंने इन दोनों आमों में से एक आम और साथ में दूध दे दिया।

परमदत्तन जब घर आये और भोजन कर चुके, तो पुनितावति ने उन्हें शेष बचा हुआ दूसरा आम दिया। परमदत्तन को वह आम अति-सुस्वादु लगा; अत: उन्होंने दूसरा आम भी लाने को कहा। पुनितावति ने भगवान् शिव से प्रार्थना की, तत्क्षण एक आम उनके हाथों में आ गिरा। यह एकदम पहले आम के जैसा ही था। उन्होंने वह अपने पति को दे दिया। जब खाया तो उन्हें यह पहले आम से सहस्र गुणा अधिक सुस्वादु प्रतीत हुआ। उन्होंने पत्नी से पूछा—"प्रिय, यह आम तुम्हें कहाँ से मिला?" उन्होंने सारी बात बता दी। परमदत्तन ने कहा—"मुझे एक आम और ला दो।" पलक झपकते ही पुनितावति ने एक और आम ला दिया।

परमदत्तन आश्चर्यचकित रह गये। वह समझ गये कि उनकी पत्नी भगवान् की अति-प्रिय भक्त है। उन्होंने मन में सोचा—"मैं अति-पापी हूँ। भगवान् शिव की प्रिय भक्त को मैंने अपनी दासी समान समझा। अब मैं उसे अपनी पत्नी नहीं समझ सकता। किन्तु उसे अकेला छोड़ देना भी पाप होगा। मैं क्या करूँ?"

वह उलझन में पड़ गये। अन्तत: उन्होंने पुनितावति से अलग होने का ही निश्चय किया। उन्होंने कहा कि वह व्यापार के कार्य से कहीं बाहर जा रहे हैं। इस प्रकार उसकी

अनुमति से वह मदुरै चले गये और वहीं अन्य विवाह करके रहने लगे। इस दूसरी पत्नी से उन्हें एक पुत्री हुई, जिसका नाम उन्होंने पुनितावति ही रखा।

पुनितावति अत्यन्त व्याकुलता से पति के लौटने की प्रतीक्षा करती रही। जब निश्चित समय पर भी वह नहीं लौटे, तब वह अत्यन्त शोकाकुल हो गयी। कुछ समय पश्चात् उन्हें पति के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात हुआ, तब वह उनसे मिलने मदुरै की ओर चली।

पदरदत्तन ने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उनसे भेंट की और उनके चरणों में प्रणाम करके बोले—"मैं घोर संसारी पुरुष हूँ। मैं कामी और लोभी हूँ। आप देवी हैं। आपको अब पत्नी के रूप में मैं नहीं देख सकता। कृपया आप मुझे क्षमा कर दें। मेरी यही प्रार्थना है।"

पुनितावति ने उत्तर दिया—"मेरे स्वामी! मैंने अपने यौवन और सौन्दर्य को आपके लिए सँभाल कर रखा था। अब यदि आप नहीं चाहते, तो मैं अपने प्रभु की ओर उन्मुख हो जाऊँगी।"

उन्होंने आस-पास एकत्रित लोगों में अपने समस्त आभूषण वितरित कर दिये। वह ब्राह्मणों की सेवा-पूजा करने लगीं तथा योग-बल से अपनी समस्त देह सुखा कर कंकाल मात्र रह गयी। अब वह उत्तर की ओर अग्रसर हुईं।

वह कैलास पर्वत की ओर चलीं। पावन हिमालय को पैरों से रौंदते हुए चलना उन्होंने पाप समझा; अत: अपने तप-बल से वह सिर के बल चलने लगीं।

पार्वती ने भगवान् शिव से पूछा—"हे प्रभु! यह कौन इस भाँति चल कर हमारी ओर आ रहा है?" भगवान् शिव ने उत्तर दिया—"यह पवित्र आत्मा स्त्री मेरी माता है, जिसने मेरे भक्त को सदैव भोजन खिलाया है।"

भगवान् स्वयं उठ खड़े हुए और पुनितावति की ओर चल कर उनका स्वागत करते हुए बोले—"मेरी प्यारी माँ, आप ठीक तो हैं?"

पुनितावति ने भक्तों को माँ की भाँति भोजन कराया, भक्तों में और भगवान् में कोई अन्तर नहीं है।

उन्होंने कहा है—"भक्त मेरे हृदय में हैं, और मैं उनके हृदय में हूँ। वह मेरे अतिरिक्त अन्य किसी का चिन्तन नहीं करते और मैं उनके सिवा अन्य किसी को स्मरण नहीं करता।"

परम पिता परमात्मा प्रत्येक प्राणी के हृदय में स्थित हैं। अत: अतिथि पूजनीय हैं। श्रुतियों का कथन है : **"अतिथि देवो भव"**—अतिथि को भगवान् समझो!

तिरेसठ नायनार सन्त

नायनार भगवान् शिव के सच्चे तथा उत्कट भक्त थे। कुछ अप्पर और सम्बन्धर के समकालीन थे। अत्यल्प ही ने उनमें से आगमों का अध्ययन किया हुआ था। अधिकांश तो शुद्ध सरल किन्तु तीव्र भक्त ही थे। उन्होंने भगवान् के भक्तों की सेवा की और भगवान् के प्रति परिपूर्ण आत्म-समर्पण किया। दर्शन से वह पूर्णतया अनभिज्ञ ही थे। उन्होंने चरियै साधना की। उन्होंने मन्दिर-प्रांगणों की सफाई की, भगवान् के लिए पुष्पमालाएँ बनायीं, मन्दिरों में दीप प्रज्वलित किये, फूलों के बगीचे लगाये और भगवान् के भक्तों को भोजन कराया अथवा उनकी सेवा की। शिव-भक्तों की सेवा भगवान् की पूजा-अर्चना से भी अधिक उत्तम मानी जाती थी।

वास्तव में वांछित वस्तु तो सच्ची भक्ति है। कण्णप्प व्याध शैव सिद्धान्त, दर्शन अथवा उपासना-पद्धति से पूर्णतया अनभिज्ञ था; किन्तु अपनी भक्ति की तीव्रता और गहनता से मात्र छह दिनों में ही शिव-भक्तों के लिए सर्वोच्च प्राप्तनीय परम पद प्राप्त कर लिया। कण्णप्प की भक्ति सामान्य शिव-भक्तों की भक्ति से बिलकुल ही भिन्न प्रकार की थी।

नायनारों में से कुछेक के नाम इस प्रकार से हैं—नेडुमार नायनार, कण्णप्प नायनार, सिरुत्तोण्डर, अप्पूदि अदिगल , मुरुग नायनार, तिरुनीलकण्ठ नायनार, कुंगलियक्कलय नायनार, गणनाथ नायनार, चेरमान पेरुमान नायनार, सोमासिमार नायनार इत्यादि।

तिरुनीलकण्ठ नायनार चिदम्बरम् के एक कुम्हार थे। एनादि नायनार ताड़ी बनाने वाले थे। तिरुकुरिप्पुत्तोण्डर धोबी थे। अरिपत्त नायनार जाति से मछुआरे थे। उच्च जाति के शिव-भक्तों ने अन्य जातियों के भक्तों के संग बैठ कर भोजन किया। उनमें जाति-पाति का भेदभाव नहीं था। उन्होंने भगवान् शिव के प्रति भक्तिमय जीवन को, जात-पाति के तुच्छ भेदों से अधिक महत्त्व दिया।

तिरुनीलकण्ठ नायनार एक दिन पूजा कर रहे थे। भगवान् के चित्र पर एक मकड़ी गिर गयी। उनकी पत्नी ने उसे तुरन्त उड़ा दिया तथा जहाँ वह गिरी थी, उस स्थान पर थूक दिया। इससे सन्त अत्यन्त चिढ़ गये। उन्होंने सोचा कि चित्र अशुद्ध हो गया है। उन्होंने अपनी पत्नी का परित्याग कर देना चाहा। किन्तु उन्हें स्वप्न में भगवान् ने दर्शन दिये और दिखाया कि जहाँ मकड़ी गिरी थी उतनी जगह जहाँ थूका गया था, के अतिरिक्त समस्त शरीर पर फफोले पड़ गये थे। इससे सन्त की आँखें खुल गयीं। अब उन्हें समझ में आया कि शास्त्रज्ञान की अपेक्षा सच्ची भक्ति की भावना का होना अधिक अनिवार्य है।

सिरुत्तोण्डर ने अपने हाथों से अपने पुत्र की हत्या की तथा शिव-भक्तों को प्रसन्न करने के लिए उसका मांस पकाया। वह धर्मग्रन्थों के नियमों का उल्लंघन करने को तत्पर हो गया, किन्तु शिव-भक्ति साधना का परित्याग नहीं किया। उनमें कोई विद्वत्ता नहीं थी, वह कोई दार्शनिक और योगी नहीं था; किन्तु शिव-भक्तों के प्रति उसकी निष्ठा अकथनीय थी। शिव-भक्त की सेवा के लिए कैसा महान् बलिदान उसने दिया! भगवान् शिव पार्वती और सुब्रह्मण्यम् सहित प्रकट हो गये और सिरुत्तोण्डर को वरदान दिया। सिरुत्तोण्डर के पुकारने पर उनका पुत्र भागता हुआ उनकी ओर आ गया। भक्त और पके मांस की थाली अदृश्य हो गये। भगवान् अपने भक्तों के लिए सब-कुछ कर देते हैं।

कुंगलियक्कलय नायनार, तिरुक्कडवूर के मन्दिर में धूप-अगरबत्ती ले जाया करते थे। उनका सारा धन चला गया, घर में कुछ भी शेष न बचा। तब उनकी पत्नी ने एक थाली दे कर कहा कि इसे बाजार में दे कर इसके बदले कुछ चावल खाने को ले आओ। नायनार उसके बदले धूप-अगरबत्ती खरीद कर मन्दिर ले गये। उस दिन भगवान् ने उनकी पत्नी को पर्याप्त धन-सम्पत्ति का वरदान दिया और नायनार को घर जा कर भोजन करने के लिए कहा। उसके बाद नायनार को समाचार मिला कि राजा किसी भी प्रकार से शिवलिंग को सीधा खड़ा करवा सकने में सफल नहीं हो रहा है। नायनार तिरुप्पण्डाल मन्दिर में गये और शिवलिंग से बाँधी गयी रस्सी को अपनी गरदन में बाँध कर खींचने लगे। उसी समय शिवलिंग सीधा खड़ा हो गया। सबको उनकी भक्ति की गहनता का बोध हो गया। नायनार को वेदों अथवा आगमों का कोई ज्ञान न था; किन्तु वह भगवान् के सच्चे भक्त थे। यह सच्ची भक्ति का होना ही आवश्यक है। शास्त्र-ग्रन्थों मात्र का अध्ययन, भक्ति के अभाव में, व्यक्ति में अभिमान उत्पन्न करके प्रभु से दूर कर देता है।

कण्णप्प नायनार ने स्वयं अपना नेत्र निकाल कर भगवान् के घायल नेत्र के स्थान में लगा दिया था। वह दूसरा नेत्र भी लगाने को तत्पर हो गये थे; किन्तु भगवान् ने ऐसा करने से रोक दिया। कण्णप्प को दृष्टि पुनः प्राप्त हो गयी; इतना ही नहीं, भगवान् ने उन्हें अपने साथ रख लिया और वह भी भगवान् ही बन गये। उन्होंने कोई रुद्र अथवा चमकम् पाठ नहीं किया था, वह ब्राह्मण भी नहीं थे। वह तो जाति और कर्म से व्याध थे। उन्होंने अपने मुख के कुल्ले के जल से अभिषेक करके, अपने केशों से निकाल कर पुष्प चढ़ा कर तथा भुना हुआ मास स्वयं चख कर बढ़िया-बढ़िया भगवान् को भोग लगा कर अपने ही ढंग से पूजा की। पण्डित और शास्त्री एक सहस्र एक रुद्र पाठ करते हैं; किन्तु भगवान् से दूर ही रहते हैं, क्योंकि उनमें सच्ची भक्ति रत्ती-भर भी नहीं होती। उनके हृदय पाषाण सदृश्य, ऊसर तथा पाप-भावना के कारण कठोर हो गये होते हैं।

इयरपगै नायनार ने शपथ ली हुई थी कि शिव-भक्त उनसे जो भी कुछ माँगेंगे, वही वह दे देंगे। भगवान् शिव ने उनकी परीक्षा लेनी चाही। वह एक ब्राह्मण शिव-भक्त किन्तु व्यभिचारी व्यक्ति के वेष में आये और नायनार से बोले—"मुझे अपनी पत्नी दे दो।" नायनार ने प्रसन्नतापूर्वक ऐसा ही किया। उनके सगे-सम्बन्धी इस पर विरोध प्रकट करते हुए उनसे झगड़ने लगे। नायनार ने उस छद्मवेषी को सुरक्षित वन में पहुँचा दिया। किन्तु वह छद्मवेषधारी योगी वहाँ पहुँचते ही अदृश्य हो गया और उनके समक्ष अपने वास्तविक रूप में वृषभ पर आरूढ़ भगवान् शिव ने प्रकट हो कर दर्शन दिये।

एरिपत्त नायनार ने उस हाथी और पाँच मनुष्यों की भी हत्या कर दी थी जिन्होंने शिवकामि अण्डार के पास के भगवान् को अर्पित करने वाले पुष्प नष्ट कर दिये थे। भगवान् शिव ने तब प्रकट हो कर राजा की, नायनार की, पाँच मृत पड़े व्यक्तियों की तथा हाथी की भी रक्षा की।

अरिवट्टाय नायनार इसलिए अपनी गरदन काट डालने को तत्पर हो गये थे कि वह भगवान् को दिये जाने वाले लाल चावल का भोग देने में असमर्थ हो गये थे। भगवान् शिव ने उन्हें न केवल ऐसा करने से रोका, प्रत्युत उन्हें अपने शिवलोक में भी ले गये।

मूर्ति नायनार मदुरै में भगवान् शिव को चन्दन घिस कर समर्पित किया करते थे। एक दिन जब चन्दन की लकड़ी न मिली, तो वह पत्थर पर जोर-जोर से अपनी कोहनी घिसने लगे। भगवान् शिव का हृदय द्रवित हो गया। नायनार राजा बन गये। उन्हें भगवान् के शिवलोक में वास मिला।

नन्दनार शूद्र जाति के थे। वह अग्नि में प्रवेश कर गये और उसमें से पुनः भगवान् शिव की कृपा से यज्ञोपवीत धारण किये हुए तपस्वी के रूप में बाहर निकल आये।

तिरुकुरिप्पतोण्डर जाति से धोबी थे। उन्होंने शिव-भक्तों के कपड़े धोये। भगवान् ने उनकी परीक्षा लेने का विचार किया। वे एक निर्धन व्यक्ति के रूप में अत्यन्त मैला फटा चीथड़ा धोने के लिए ले कर आये। सन्त धोबी ने उसे धो दिया; किन्तु अत्यधिक वर्षा के कारण सुखा न सके। उनका हृदय बहुत दुःखी हुआ और वह कपड़े धोने वाले पत्थर पर अपना सिर मारने लगे। भगवान् प्रकट हुए और उन्हें मोक्ष प्रदान कर दिया।

नमिनन्दि अडिगल ने भगवान् की कृपा प्राप्त करके पानी से ही दीपक जला दिये। भगवान् का भक्त प्रभु की कृपा द्वारा कुछ भी कर सकने में सक्षम है।

कलिकम्ब नायनार शिव-भक्तों को अपने घर बुला कर उनके चरण धो कर भोजन कराया करते थे। उनकी पत्नी भी इस कार्य में उनकी सहायता किया करती थी। एक बार एक व्यक्ति, जो पहले उनका सेवक (दास) हुआ करता था, शिव-भक्त के रूप में उनके घर

आया। नायनार सदा की भाँति उसके पैर धोने लगे; किन्तु उनकी पत्नी ने सहायता करने से इनकार कर दिया। नायनार ने उसके हाथ काट डाले और स्वयं उसकी सेवा में लग गये। उन्हें भी शिवलोक की प्राप्ति हुई।

कलिय नायनार तेल ला कर मन्दिर में दीप जलाया करते थे। उनकी समस्त धन-सम्पत्ति चली गयी। उन्होंने अपनी पत्नी को भी बेच देने की सोची; किन्तु कोई भी खरीददार न मिला। तब उन्होंने तेल की जगह अपना रक्त डाल कर दीप प्रज्वलित करने का विचार किया। जब वह ऐसा कर रहे थे, तभी भगवान् शिव प्रकट हो गये और उसे वरदान दिये।

कणम्पुल्लै नायनार भी शिव मन्दिर में दीप जलाया करते थे। इसी में उनकी धन-सम्पत्ति समाप्त हो गयी। वह घास काट कर बेचने लगे और उससे प्राप्त धन से दीप जलाने लगे। एक दिन घास बिकी नहीं, तो घास ही जलाने लगे। एक दिन फिर उन्हें घास भी नहीं मिली, तब उन्होंने अपने केश जलाने का निश्चय किया। ऐसा करते ही भगवान् ने उन्हें दर्शन दिये तथा सालोक्य मुक्ति प्रदान की।

सन्त चेरुत्तुणै नायनार ने रानी की नाक काट डाली; क्योंकि रानी ने उस फूल को उठा कर सूँघ लिया था जो भगवान् को चढ़ाने के लिए चयन किया गया था और अचानक गिर पड़ा था। राजा को जब यह ज्ञात हुआ, तो उसने रानी को और भी दण्डित करने के लिए उसका सर भी काट डाला। आकाश से पुष्प-वर्षा होने लगी। राजा कलरुंग नायनार भगवान् के कृपापात्र बने।

नायनार शिव सिद्धान्त अथवा शैव दर्शन के सम्बन्ध में विशेष ज्ञान नहीं रखते थे। उनका इससे कुछ विशेष लेन-देन भी नहीं था। उन्होंने शिव-आराधना को ही अत्यधिक महत्त्व दिया। भले ही सामान्य दृष्टि से वह उचित हो अथवा न हो। शिव-उपासना के बाह्य स्वरूप को उन्होंने परम आवश्यक माना। अपने जीवन तक को न्योछावर करके उन्होंने इन बाह्य विधानों का पालन किया। धर्मान्धिता को भी उन्होंने इसके विपरीत नहीं माना।

इन नायनारों के जीवन-चरितों से आपको स्पष्टतया यह ज्ञात हो जायेगा कि व्यक्ति किसी भी जाति से हो, कुछ भी कर्म करता हो, वह भगवान् का कृपापात्र हो सकता है।

उस समय के शैव दृढ़ शिव-भक्त थे। इन नायनारों पर सामान्य नीति-नियम लागू नहीं कर सकते।

अध्याय १३

उत्सव और पर्व

अरुणाचल का ज्योति पर्व

(कार्तिकै दीपम्)

भगवान् शिव ने तमिलनाडु के तिरुवन्नमलै में पर्वत का रूप धारण किया। उन्होंने यहाँ पर स्वयं को एक-दूसरे से बड़ा समझ कर परस्पर झगड़ते हुए ब्रह्मा और विष्णु के अभिमान को कुचल दिया था। एक दिन जब भगवान् शिव समाधि में थे, तब पार्वती उन्हें छोड़ कर अरुणाचल पर्वत पर चली गयी। वहाँ उन्होंने गहन तप किया। वह गौतम ऋषि की अतिथि बन कर रहीं। इसी समय के बीच दुर्गा ने पार्वती के आदेश से महिषासुर का वध किया था। पार्वती ने भगवान् शिव के अरुणाचलेश्वर के रूप में दर्शन किये। भगवान् ने पार्वती को पुनः अपने वामांग में ग्रहण करके अर्धनारी (अपिताकु चम्बा) बनाया।

अरुणाचलेश्वर तेजोलिंग है। अरुणाचल पंचभूत क्षेत्र के अग्नि-तत्त्व का प्रतीक है।

अरुणाचलम् तिरुवन्नामलै का अन्य नाम है। प्राचीन समय में अनेकों सिद्ध पुरुष इस पर्वत पर रहे। इडैक्काडर, अरुणगिरिनादर यहीं रहे। यह स्थान ज्योति पर्व (कार्तिकै दीपम्) के लिए प्रसिद्ध है। जो कि प्रत्येक वर्ष कार्तिक मास (नवम्बर) में जब पूर्णिमा के दिन कार्तिकै नक्षत्र में आता है, तब मनाया जाता है। सन्ध्या के समय, लगभग ५ या ५.३० बजे के आस-पास यह प्रकाश किया जाता है। पर्वत में एक विशाल गड्ढे में घी भर दिया जाता है, साथ ही तेल और कर्पूर भी डाल देते हैं, तब एक बहुत बड़ी बत्ती उस घी में डाल कर प्रज्वलित कर दी जाती है। इस प्रकाश को १६ मील दूर से भी देखा जा सकता है। यह मान्यता है कि जो कोई भी इस प्रकाश के दर्शन कर लेता है, उसका पुनः जन्म नहीं होता। यह ज्योति निरन्तर तीन मास तक प्रज्वलित रहती है।

अरुणाचल पर्वत के शिखर पर इस ज्योति को आवृत्त कर दिया जाता है। सन्ध्या के ५.३० बजे ज्यों-ही कार्तिकै नक्षत्र उदित होता है, लोग मन्दिर में से ईश्वर-विग्रह को बाहर ले आते हैं। तब पर्वत की ओर से आकाश में एक आतिशबाजी छोड़ दी जाती है। पर्वत पर जो व्यक्ति ज्योति का प्रभारी होता है, वह उसी क्षण आवरण को हटा देता है। तब समस्त

एकत्रित व्यक्ति विशाल ज्योति को हाथ जोड़ कर दर्शन कर प्रणाम करते हैं। वह सब उच्च स्वर में 'हरहरा, हरोहरा' का उद्घोष करते हैं।

इसका गुह्य अर्थ यह है कि जो भी व्यक्ति सतत ध्यान के द्वारा अपनी हृदय-गुहा में निरन्तर प्रज्वलित ज्योतियों की परम ज्योति के दर्शन करता है, वह अमरत्व (मोक्ष) प्राप्त करता है। अरुणाचल का ज्योति पर्व आपके लिए यह सन्देश ले कर आता है कि आत्म-तत्त्व अथवा भगवान् शिव स्वयं-प्रकाश ज्योति स्वरूप हैं, ज्योतियों की परम ज्योति हैं, सूर्यों के भी सूर्य हैं।

पर्वतों की विशाल ज्योति भगवान् शिव अथवा परमात्मा की द्योतक है। अग्निशिखा (आतिशबाजी) जीव अथवा जीवात्मा है। आवरण जीवात्मा को आवृत्त करके रखने वाली अविद्या है। अग्निशिखा (आतिशबाजी) आवरण को भस्मीभूत करके स्वयं विषद दीप-ज्योति में लीन हो जाती है। इसी प्रकार यदि आप ध्यान तथा विचार की अग्नि द्वारा अविद्या को नष्ट कर दें, तो आप स्वयं को उस ज्योतियों की ज्योति परमात्मा में विलीन कर सकते हैं।

कांचीवरम्, जम्बूकेश्वर, तिरुवन्नमलै, कालाहस्ति और चिदम्बरम् पंच भूतलिंग क्षेत्र हैं। कांचीवरम् पृथ्वी-लिंग है, अपस-लिंग जम्बूकेश्वर है, तेजो-लिंग तिरुवन्नमलै है, वायु-लिंग कालाहस्ति है और आकाश-लिंग चिदम्बरम् है।

इस सम्पूर्ण जगत् को बनाने वाले पंचभूतों की प्रतीक 'पंच-त्रिकोणीय-आकृति' के, यह पाँचों स्थान पाँच कोणों की नोक को अभिव्यक्त करते हैं। तेजस्-तत्त्व पाँच भूतों के मध्य में है। यह उस मार्ग का निर्माण करता है जिसमें से परमात्मा अथवा भगवान् शिव जीवात्मा के द्वारा जाना, देखा अथवा अनुभव किया जा सकता है। ध्यान की अग्नि जीव की अविद्या को जला कर परम प्रकाश में लीन हो जाने में उसकी सहायता करती है।

वेदान्ती के मतानुसार वाक् ब्रह्म है। वह सिद्ध करता है कि वाक् अग्नि है और वह इसी में से अपने एकत्व के सिद्धान्त का परिणाम निकालता है। अग्नि वाक् का अधिष्ठाता देवता है। वाक् अग्नि है। वाक् ब्रह्म है।

पंचमूर्ति अथवा पंचतत्त्व उस समय मिलते हैं, जब न रात होती है न ही दिन। जब सूर्य और चन्द्रमा दोनों ही चमकते हैं। पर्वत का प्रकाश सोलह मील की दूरी से भी दिखायी देता है। यह ब्रह्म अथवा 'पूर्णकला' का द्योतक है।

योगी ध्यानावस्था में सिर की चोटी (शिखर) में प्रकाश के दर्शन करता है (जिसे अरुणाचल पर्वत शिखर अभिव्यक्त करता है) और निर्विकल्प समाधि में स्वयं को लीन कर देता है।

अनव, कर्म और माया रूपी तीनों अशुद्धियों को ध्वंस कर दें। आत्मज्ञान अथवा शिवज्ञान की अग्नि में मन, इन्द्रियों और वासनाओं को जला डालें। पूर्ण प्रबोधन को प्राप्त करें और उस ज्योतियों की परम ज्योति के दर्शन करें जो मन, बुद्धि, सूर्य, तारे, विद्युत् और अग्नि सबको उद्भासित करती है। यही वास्तविक 'कार्तिकै दीपम्' है।

प्रकाशों का वह परम प्रकाश आप सबको उद्भासित करे! भगवान् शिव आपको और अधिक प्रकाश प्रदान करें! आप उस परम प्रकाश में स्वयं को विलय कर दें और अमरत्व का परम आनन्द प्राप्त करें!

विजयादशमी

भगवान् का मातृ रूप शक्ति, वैभव और ज्ञान का स्रोत है तथा इसकी नवरात्र अथवा दशहरे के दिनों में दुर्गा, लक्ष्मी और सरस्वती के रूप में पूजा की जाती है। प्रत्येक रूप की तीन रात्रियों में पूजा होती है।

विजयादशमी आश्विन मास के शुक्ल पक्ष का दशम दिवस होता है। यह अत्यधिक भावपूर्ण उत्सव है जो समस्त भारतवर्ष में अत्यधिक धूमधाम से मनाया जाता है।

इस विजयादशमी को ही वीर पाण्डव अर्जुन ने, दुष्ट कौरवों से युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व देवी की उपासना की थी। इसी दिन श्री राम के द्वारा रावण का वध किया गया था।

यह विजय का दिवस है। बालकों को इस दिन विद्यालय में भेजना प्रारम्भ किया जाता है। उन्हें सर्वप्रथम **'हरि ॐ'**, **'नारायणाय सिद्धम्'**, **'ॐ श्री गणेशाय नमः'**, **'ॐ श्री हयग्रीवाय नमः'** सिखाया जाता है। जिज्ञासु साधकों को इस दिन मन्त्रदीक्षा दी जाती है।

इस स्मरणीय दिवस पर बढ़ई, दर्जी, राजमिस्त्री, कलाकार, गायक, वादक, टाइप करने वाले तथा अन्य सभी कर्मचारी अपने-अपने औजारों, उपकरणों और यन्त्रों की पूजा करते हैं। यह आयुध-पूजा है। वे इन औजारों व उपकरणों में शक्ति के दर्शन करते हुए अपनी सफलता, सम्पन्नता और शान्ति हेतु देवी की उपासना करते हैं।

श्री राम ने 'संयुक्त भारत' स्थापित किया। श्री राम ने रावण को विजित किया, जिसने अपनी राजधानी तो लंका में बनायी हुई थी; किन्तु अपना साम्राज्य भारत के अधिकांश क्षेत्र में फैलाया हुआ था। विजयादशमी, एक संयुक्त भारत साम्राज्य की जन्म-जयन्ती है। यह राक्षसराज रावण पर श्री राम की महान् विजय के स्मरणोत्सव के रूप में मनायी जाती है। यह अधर्म के ऊपर धर्म की विजय का दिवस है।

अंगद, हनुमान् तथा अन्य सबने धर्मनिष्ठ विभीषण के नेतृत्व में श्री राम की रावण के ऊपर विजय को अत्यन्त धार्मिक उत्साह से मनाया, मैत्रीभाव से परस्पर एक-दूसरे का आलिंगन किया तथा श्री राम के प्रति गहन श्रद्धा-भक्ति को अभिव्यक्त किया। उसी दिन से सभी हिन्दू इस दिन को महान् विजय-दिवस के रूप में प्रतिवर्ष मनाते आ रहे हैं।

रावण के ऊपर राम की विजय वास्तव में भौतिकता पर आत्म-तत्त्व की विजय है, सत्त्व की रजस् और तमस् पर विजय है, आत्मा की मन, इन्द्रियों और देह पर विजय है, भौतिकवाद पर आदर्शवाद की विजय है, बुराई पर भलाई की विजय है, प्रेम और सत्य की घृणा और असत्य पर विजय है, आत्म-बलिदान और त्याग की स्वार्थपरता और आधिपत्य पर विजय है, उत्पीड़ित की उत्पीड़क अत्याचारी पर विजय है, श्रमिकों की पूंजीपतियों और साम्राज्यवादियों पर विजय है। इस दिवस की स्मृति दीन-हीन, दुःखी तथा निराश दमित व्यक्तियों के हृदयों में आशा और प्रसन्नता भर देती है। यह धनवानों, शक्तिशालियों और विद्वानों के अभिमान को विनम्रता में परिवर्तित कर देती है तथा उन्हें निर्धन, निर्बल और अशिक्षितों को प्रेम तथा भ्रातृभाव से आलिंगन करने के लिए प्रेरित करती है। यह सभी वर्ग के लोगों में परस्पर एकत्व की भावना जाग्रत करती है।

इस प्रकार विजयादशमी वैश्व एकता, भ्रातृत्व, शान्ति और आनन्द की भावना जाग्रत करने वाला उत्सव बन गया है।

शाक्त पुराण इसकी व्याख्या अन्य ढंग से करते हैं। राम ने अपनी निजी वीरता और पराक्रम के द्वारा विजित होने का प्रयत्न किया; किन्तु असफल रहे। अन्ततः अपना अहंकार महाशक्ति को समर्पित करके वह उन्हीं के हाथों का उपकरण मात्र बन गये। तब वस्तुतः देवी ने रावण के साथ युद्ध किया और श्री राम को विजय दिलायी।

देवताओं और असुरों में निरन्तर युद्ध चलता रहता है। मानव-मन के भीतर ही सत्त्व और रज-तम के बीच, दुर्भावनाओं और सद्भावनाओं के मध्य यह संघर्ष अविराम चलता रहता है, देवता सात्त्विक वृत्तियों के तथा असुर दुष्प्रवृत्तियों के द्योतक हैं। जिस दिन व्यक्ति काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर इत्यादि कुप्रवृत्तियों को नष्ट करके देवी माँ की कृपा से आत्मज्ञान अथवा प्रबोधन प्राप्त कर लेता है, वही दिन उसके लिए वास्तव में विजयादशमी का अथवा आत्म-विजय का दिन है।

देवी माँ दुर्गा, मानव मात्र को धर्म और सत्य का मार्ग; शान्ति, आनन्द और सन्तोष का मार्ग दर्शायें और परम आनन्द प्रदान करें!

नवरात्र (दशहरा)

नवरात्र भगवान् की मातृ रूप में पूजा करने का हिन्दुओं का सर्वोच्च महोत्सव है। समस्त विश्व में हिन्दू धर्म ही एकमात्र ऐसा धर्म है जिसमें भगवान् के मातृ रूप पर इतना अधिक बल दिया गया है। समस्त मानवीय सम्बन्धों में माँ का सम्बन्ध प्रियतम और मधुरतम है। अत: भगवान् को मातृ रूप में देखना समुचित ही है।

दशहरा, दुर्गापूजा तथा नवरात्र, एक ही हैं। दुर्गा भगवान् शिव की शक्ति हैं। वह परमात्मा की शक्ति की द्योतक हैं। भगवान् और भगवान् की शक्ति में कोई भेद नहीं है। वह संसार के काम-काज की देख-रेख करती हैं। दुर्गा के रूप में देवी माँ को दस हाथों में दस विभिन्न अस्त्र धारण किये हुए दिखाया गया है। उनका वाहन शेर है। यह दर्शाता है कि समस्त शक्तियों पर, यहाँ तक कि पाशविक क्रूर शक्तियों—जिनका प्रतीक शेर है—पर भी उनका नियन्त्रण है।

ऋग्वेद संहिता के देवीसूक्त में आप पायेंगे कि अम्भिर्न ऋषि की पुत्री वाक् ने उस देवी माँ के साथ अपने निजस्वरूप का साक्षात्कार कर लिया था, जो कि परमात्मा की शक्ति के रूप में समस्त विश्व के देवताओं, मनुष्यों, पशुओं और जलचर इत्यादि सभी प्राणियों में व्याप्त है।

केनोपनिषद् में आता है कि देवी भगवती ने इन्द्र तथा अन्य सभी देवताओं को ज्ञान प्रदान किया और कहा कि देवताओं ने असुरों पर विजय, भगवान् की शक्ति की सहायता से ही प्राप्त की है।

महिषासुर नामक राक्षस देवताओं पर अत्यधिक अत्याचार कर रहा था। देवताओं ने सहायता के लिए माँ दुर्गा का आह्वान किया। देवी माँ दसभुज रूप में प्रकट हुईं, उनके दसों हाथों में विभिन्न प्रकार के दस आयुध धारण किये हुए थे। वह निरन्तर नौ दिवस और नौ रात तक असुरों से युद्ध करती रहीं और दसवें दिन तक एक-एक करके समस्त असुरों को उनकी सेनाओं सहित समाप्त कर दिया। दसवें दिवस की सन्ध्या को सेनाओं सहित समस्त असुर विध्वंस हो जाने से वह विजयादशमी कहलायी। ये दस दिन देवी की उपासना के पावन दिवस हैं।

बंगाल के हिन्दू भगवती दुर्गा की उपासना विजयादशमी से तीन दिन पूर्व प्रारम्भ कर देते हैं और विजयादशमी को विसर्जन (जल-प्रवाह) समारोह सम्पन्न करते हैं। मार्च-अप्रैल मास में वसन्त-पूजा के समय भी दुर्गा-पूजा की जाती है।

हिमालय के राजा हिमवान् की पत्नी अपनी पुत्री दुर्गा से मिलने को लालायित होती है, तब भगवान् शिव-दुर्गा को वर्ष में तीन दिन के लिए अपनी माता से मिलने भेज देते हैं। दुर्गा-पूजा का उत्सव माँ दुर्गा के इस संक्षिप्त आगमन के उपलक्ष्य में मनाया जाता है जो उनके कैलास वापस लौटने के दिन अर्थात् विजयादशमी को समाप्त हो जाता है।

रावण से युद्ध से पूर्व भगवान् श्री राम ने दुर्गा भगवती की सहायता के लिए उनका आह्वान इन्हीं विजयादशमी से पूर्व के दिनों में किया था। उसके पश्चात् युद्ध हुआ और माँ शक्ति की सहायता से विजय प्राप्त की।

बंगाल में दुर्गा-पूजा एक बड़ा त्योहार है। जो लोग घरों से दूर रहते हैं, वह सब दुर्गा-पूजा के दिनों में अपने-अपने घर लौट आते हैं। माताओं का सुदूर निवासी पुत्र-पुत्रियों से तथा पत्नियों का अपने पतियों से मिलन होता है।

कुम्हार कलाकार मूर्तियाँ बनाने में अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं, चित्रकार सुन्दर चित्रों द्वारा अपनी सर्वोत्तम कला अभिव्यक्त करते हैं, गायक अपने गायन-वादन की कला तथा पुजारी अपने मन्त्रोच्चारण की योग्यता अभिव्यक्त करते हैं। बंगाली लोग इस उत्सव को आनन्दपूर्वक मनाने के लिए वर्ष-भर धन-संचय करते तथा पूजा के दिनों में व्यय करते हैं। वस्त्र वितरित किये जाते हैं।

बंगाल की हिन्दू स्त्रियाँ देवी का मातृभाव से स्वागत करती हैं तथा देवी के विग्रह की विदाई का उत्सव उसी प्रकार प्रत्येक रीति-रिवाज के साथ नेत्रों में जल भरे हुए करती हैं जैसे उनकी बेटी अपने पति के गृह जा रही हो।

आप सब दुर्गा देवी की उपासना अत्यन्त श्रद्धा-विश्वास सहित करें तथा उनकी कृपा से परमानन्द और अमरत्व प्राप्त करें! देवी भगवती दुर्गा की जय हो! उनके पति परमेश्वर जगद्पिता भगवान् शिव की जय हो!

वसन्त नवरात्र

वसन्त नवरात्र के समय भी देवी की पूजा की जाती है। यह वसन्त ऋतु में आता है। देवी की उपासना का विधान उनके ही निर्देश से है। यह देवी भागवत की इस कथा से स्पष्ट हो जाता है।

बहुत प्राचीन काल की बात है। एक बार ध्रुवसिन्धु नामक सूर्यवंशी राजा कोशल देश पर राज्य करता था। वह अत्यन्त दयालु और धर्मात्मा था। उसकी दो रानियाँ

थीं—मनोरमा और लीलावती। मनोरमा बड़ी थी। दोनों ने अति-सुन्दर पुत्र-रत्नों को जन्म दिया। मनोरमा के पुत्र का नाम सुदर्शन तथा लीलावती के पुत्र का नाम शत्रुजित रखा गया।

राजा ध्रुवसिन्धु आखेट के लिए गया और वहाँ शेर द्वारा काल का ग्रास बन गया। युवराज सुदर्शन का राजतिलक करने की तैयारियाँ होने लगीं। किन्तु उधर रानी लीलावती के पिता और उज्जैन के राजा युधाजित और दूसरी ओर रानी मनोरमा के पिता और कलिंग के राजा वीरसेन दोनों ने ही अपने-अपने दौहित्रों को कोशल राज्य के सिंहासन पर बैठाने की लालसा ले कर परस्पर युद्ध प्रारम्भ कर दिया। राजा वीरसेन युद्ध में मारे गये। रानी मनोरमा पुत्र सुदर्शन और एक खोजा (नपुंसक) को साथ ले कर वन में चली गयी। उन्होंने वहाँ भारद्वाज ऋषि के आश्रम में आश्रय लिया।

राजा युधाजित ने अपने दौहित्र शत्रुजित को कोशल की राजधानी अयोध्या के सिंहासन पर आरूढ़ कर दिया। उसने मनोरमा और उसके पुत्र को ढूँढ़ने का प्रयास किया, जिससे कि उन्हें मार्ग से हटा दे; किन्तु सफल न हुआ। कुछ समय के पश्चात् उसे ज्ञात हो गया कि वे भारद्वाज ऋषि के आश्रम में हैं।

विशाल सेना सहित उसने भारद्वाज ऋषि के आश्रम की ओर प्रस्थान किया। उसने अहंकार और क्रोधपूर्वक ऋषि से मनोरमा और उसके पुत्र को समर्पित कर देने की आज्ञा दी। ऋषि ने कहा कि अपनी शरण में आये हुओं को वह कदापि नहीं दे सकते। युधाजित के क्रोध का पारावार न रहा। वह ऋषि पर आक्रमण करने को तत्पर हो गया; किन्तु उसके मन्त्री ने उसे ऋषि के कथन की सत्यता से अवगत कराया। युधाजित अपनी राजधानी वापस लौट गया।

अब युवराज सुदर्शन का भाग्योदय प्रारम्भ हुआ। एक आश्रमवासी के पुत्र ने खोजा को उसके संस्कृत नाम 'क्लीब' से पुकारा। युवराज ने उसका प्रथमार्ध 'क्लीं' ग्रहण कर लिया और उसको 'क्लीं' कह कर पुकारने लगा। यह 'क्लीं' पराशक्ति का अत्यन्त शक्तिशाली बीजाक्षर है। युवराज को इससे अत्यधिक शान्ति की प्राप्ति हुई और साथ ही इसके बारम्बार उच्चारण करने से देवी माँ की कृपा-प्राप्ति होने लगी। देवी उसके सम्मुख प्रकट हो गयीं, उसे आशीर्वाद दिये और दिव्यास्त्र तथा अक्षय तरकश प्रदान किया।

बनारस के राजा के गुप्तचर आश्रम के निकट से जा रहे थे। उन्होंने सौम्य सुशील युवराज सुदर्शन को देखा, तो उसे बनारस की राजकुमारी शशिकला के लिए उपयुक्त वर के रूप में राजा के समक्ष प्रस्ताव रख दिया।

स्वयंवर रचा गया, जिसमें शशिकला ने सुदर्शन का चयन कर लिया। युधाजित भी वहाँ उपस्थित था। शशिकला और सुदर्शन का विवाह सम्पन्न हुआ। युधाजित

बनारस-नरेश से युद्ध करने लगा। देवी ने सुदर्शन और उसके श्वसुर की सहायता की। युधाजित ने देवी का उपहास किया। देवी ने युधाजित और उसकी सेना को मिट्टी में मिला दिया।

सुदर्शन, उसकी पत्नी और श्वसुर ने देवी की स्तुति की। देवी अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उन्होंने उनको चारों नवरात्रों—आषाढ़, आश्विन, माघ और चैत्र में होम इत्यादि सहित विधि-विधान से देवी-पूजन की आज्ञा दी। यह नवरात्र शुक्ल प्रथमा से प्रारम्भ होते हैं। इस प्रकार आज्ञा दे कर देवी अन्तर्धान हो गयीं।

तत्पश्चात् राजकुमार सुदर्शन और राजकुमारी शशिकला भारद्वाज ऋषि के आश्रम में लौट आये। महर्षि भारद्वाज ने दोनों को आशीर्वाद दिया और युवराज सुदर्शन को राजमुकुट पहना कर कोशल-नरेश के पद पर आसीन किया। सुदर्शन, शशिकला और बनारस-नरेश माँ भगवती की आज्ञा-पालन करते हुए प्रत्येक नवरात्र में भव्य रूप से देवी-पूजन करने लगे।

सुदर्शन के वंशज श्री राम और लक्ष्मण ने भी वसन्त नवरात्रों में देवी-पूजन किया और माँ शक्ति की सहायता से सीता को पुन: प्राप्त करने में सफल हुए।

आपको भी अपनी भौतिक और आध्यात्मिक भलाई व उन्नति के लिए वसन्त नवरात्र में देवी-पूजन करके सुदर्शन और श्री राम द्वारा स्थापित उदाहरण का अनुसरण करना चाहिए। माँ भगवती की कृपा के बिना आप कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते। देवी माँ का स्तुति-गान करें! उनके मन्त्र और नाम का जप करें! उनके रूप का ध्यान करें! आराधना करें! प्रार्थना करें और उनकी कृपा व आशीर्वाद प्राप्त करें!

गौरी-पूजा

भगवती गौरी अथवा पार्वती भगवान् शिव की अर्धांगिनी हैं। वह शिव की शक्ति हैं। भारतीय नारीत्व की वह सर्वोच्च आदर्श मानी जाती हैं। वह स्त्रियोचित सद्‌गुणों का श्रेष्ठतम आदर्श हैं। कुमारी कन्याएँ उपयुक्त श्रेष्ठ वर की प्राप्ति के लिए गौरी-पूजन करके उनसे कृपा और आशीर्वाद प्राप्त करती हैं। विवाहित स्त्रियाँ अखण्ड सौभाग्यवती रहने की लिए उनकी पूजा करती हैं।

कुछ विशेष दिन गौरी-पूजन के लिए विशेष पवित्र माने जाते हैं। हिन्दू स्त्रियाँ उस दिन उपवास रखती हैं और गौरी-पूजा करती हैं तथा बालचन्द्र में उनके दर्शन करके उपवास का पारन करती हैं।

अध्याय १४

शिव योग माला

शैव–साहित्य

अट्ठाईस शैव आगम तथा शैव सन्तों के भक्ति पद (तेवारम् और तिरुवासकम्) प्रमुख रूप से दक्षिणी शैव मत के मूल स्रोत हैं। नम्बि अण्डार नम्बि (१००० ईस्वी) द्वारा संकलित समस्त शैव भक्ति पद समूह 'तिरुमुरै' कहे जाते हैं। 'तेवारम्' में सम्बन्धर, अप्पर और सुन्दरर के पद हैं। माणिक्कवासकर के भजन 'तिरुवासकम्' कहे जाते हैं।

आगमंत अर्थात् शैव सिद्धान्त में २८ संस्कृत आगमों का सारतत्त्व है। सक्किलर पेरिपुराणम् (११ वीं शताब्दी) ने तिरेसठ शैव सन्तों का वर्णन किया है।

'तिरुवासकम्' इक्कावन अद्वितीय आध्यात्मिक अनुभूतियों से सम्पन्न भव्य काव्य संग्रह है। डा. जी. वी. पोप ने इसका अँगरेजी में अनुवाद किया है।

'शिवज्ञानबोधम्' के प्रतिष्ठित लेखक, सन्त मेय्कन्डर के द्वारा १३ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में शैव सिद्धान्त दार्शनिक गति-विधि का प्रारम्भ हुआ। शिवज्ञानबोधम् को रौरव आगम के द्वादश पदों का विस्तरण माना जाता है। यह पुस्तक शैव सिद्धान्त दृष्टिकोण की आदर्श मानक है। इसमें इस सिद्धान्त की क्रमबद्ध सुव्यवस्थित और सार रूप में व्याख्या की गयी है। इसने तमिल लोगों की इस दर्शन की सर्वोच्च श्रेष्ठता के प्रति आँखें खोल दीं। सन्त मेय्कन्डर ने अपने दर्शन की उनचास(४९) शिष्यों को शिक्षा दी तथा इस सिद्धान्त का प्रचार-प्रसार किया और लोकप्रिय बनाया।

मेय्कन्डर के उनचास में से प्रथम शिष्य अरुलनन्दि शिवाचरियर महत्त्वपूर्ण कृति 'शिव ज्ञान सिद्धियार' के लेखक हैं। वह 'इरुपा इरुपदु' के भी लेखक हैं।

१३ वीं तथा १४ वीं शताब्दी में शैव सिद्धान्त शास्त्र के मानदण्ड मानी जाने वाली चौदह दार्शनिक रचनाएँ आयीं। वह इस प्रकार से हैं—तिरुवुन्दियार, तिरुकलिट्टुपाडियार, उण्मै विलक्कम, शिवप्रकाशम्, तिरुवरुलपयन, विनावेम्बा, पोट्रि पड्रोडे, कोटिक्कावि, नेन्जु विडु दूदु, उण्मै नेरि विलक्कम और शंकर पनिराहरणम्।

शिवप्रकाशम् और तिरुवरुल पयन श्री उमापति शिवाचारियैर (शताब्दी १४ वीं) द्वारा रचित अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। वह इस समूह के षड शास्त्रों के भी रचयिता हैं।

तिरुवुन्दियार की रचना १२ वीं शताब्दी के मध्य में तिरुवयलूर के सन्त उय्यवन्द-देव-नायनार के द्वारा हुई। तिरुक्कडवूर उय्यवन्द-देव-नायनार तिरुकलिट्टुपाडियार के रचयिता थे।

तिरुमन्दिरम् शैव सिद्धान्त को मूर्त रूप प्रदान करने वाले ग्रन्थों में अत्यधिक प्रामाणिक कृतियों में से है। इसके लेखक तिरुमूल नायनार हैं। इस रचना ने ऐसी नींव की रचना की, जिसके ऊपर बाद में शैव सिद्धान्त दर्शन का ढाँचा निर्मित हुआ। इस पुस्तक में संस्कृत आगमों के शैव सिद्धान्तों का अनुवाद किया गया है। इसमें तीन सहस्र पदों की रचना है जो कि तीन सहस्र वर्षों में की गयी है। इनमें शैव धर्म और दर्शन के व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक पक्षों पर विचार किया गया है।

'ज्ञानामृतम्' प्रथम पुस्तक है जिसमें सिद्धान्त पक्ष का आधुनिक वैज्ञानिक ढंग से निरूपण किया गया है।

शैव सिद्धान्त वेदों और आगमों की दोहरी परम्परा पर आधारित है। १४ वीं शताब्दी में नीलकण्ठ ने इन दोनों का विधिवत् समन्वय किया। उन्होंने ब्रह्मसूत्रों पर टीका लिखी। उन्होंने इसकी व्याख्या शैव-पद्धति के प्रकाश में की।

अप्पय्य दीक्षित की टीका का नाम शिवारका-मणि-दीपिका है जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

शिवपुराण, लिंगपुराण, शिवपराक्रम, तिरुविलैयाडल पुराणम्, पेरिय पुराणम् भगवान् शिव की महिमा का प्रतिपादन करते हैं। ये सब ग्रन्थ तमिल भाषा में अनूदित भी हैं। भक्त विलासम् संस्कृत रचना है। यह स्कन्दपुराण का उप पुराण है।

काश्मीर की घाटी में अट्ठाईस आगमों की रचना हुई। जैन धर्म के उत्कर्ष से पर्याप्त समय पूर्व यह आगमन्त उत्तर भारत में उद्भूत हो गये थे। वहाँ ये प्रतिभिज्ञा दर्शनम् के नाम से जाने जाते थे। तदुपरान्त यह पश्चिम तथा दक्षिण की ओर फैल गये। पश्चिमी भारत में यह 'वीर-महेश्वर-दर्शनम्' के नाम से प्रसिद्ध हुए और दक्षिण भारत में यह 'शुद्ध-शैव-दर्शनम्' के नाम से जाने गये। लिंगपुराण को वीर-महेश्वरों द्वारा अत्यधिक सम्मानजनक दृष्टि से देखा जाता है।

चिदम्बर रहस्य

चिदम्बरम् में भगवान् शिव की उपासना निराकार विद्यमानता के रूप में, आकाशलिंग के रूप में की गयी है। चिदम्बरम् धर्म और संस्कृति का प्राचीन केन्द्र है। चिदम्बरम् में शिव का नटराज रूप में नर्तन मुद्रा में पूजन किया गया है। प्रत्येक वर्ष

मार्गशीर्ष मास में चिदम्बरम् में दक्षिण भारत का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पर्व 'आद्र दर्शन' मनाया जाता है।

मन्दिर के भीतर 'नृत्य सभा' है। मुख्य मन्दिर के सामने काष्ठ का ऊँचा भवन है जिसकी छत स्वर्णिम है। यह 'कनक सभा' कही जाती है। मध्य में नटराज मन्दिर है। यह सादा काष्ठ का भवन प्रस्तर चबूतरे के ऊपर बना हुआ है; किन्तु इसके पीछे काले प्रस्तर का परिष्कृत कक्ष है जिसकी छत स्वर्ण पट्टिकाओं से बनी हुई है। शिवगंगा सरोवर के सामने 'राज-सभा' है जिसमें एक सहस्र ग्रेनाइट प्रस्तर स्तम्भ हैं।

शिव मन्दिर के पाँच प्रकार, देह के पंच कोशों के प्रतीक हैं। किन्हीं मन्दिरों के तीन प्रकार मानव के तीनों शरीरों के द्योतक हैं। गर्भगृह, अर्धमण्डप, महामण्डप, स्नानमण्डप, अलंकारमण्डप और सभामण्डप शरीर के षडचक्र अथवा षडाधार के प्रतीक हैं।

धर्मोपनिषद् का कथन है—''चिदम्बरम् हृदय के केन्द्र में है। चिदम्बरम् विराट् पुरुष का हृदय है।'' सहस्र स्तम्भों वाला मण्डप, सहस्रार का प्रतीक है। शिवगंगा सहस्रार में स्थित अमृतवपि का द्योतक है। जिस स्थान पर ज्योतिर्लिंग और गुरुमूर्ति हैं, वह विशुद्ध चक्र का सूचक है। तिरुचित्तम्बलम अथवा महासभा में ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेश्वर और सदाशिव के लिए पंचपीठ हैं। पाँच सोपान पंचाक्षर के पाँचों अक्षरों के तथा आच्छादन अविद्या अथवा आवरण का प्रतीक है। ९६ तत्त्व के सूचक ९६ गवाक्ष हैं। चार स्वर्णस्तम्भ जो मध्य में स्थित हैं, चारों वेदों के सूचक हैं। उनके चारों ओर के अट्ठाईस स्तम्भ, २८ आगमों के द्योतक हैं। इन स्तम्भों का मध्य स्थान शुद्ध विद्या को प्रकट करता है। भगवान् नटराज का आसन प्रणव पीठम् पर स्थित है।

इसके पीछे 'तिरुचित्तम्बलम' है। यही चिदाकाश अथवा प्रसिद्ध 'चिदम्बरम् रहस्य' है। शिवकाम सुन्दरी अथवा पराशक्ति का पीठ गर्भगृह में है। रहस्य निष्कल है। आनन्द नटराज मूर्ति सकल है।

प्राची में ब्रह्मा हैं। दक्षिण में विष्णु हैं। उत्तर में भैरव अथवा संहार-रुद्र हैं। गुम्बद में नौ कलश हैं। ये नौ शक्तियों को द्योतित करते हैं। गुम्बद को आलम्बन देने वाले चौंसठ काष्ठ के आधार चौंसठ विद्याओं अथवा कलाओं के परिचायक हैं। जो स्वर्ण आवृत पीतल की इक्कीस सहस्र छह सौ पट्टिकाएँ (पत्तर) हैं, वह मनुष्य द्वारा नित्य लिये जाने वाले इक्कीस सहस्र छह सौ (२१,६००) श्वास-प्रश्वासों की प्रतीक हैं। बहत्तर हजार कील, शरीर की बहत्तर हजार स्नायु अथवा सूक्ष्म तन्त्रिकाओं की द्योतक हैं।

कनक-सभा के अट्ठारह (१८) स्तम्भ, अट्ठारह पुराणों के प्रतीक हैं। कनक सभा, मणिपूर चक्र की परिचायक है। पाँच सभाएँ, पंच कोशों को द्योतित करती हैं।

यदि व्यक्ति चिदम्बर मन्दिर के रहस्यों को उचित रूप में जान जाये और वह भगवान् नटराज की आराधना गहन विश्वास, भक्ति, श्रद्धा, पवित्रता और मन की पूर्ण एकाग्रता सहित एकनिष्ठता से करे, तो वह ज्ञान और परम आनन्द प्राप्त करेगा। वह समस्त बन्धनों से मुक्त हो जायेगा।

तिरुवरुर में जन्म होने से मुक्ति की प्राप्ति होती है। वाराणसी (काशी) में मृत्यु होने से मुक्ति मिलती है। चिदम्बरम के नटराज के दर्शनों से मोक्ष हो जाता है।

कनकसभा से संलग्न गोविन्दराजा अथवा विष्णु का मन्दिर है। यह शिक्षा देता है कि शिव और विष्णु वस्तुतः एक हैं तथा एक वीर शैव तथा वीर वैष्णव को कट्टरपन का त्याग करना चाहिए। उन्हें अपना हृदय विशाल करके भगवान् शिव और भगवान् विष्णु के प्रति समान भक्ति भाव रखना चाहिए तथा समस्त मूर्तियों में अपने इष्ट के ही दर्शन करने चाहिए।

भगवान् नटराज और शिवाकामि आप सब पर कृपा करें और चिदम्बर रहस्य का बोध कर सकने वाला हृदय प्रदान करें!

शिव और विष्णु एक हैं

भगवान् शिव का भक्त शैव है। विष्णु भगवान् का भक्त वैष्णव है। उपासना का अर्थ है—निकट आसन (बैठना) अर्थात् पूजा करना। जो उपासना करता है, वह उपासक है। उपासना अथवा आराधना करने से ईश्वरानुभूति प्राप्त होती है। धर्मान्ध वीर शैव विष्णु भगवान् के प्रति अपने मन में दुर्भावना रखता है, वैष्णवों तथा विष्णु भगवान् से सम्बन्धित पुराणों से घृणा करता है। वह कभी भी विष्णु मन्दिर में प्रवेश नहीं करता। वह कभी वैष्णव के हाथ से पानी नहीं पीता। वह कभी वैष्णव के हाथ से अथवा साथ बैठ कर भोजन नहीं खाता। कभी मुख से हरि शब्द नहीं बोलता। वह सदैव भगवान् हरि, वैष्णवों तथा विष्णुपुराण के प्रति अपशब्दों का ही प्रयोग करता है। वह समझता है कि भगवान् शिव विष्णु भगवान् से श्रेष्ठ हैं। वह कभी विष्णुपुराण पढ़ कर नहीं देखता। क्या यह मूढ़ता की पराकाष्ठा नहीं है? क्या यह अज्ञान की चरम सीमा नहीं है? उसने भगवान् शिव का वास्तविक स्वरूप ही नहीं समझा है? उसे वास्तविक धर्म का बोध नहीं है। वह कट्टरपन्थी है, धर्मान्ध है, अल्पज्ञ है, संकीर्ण साम्प्रदायिकता तथा संकीर्ण हृदय वाला है। वह ऐसा कूप-मण्डूक है जो सागर की विशालता से पूर्णतया अनभिज्ञ है।

एक धर्मान्ध वैष्णव भगवान् शिव के प्रति, शैवों और शिव-सम्बन्धी पुराणों के प्रति घृणापूर्ण भाव रखता है। वह कभी शिवालय में प्रवेश नहीं करता, कभी शैव से मैत्री भाव

नहीं रखता। वह कभी शैव के हाथ से जल ग्रहण नहीं करता। वह भी एकदम वीर शैव जैसा ही व्यवहार करता है। ऐसे व्यक्ति की स्थिति भी अत्यन्त शोचनीय है।

तमिलनाडु के तिरुनलवेलि जिले में शंकरनारायण कोइल में एक मन्दिर है, जिसमें विग्रह का अर्धांग शिव हैं, और अर्धांग विष्णु रूप में दिखाया गया है। उसका अन्तरंग महत्त्व यह है कि भगवान् शिव तथा भगवान् विष्णु एक हैं। श्री आदिशंकराचार्य जी ने भी अत्यन्त स्पष्टतया कहा है कि शिव और विष्णु एक ही सर्वव्यापक परमात्मा हैं।

एक बार एक वीर शैव शंकरनारायण कोइल में पूजा के लिए मन्दिर में गया। उसने धूप अर्पित की। उसने विष्णु भगवान् की ओर की नासिका में रूई लगा दी; क्योंकि धूप का धूम्र और उसकी सुगन्ध उनकी नासिका में भी जा रही थी। उसके पश्चात् एक वीर वैष्णव पूजा के लिए गया। उसने भगवान् शिव की नासिका रूई से बन्द कर दी जिससे कि सुगन्धि उधर न जाये। कट्टरपन्थियों की ऐसी संकीर्णहृदयता है! भक्त को तो विशालहृदयी होना चाहिए। उसको निश्चित रूप से भगवान् के प्रत्येक रूप में अपने ही अधिष्ठ देवता को देखना चाहिए। प्रारम्भ में उसे अपने इष्ट के प्रति अत्यधिक प्रेम रखना आवश्यक है, जिससे कि स्वरूप-विशेष के प्रति उसकी प्रेमनिष्ठा परिपक्व हो जाये। किन्तु उसे भगवान् के अन्य सभी रूपों के प्रति भी समान श्रद्धा होनी चाहिए।

शिव और विष्णु वस्तुत: एक ही सत्ता हैं। वास्तव में वह एक ही हैं। सर्वव्यापक एकमेव परमात्मा के विभिन्न पक्षों के अनुसार, उनको दिये गये यह विभिन्न नाम हैं : **''शिवस्य हृदयं विष्णु विष्णोश्च हृदयं शिव:''**—शिव का हृदय विष्णु हैं और विष्णु का हृदय शिव हैं।''

यह साम्प्रदायिक भावना हाल ही की उपज है। कान्ताचार्य का शैव सिद्धान्त मात्र पाँच सौ वर्ष पहले का है। मध्व और श्रीरामानुजाचार्य का वैष्णव सम्प्रदाय क्रमश: केवल छह सौ तथा सात सौ वर्ष प्राचीन है। सात सौ वर्ष से पूर्व यह साम्प्रदायिक उपासना नहीं थी।

परमात्मा का सृष्टिकर्ता पक्ष ब्रह्मा है, स्थितिकर्ता विष्णु तथा संहारकर्ता रूप शिव हैं। यह बिलकुल इसी प्रकार है जैसे आप विभिन्न अवसरों पर उसके अनुकूल भिन्न-भिन्न वस्त्र धारण करते हैं। जब आप पूजागृह में उपासना करते हैं, तब और प्रकार की वेशभूषा होती है, घर में आपकी पोशाक अन्य प्रकार की होती है। जब आप अपने कार्यालय में कार्यरत होते हैं, तब और ढंग से तैयार होते हैं। भिन्न-भिन्न समय और स्थान के अनुसार आप भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वभाव को प्रदर्शित करते हैं। इसी प्रकार भगवान् जब रजस् से संयुक्त हो कर सृष्टि-संरचना का कार्य करते हैं, तब वह ब्रह्मा कहलाते हैं। सत्त्वगुण से युक्त

हो कर संसार का पालन करते हैं, तब विष्णु कहे जाते हैं। जब वह तमोगुण से संयुक्त हो कर संसार का संहार करते हैं, तब वह रुद्र अथवा शिव कहलाते हैं।

ब्रह्मा, विष्णु और शिव को चेतना की तीन अवस्थाओं के साथ सहसम्बन्धित किया गया है। जाग्रत अवस्था में सत्त्व प्रधान होता है! स्वप्नावस्था में रजस् की प्रधानता होती है। सुषुप्तावस्था में तमस् प्रधान होता है। अत: विष्णु, ब्रह्मा और शिव चेतना की क्रमश: जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था की मूर्तियाँ हैं। तुरीय अथवा चतुर्थ अवस्था परब्रह्म है। तुरीय अवस्था गहन सुषुप्ति अवस्था से परे है। भगवान् शिव की आराधना तत्काल चतुर्थ अवस्था की प्राप्ति कराने वाली है।

विष्णुपुराण में विष्णु भगवान् की महिमा गायी गयी है और कई स्थलों पर भगवान् शिव को निम्न स्थान दिया गया है। शिवपुराण में भगवान् शिव की महिमा का वर्णन है और विष्णु को निम्न स्थान पर रखा गया है। देवी भागवत में देवी को सर्वोच्च पद पर रखा गया है तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव को उनसे नीचे स्थान दिया गया है। यह केवल इस स्वरूप-विशेष के प्रति उनके भक्तों के हृदय में गहन और दृढ़ श्रद्धा व भक्ति की वृद्धि करने के उद्देश्य को ले कर ही किया गया है। वास्तव में तो कोई भी स्वरूप किसी से उत्तम अथवा निम्न श्रेणी का नहीं है। आपको लेखक के वास्तविक उद्देश्य को सही रूप में ग्रहण करना चाहिए।

आप सबको शिव और विष्णु के एकत्व का बोध हो! आप सब शुद्ध सूक्ष्म बुद्धि और समुचित ज्ञान से सम्पन्न हों!

शिवरात्रि महिमा

(१)

पार्वतीपति भगवान् शिव को प्रणाम है! ब्रह्म की संहारकारी शक्ति को प्रणाम है ! जो शम्भू, शंकर, महादेव, सदाशिव, विश्वनाथ, हर, त्रिपुरारि, गंगाधर, शूलपाणि, नीलकण्ठ, दक्षिणामूर्ति, चन्द्रशेखर, नीललोहित इत्यादि नामों से जाने जाते हैं, जो अपने भक्तों पर शुभता, अमरत्व और दिव्य ज्ञान की वृष्टि करने वाले हैं, जो प्रलय-काल में ताण्डव नृत्य करते हैं और जो संहारकारी नहीं प्रत्युत पुनरुज्जीवन प्रदाता हैं, उनको हम मौन प्रणाम करते हैं!

महाशिवरात्रि का अर्थ है—भगवान् शिव का ध्यान करने वाली महानिशा। महाशिवरात्रि फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि को (फरवरी-मार्च मास में) पड़ती है।

महाभारत के शान्ति-पर्व में भीष्मपितामह जब शर-शैया पर लेटे हुए धर्मोपदेश कर रहे थे, उस समय वे राजा चित्रभानु को महाशिवरात्रि व्रत करने का उपदेश देते हैं।

एक बार समस्त जम्बूद्वीप पर जब ईक्ष्वाकू वंश के राजा चित्रभानु का राज्य था, तब वह और उनकी पत्नी महाशिवरात्रि का उपवास किये हुए थे। उस समय ऋषि अष्टावक्र उनके राजदरबार में आये।

ऋषि ने प्रश्न किया—"हे राजन्! आपने आज उपवास क्यों किया है?" तब राजा चित्रभानु ने यह व्रत रखने का कारण बताया। उसको अपने पूर्व-जन्म की स्मृति रहने का वर प्राप्त था।

उसने अष्टावक्र ऋषि से कहा—"मैं अपने पूर्व-जन्म में सुस्वर नामक व्याध था। पशु-पक्षियों को मार कर बेचना ही मेरी आय का साधन था। एक दिन मैं शिकार की खोज में वन में भटक रहा था। आखेट करते-करते रात्रि का अन्धकार छा गया। मार्ग न सूझ पाने से घर लौटने में असमर्थ हो, हिंस्र जन्तुओं के आक्रमण के भय से वृक्ष पर चढ़ गया। वह बिल्व का वृक्ष था। मैंने एक मृग का शिकार किया था; किन्तु उसे घर ले जाने का समय नहीं मिला था। अत्यधिक क्षुधा और पिपासा से आक्रान्त होने के कारण मैं रात्रि-भर जागता रहा। यह चिन्ता करते-करते कि मेरी पत्नी और बच्चे मुझे न पा कर किस दशा में भूखे-प्यासे तड़प रहे होंगे— मैं फूट-फूट कर रोने लगा और व्याकुलता में वृक्ष के पत्ते तोड़ता रहा। उस बिल्व-वृक्ष के मूल में एक शिवलिंग था। मेरे अश्रु और बेल-पत्र शिवलिंग पर मेरे अनजाने ही गिरते रहे।

"प्रातः हुई। मैं घर पहुँचा और आखेट किया मृग बेचा। परिवार और अपने लिए भोजन का सामान लाया। मैं व्रत खोलने वाला ही था कि एक अज्ञात व्यक्ति आया और मुझसे कुछ खाने के लिए माँगने लगा। मैंने पहले उसे भोजन दिया, फिर स्वयं खाया। अपनी मृत्यु के समय मैंने भगवान् शिव के दो गण देखे। वह दोनों भगवान् द्वारा मेरी जीवात्मा को शिवलोक ले जाने के लिए भेजे गये थे। तब मुझे प्रथम बार महाशिवरात्रि के दिन उपवास करने की महिमा का ज्ञान हुआ, यद्यपि मैंने तो वह उपवास अनजाने में संयोग से ही किया था। मैंने दीर्घ काल तक शिवलोक में रह कर दिव्य आनन्द का उपभोग किया और अब पुनः इस संसार में चित्रभानु के रूप में उत्पन्न हुआ हूँ।"

(२)

'शिवरात्रि' का अर्थ है— भगवान् शिव की निशा। इस धार्मिक अनुष्ठान के महत्त्वपूर्ण अंग हैं—चौबीस घण्टे का उपवास और रात-भर का जागरण। प्रत्येक सच्चा शिव-भक्त शिवरात्रि की रात को जागरण करते हुए गहन जप-ध्यान करता है तथा व्रत करता है।

भगवान् शिव की आराधना में पुष्प द्वारा अर्चना, बिल्व-पत्र तथा अन्य पदार्थ भगवान् के स्वरूप लिंग को अर्पित करना तथा दूध, दधि, घृत, मधु, गुलाब-जल इत्यादि विविध द्रव्यों द्वारा अभिषेक करना सम्मिलित है।

सृष्टि-संरचना पूर्ण हो जाने के उपरान्त शिव और पार्वती जब कैलास-शिखर पर निवास कर रहे थे, तब एक बार पार्वती ने भगवान् से पूछा—''हे भगवन्! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इस चतुर्वर्ग के आप ही हेतु हैं। साधना से सन्तुष्ट हो आप ही मनुष्य को यह प्रदान करते हैं। अत: यह जानने की इच्छा है कि किस कर्म, किस व्रत या किस प्रकार की तपस्या से आप सर्वाधिक प्रसन्न होते हैं?'' भगवान् शिव ने उत्तर दिया—''फाल्गुन के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि को आश्रय कर जो रात उदय होती है, उसी को 'शिवरात्रि' कहते हैं। उस दिन जो उपवास करता है, वह निश्चय ही मुझे सन्तुष्ट करता है। उस दिन उपवास करने से मैं जैसा प्रसन्न होता हूँ, वैसा स्नान, वस्त्र, धूप और पुष्प-अर्पण से भी नहीं होता।

''भक्त दिन-भर निराहार रहता है तथा रात्रि के चारों प्रहरों में मेरी विभिन्न स्वरूपों में पूजा करता है। प्रत्येक प्रहर तीन-तीन घण्टे का होता है। बहुमूल्य रत्न, धन अथवा पुष्पों की अपेक्षा मैं अल्प बिल्व-पत्रों से ही अधिक सन्तुष्ट होता हूँ। भक्त को मेरी पूजा-अभिषेक प्रथम प्रहर में दुग्ध द्वारा, द्वितीय प्रहर में दधि द्वारा, तृतीय प्रहर में घृत द्वारा एवं चतुर्थ में मधु द्वारा करनी चाहिए। प्रभात में विसर्जन के पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन करा कर विधि-विधान सहित व्रत-कथा सुन कर पारण करना चाहिए। इससे बढ़ कर सरल और सन्तोष-प्रदायक अन्य कुछ भी नहीं है।

''हे प्रिय, इसके साथ जो कथा संयुक्त है, उसका श्रवण करने से इस व्रत की महिमा और शक्ति का ज्ञान होगा।

''एक बार वाराणसी नगर में एक व्याध रहता था। वह एक दिन वन में शिकार करने गया। वहाँ अनेक मृगों का शिकार करके लौटते समय मार्ग में वह थका-माँदा किसी वृक्ष के नीचे सो गया। नींद टूटने पर उसने देखा, चारों ओर भीषण अन्धकार है। यह शिवरात्रि

की रात थी, किन्तु वह इससे अनजान था। वह वृक्ष के ऊपर चढ़ गया, शिकार किये हुए जन्तुओं के गट्ठर को एक डाल में बाँध दिया और प्रातः होने की प्रतीक्षा करने लगा। भाग्यवश वह वृक्ष, मेरा अति-प्रिय बिल्व-वृक्ष था।

"वृक्ष की जड़ में एक अति-प्राचीन शिवलिंग था। वह वृक्ष से बेल-पत्र तोड़-तोड़ कर नीचे गिराने लगा। वसन्त की रात्रि में ओस की बूँदें उसकी देह से लग कर नीचे गिरने लगीं। उस शिकारी के अनजाने में ही किये गये इन कृत्यों से मेरे सन्तोष का पार न रहा। प्रातः हुई और शिकारी अपने घर लौट गया।

"समय आने पर वह व्याध बीमार पड़ा और प्राण निकलने लगे। यमदूत उसे यमराज के पास ले जाने के लिए आये। मेरे गण भी मेरी आज्ञा से उसे मेरे धाम में लाने के लिए पहुँच गये थे। दोनों में भीषण युद्ध हुआ। यमदूत बुरी तरह से हार कर यमराज के पास पहुँचे और सारी घटना सुनायी। यमराज स्वयं उसकी जीवात्मा को ले कर मेरे धाम में आये। तब नन्दी ने उन्हे शिवरात्रि व्रत की महिमा तथा उसी के कारण व्याध के प्रति मेरे प्रेम का रहस्य समझाया। यमराज व्याध की जीवात्मा को मेरे पास छोड़ कर चले गये।

"वह व्याध जन्म-मरण के बन्धन से छूट गया और सालोक्य मुक्ति को प्राप्त हुआ और वह भी अनजाने में ही शिवरात्रि को किये गये उपवास और बिल्वार्पण मात्र ही से। इस रात्रि की इतनी शक्ति, पवित्रता और महिमा है!"

भगवान् के मुख से शिवरात्रि और उसके पूजन-उपवास की ऐसी पवित्रता और महिमा श्रवण करके पार्वती अत्यधिक प्रभावित हुईं। उन्होंने यह कथा अपनी सखियों से कही और उन सबने आगे पृथ्वी पर राज करने वाले राजा-रानी को सुनायी। इस प्रकार शिवरात्रि की महिमा सर्वत्र व्याप्त हो गयी।

द्वादशज्योतिर्लिंगानि

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकालं ओंकारममलेश्वरम्॥१॥

परल्यां वैद्यनाथं च डाकिन्यां भीमशंकरम्।
सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं दारुकावने॥२॥

वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे।
हिमालये तु केदारं घुसृणेशं च शिवालये॥३॥

एतानि ज्योतिर्लिंगानि सायं प्रातः पठेन्नरः।

सप्त जन्म कृतं पापं स्मरणेन विनश्यति ।।४।।

।। इति द्वादशज्योतिर्लिंगानि ।।

१. सौराष्ट्र (गुजरात) में **सोमनाथ**, २. श्रीशैल (आन्ध्र प्रदेश) में **मल्लिकार्जुन**, ३. उज्जैन (मध्य प्रदेश) में **महाकाल**, ४. नर्मदा-तट पर (मध्य प्रदेश) अमलेश्वर में **ओंकारेश्वर**, ५. परळी (महाराष्ट्र) में **वैद्यनाथ**, ६. डाकिनी (महाराष्ट्र) में **भीमाशंकर**, ७. सेतुबन्धन, (तमिलनाडु) में **रामेश्वर**, ८. दारुकावन (गुजरात) में **नागेश**, ९. वाराणसी (उत्तर प्रदेश) में **विश्वेश**, १०. नासिक (महाराष्ट्र) में गोदावरी-तट पर **त्र्यम्बक**, ११. हिमालय (उत्तरांचल) में **केदारनाथ**, १२. शिवालय (कर्नाटक) में **घुसृणेश**।

जो कोई प्रातः-सायं इन द्वादश ज्योतिर्लिंगों का स्मरण करता है, वह गत सात जन्मों में किये गये पापों से मुक्त हो जाता है।

दक्षिण भारत में पाँच प्रसिद्ध शिवलिंग हैं, जो पाँच तत्त्वों के द्योतक हैं।

१. कांचीवरम् (तमिलनाडु) में **पृथ्वीलिंग** है। २. तिरुवनै कोइल (तमिलनाडु) में **आपःलिंग** है। यह लिंग सदैव जल में रहता है। तिरुवनै कोइल **जम्बुकेश्वर** नाम से प्रसिद्ध हैं। ३. कालहस्ती (आन्ध्र प्रदेश) में **वायुलिंग** है। ४. तिरुवन्नामलै (तमिलनाडु) में **ज्योतिर्लिंग** (अरुणाचलेश्वर) है, तथा ५. चिदम्बरम् (तमिलनाडु) में **आकाश-लिंग** है।

शिवनाम कीर्तन

१. शिवाय नमः ॐ, शिवाय नमः,
शिवाय नमः, ॐ नमः शिवाय।
शिव शिव शिव शिव शिवाय नमः ॐ
हर हर हर हर नमः शिवाय।
शिव शिव शिव शिव शिवाय नमः ॐ
बम बम बम बम नमः शिवाय।
साम्बसदाशिव साम्बसदाशिव
साम्बसदाशिव साम्बशिवाय।
ॐ नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय

ॐ नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय ।
...शिवाय नमः, ॐ शिवाय नमः...।

२. ॐ शिव ॐ शिव ॐकारा शिव
उमामहेश्वर तव चरणम्।
ॐ शिव ॐ शिव ॐकारा शिव
परात्परा शिव तव चरणम्।
नमामि शंकर भवानी शंकर
गिरिजा शंकर तव चरणम्।
नमामि शंकर भवानी शंकर
मृडानी शंकर तव चरणम्।

३. हर हर शिव शिव शम्भो
हर हर शिव शिव शम्भो
हर हर शिव शिव हर हर शम्भो
हर हर शिव शिव शम्भो
हर हर शिव शिव शम्भो।

४. नमस्ते नमस्ते विभो विश्वमूर्ते
नमस्ते नमस्ते चिदानन्दमूर्ते
नमस्ते नमस्ते तपोयोगगम्य
नमस्ते नमस्ते श्रुतिज्ञानगम्य।

५. शंकरने शंकरने शम्भो गंगाधरने
शंकरने शंकरने शम्भो गंगाधर ने।

६. काशीविश्वनाथ सदाशिव,
बम बोलो कैलासपति बम बोलो कैलासपति ।

७. हर हर महादेव शम्भो काशीविश्वनाथ गंगे
विश्वनाथ गंगे काशी विश्वनाथ गंगे ।

८. ॐ शिव हर हर गंगे हर हर,
ॐ शिव हर हर गंगे हर हर।
ॐ शिव हर हर ॐ शिव हर हर,
बम बम हर हर ॐ शिव हर हर ।

९. महादेव शिव शंकर शम्भो
उमाकान्त हर त्रिपुरारे
मृत्युंजय वृषभध्वज शूलिन
गंगाधर मृड मदनारे
जय शम्भो जय शम्भो
शिव गौरी शंकर जय शम्भो
जय शम्भो जय शम्भो
जय गौरी शंकर जय शम्भो
रुद्रं पशुपति ईशानम्
कालय काशीपुरीनाथम्
हर शिव शंकर गौरीशम्
वन्दे गंगाधरमीशम् ।

१०. जय शिवं शंकर हर त्रिपुरारे
पाहि पशुपति पिनाकधारिन ।

११. चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर पाहि माम्।
चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर रक्ष माम् ।

१२. अगड़ बम अगड़ बम बाजे डमरू,
नाचे सदाशिव जगद्गुरु
नाचे ब्रह्मा नाचे विष्णु नाचे महादेव,
खप्पर ले के काली नाचे आदिदेव।
(अगड़ बम...)

१३. नटराजा नटाराजा नर्तन सुन्दर नटराजा
शिवराजा शिवराजा शिवाकामी प्रिय शिवराजा ।

१४. बोल शंकर बोल शंकर शंकर शंकर बोल
हर हर हर हर महादेव शम्भो शंकर बोल
शिव शिव शिव शिव सदाशिव शम्भो शंकर बोल ।

१५. जय जगद्-जननी, संकट-हरणी
त्रिभुवन तारिणी माहेश्वरी ।

१६. जय गंगे जय गंगे रानी
जय गंगे जय हर गंगे ।

१७. देवी भजो दुर्गा-भवानी
देवी भजो दुर्गा
जगद्-जननी महिषासुर-मर्दिनी
देवी भजो दुर्गा ।

१८. राधे गोविन्द भजो राधे गोपाल
राधे गोविन्द भजो राधे गोपाल।

१९. ब्रूहि मुकुन्देति रसने (ब्रूहि)
केशव माधव गोविन्देति
कृष्णानन्दा सदानन्देति (ब्रूहि)
राधा रमण हरे रामेति
राजीवाक्षा घन श्यामेति (ब्रूहि)।

२०. गौरी रमण करुणाभरण
पाहि कृपा-पूर्ण शरण
नीलकण्ठ-धर गौर शरीर
नाथ जना शुभकरा मन्दार (गौरी)
बालचन्द्र-धर पुण्य-शरीर
सोम-सार-मद-हर शंकर (गौरी)।

२१. पिब रे राम रसम् रसने
पिब रे राम रसम्
दूरिकृता-पातक-संसर्गम्
पूरित नाना विध फल वर्गम (पिब रे)
जनन-मरण-भय-शोक विदूरम्
सकल शास्त्र-निगमागम सारम् (पिब रे)
परिपलिता-सरसिज गर्भण्डम्
परम पवित्रिकृत पाशन्दम्। (पिब रे)
शुद्ध-परमहंसाश्रम-गीतम्
शुक शौनिक कौशिक मुख पीतम् (पिब रे)।

२२. शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहं सोहम्
शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहं सोहम्
सच्चिदानन्द स्वरूपोऽहम् ।

२३. चिदानन्दरूप: शिवोऽहं शिवोऽहम् ।
चिदानन्दरूप: शिवोऽहं शिवोऽहम् ।

२४. अरुणाचल शिव अरुणाचल शिव
अरुणाचल शिव अरुण शिव,
अरुणाचल शिव अरुणाचल शिव
अरुणाचल शिव अरुण शिव।

अध्याय १५

शिवस्तोत्रम्

श्री शिव-अष्टोत्तरशत-नामावली

१. ॐ शिवाय नम:	२. ॐ महेश्वराय नम:
३. ॐ शम्भवे नम:	४. ॐ पिनाकिने नम:
५. ॐ शशिशेखराय नम:	६. ॐ वामदेवाय नम:
७. ॐ विरूपाक्षाय नम:	८. ॐ कपर्दिने नम:
९. ॐ नीललोहिताय नम:	१०. ॐ शंकराय नम:
११. ॐ शूलपाणये नम:	१२. ॐ खट्वांगिने नम:
१३. ॐ विष्णुवल्लभाय नम:	१४. ॐ शिपिविष्टाय नम:
१५. ॐ अम्बिकानाथाय नम:	१६. ॐ श्रीकण्ठाय नम:
१७. ॐ भक्तवत्सलाय नम:	१८. ॐ भवाय नम:
१९. ॐ शर्वाय नम:	२०. ॐ त्रिलोकेशाय नम:
२१. ॐ शितिकण्ठाय नम:	२२. ॐ शिवाप्रियाय नम:
२३. ॐ उग्राय नम:	२४. ॐ कपालिने नम:
२५. ॐ कामारये नम:	२६. ॐ अन्धकासुरसूदनाय नम:
२७. ॐ गंगाधराय नम:	२८. ॐ ललाटाक्षाय नम:
२९. ॐ कालकालाय नम:	३०. ॐ कृपानिधये नम:
३१. ॐ भीमाय नम:	३२. ॐ परशुहस्ताय नम:
३३. ॐ मृगपाणये नम:	३४. ॐ जटाधराय नम:

३५. ॐ कैलासवासिने नमः
३६. ॐ कवचिने नमः
३७. ॐ कठोराय नमः
३८. ॐ त्रिपुरान्तकाय नमः
३९. ॐ वृषांकाय नमः
४०. ॐ वृषभारूढाय नमः
४१. ॐ भस्मोद्धूलितविग्रहाय नमः
४२. ॐ सामप्रियाय नमः
४३. ॐ स्वरमयाय नमः
४४. ॐ त्रयीमूर्तये नमः
४५. ॐ अनीश्वराय नमः
४६. ॐ सर्वज्ञाय नमः
४७. ॐ परमात्मने नमः
४८. ॐ सोमसूर्याग्निलोचनाय नमः
४९. ॐ हविषे नमः
५०. ॐ यज्ञमयाय नमः
५१. ॐ सोमाय नमः
५२. ॐ पंचवक्त्राय नमः
५३. ॐ सदाशिवाय नमः
५४. ॐ विश्वेश्वराय नमः
५५. ॐ वीरभद्राय नमः
५६. ॐ गणनाथाय नमः
५७. ॐ प्रजापतये नमः
५८. ॐ हिरण्यरेतसे नमः
५९. ॐ दुर्धर्षाय नमः
६०. ॐ गिरीशाय नमः
६१. ॐ गिरिशाय नमः
६२. ॐ अनघाय नमः
६३. ॐ भुजंगभूषणाय नमः
६४. ॐ भर्गाय नमः
६५. ॐ गिरिधन्वने नमः
६६. ॐ गिरिप्रियाय नमः
६७. ॐ कृत्तिवाससे नमः
६८. ॐ पुरारातये नमः
६९. ॐ भगवते नमः
७०. ॐ प्रमथाधिपाय नमः
७१. ॐ मृत्युंजयाय नमः
७२. ॐ सूक्ष्मतनवे नमः
७३. ॐ जगद्व्यापिने नमः
७४. ॐ जगद्गुरवे नमः
७५. ॐ व्योमकेशाय नमः
७६. ॐ महासेनजनकाय नमः
७७. ॐ चारुविक्रमाय नमः
७८. ॐ रुद्राय नमः
७९. ॐ भूतपतये नमः
८०. ॐ स्थाणवे नमः

८१. ॐ अहिर्बुध्न्याय नमः
८२. ॐ दिगम्बराय नमः
८३. ॐ अष्टमूर्तये नमः
८४. ॐ अनेकात्मने नमः
८५. ॐ सात्त्विकाय नमः
८६. ॐ शुद्धविग्रहाय नमः
८७. ॐ शाश्वताय नमः
८८. ॐ खण्डपरशवे नमः
८९. ॐ अजाय नमः
९०. ॐ पाशविमोचनाय नमः
९१. ॐ मृडाय नमः
९२. ॐ पशुपतये नमः
९३. ॐ देवाय नमः
९४. ॐ महादेवाय नमः
९५. ॐ अव्ययाय नमः
९६. ॐ हरये नमः
९७. ॐ पूषदन्तभिदे नमः
९८. ॐ अव्यग्राय नमः
९९. ॐ दक्षाध्वरहराय नमः
१००. ॐ हराय नमः
१०१. ॐ भगनेत्रभिदे नमः
१०२. ॐ अव्यक्ताय नमः
१०३. ॐ सहस्राक्षाय नमः
१०४. ॐ सहस्रपदे नमः
१०५. अपवर्गप्रदाय नमः
१०६. ॐ अनन्ताय नमः
१०७. ॐ तारकाय नमः
१०८. ॐ परमेश्वराय नमः

॥ इति श्री शिव-अष्टोत्तरशत-नामावली ॥

श्रीदेव्यष्टोत्तरशतनामावलिः

१. ॐ आदिशक्तये नमः
२. ॐ महादेव्यै नमः
३. ॐ अम्बिकायै नमः
४. ॐ परमेश्वर्यै नमः
५. ॐ ईश्वर्यै नमः
६. ॐ अनीश्वर्यै नमः
७. ॐ योगिन्यै नमः
८. ॐ सर्वभूतेश्वर्यै नमः
९. ॐ जयायै नमः
१०. ॐ विजयायै नमः
११. ॐ जयन्त्यै नमः
१२. ॐ शाम्भव्यै नमः

१३. ॐ शान्त्यै नमः	१४. ॐ ब्राह्मयै नमः
१५. ॐ ब्रह्माण्डधारिण्यै नमः	१६. ॐ महारूपायै नमः
१७. ॐ महामायायै नमः	१८. ॐ माहेश्वर्यै नमः
१९. ॐ लोकरक्षिण्यै नमः	२०. ॐ दुर्गायै नमः
२१. ॐ दुर्गपारायै नमः	२२. ॐ भक्तचिन्तामण्यै नमः
२३. ॐ भूत्यै नमः	२४. ॐ सिद्ध्यै नमः
२५. ॐ मूर्त्यै नमः	२६. ॐ सर्वसिद्धिप्रदायै नमः
२७. ॐ मन्त्रमूर्त्यै नमः	२८. ॐ. महाकाल्यै नमः
२९. ॐ सर्वमूर्तिस्वरूपिण्यै नमः	३०. ॐ वेदमूर्त्यै नमः
३१. ॐ वेदभूत्यै नमः	३२. ॐ वेदान्तायै नमः
३३. ॐ व्यवहारिण्यै नमः	३४. ॐ अनघायै नमः
३५. ॐ भगवत्यै नमः	३६. ॐ रौद्रायै नमः
३७. ॐ रुद्रस्वरूपिण्यै नमः	३८. ॐ नारायण्यै नमः
३९. ॐ नारसिंह्यै नमः	४०. ॐ नागयज्ञोपवीतिन्यै नमः
४१. ॐ शंखचक्रगदाधारिण्यै नमः	४२. ॐ जटामुकुटशौभिन्यै नमः
४३. ॐ अप्रमाणायै नमः	४४. ॐ प्रमाणायै नमः
४५. ॐ आदिमध्यावसानायै नमः	४६. ॐ पुण्यदायै नमः
४७. ॐ पुण्योपचारिण्यै नमः	४८. ॐ पुण्यकीर्त्यै नमः
४९. ॐ स्तुतायै नमः	५०. ॐ विशालाक्ष्यै नमः
५१. ॐ गम्भीरायै नमः	५२. ॐ रूपान्वितायै नमः
५३. ॐ कालरात्र्यै नमः	५४. ॐ अनल्पसिद्ध्यै नमः
५५. ॐ कमलायै नमः	५६. ॐ पद्मवासिन्यै नमः
५७. ॐ महासरस्वत्यै नमः	५८. ॐ मनःसिद्धायै नमः

५९. ॐ मनोयोगिन्यै नमः
६०. ॐ मातंगिन्यै नमः
६१. ॐ चण्डमुण्डचारिण्यै नमः
६२. ॐ दैत्यदानवनाशिन्यै नमः
६३. ॐ मेषज्योतिषायै नमः
६४. ॐ परंज्योतिषायै नमः
६५. ॐ आत्मज्योतिषायै नमः
६६. ॐ सर्वज्योतिस्वरूपिण्यै नमः
६७. ॐ सहस्रमूर्त्यै नमः
६८. ॐ शर्वाण्यै नमः
६९. ॐ सूर्यमूर्तिस्वरूपिण्यै नमः
७०. ॐ आयुर्लक्ष्म्यै नमः
७१. ॐ विद्यालक्ष्म्यै नमः
७२. ॐ सर्वलक्ष्मीप्रदायै नमः
७३. ॐ विचक्षणायै नमः
७४. ॐ क्षीरार्णववासिन्यै नमः
७५. ॐ वागीश्वर्यै नमः
७६. ॐ वाक्सिद्ध्यै नमः
७७. ॐ अज्ञानज्ञानगोचरायै नमः
७८. ॐ बलायै नमः
७९. ॐ परमकल्याण्यै नमः
८०. ॐ भानुमण्डलवासिन्यै नमः
८१. ॐ अव्यक्तायै नमः
८२. ॐ व्यक्तरूपायै नमः
८३. ॐ अव्यक्तरूपायै नमः
८४. ॐ अनन्तायै नमः
८५. ॐ चन्द्रायै नमः
८६. ॐ चन्द्रमण्डलवासिन्यै नमः
८७. ॐ चन्द्रमण्डलमण्डितायै नमः
८८. ॐ भैरव्यै नमः
८९. ॐ परमानन्दायै नमः
९०. ॐ शिवायै नमः
९१. ॐ अपराजितायै नमः
९२. ॐ ज्ञानप्राप्त्यै नमः
९३. ॐ ज्ञानवत्यै नमः
९४. ॐ ज्ञानमूर्त्यै नमः
९५. ॐ कलावत्यै नमः
९६. ॐ श्मशानवासिन्यै नमः
९७. ॐ मात्रे नमः
९८. ॐ परमकल्पिन्यै नमः
९९. ॐ घोषवत्यै नमः
१००. ॐ दारिद्र्यहारिण्यै नमः
१०१. ॐ शिवतेजोमुख्यै नमः
१०२. ॐ विष्णुवल्लभायै नमः
१०३. ॐ केशविभूषितायै नमः
१०४. ॐ कूर्मायै नमः

१०४. ॐ महिषासुरघातिन्यै नमः १०६. ॐ सर्वरक्षायै नमः

१०७. ॐ महाकाल्यै नमः १०८. ॐ श्रीमहालक्ष्म्यै नमः

॥ इति श्रीदेव्यष्टोत्तरशतनामावलिः ॥

अथ शिवनीराजनम्

हरि ॐ नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे। सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटियुगधारिणे नमः ॥१॥

ॐ जय गंगाधर हर शिव जय गिरिजाधीश, शिव जय गौरीनाथ। त्व मां पालय नित्यं त्वं मां पालय शम्भो कृपया जगदीश। ॐ हर हर हर महादेव ॥२॥

कैलासे गिरिशिखरे कल्पद्रुमविपिने शिव कल्पद्रुमविपिने गुंजति मधुकरपुंजे गुंजति मधुकरपुंजे कुंजवने गहने। कोकिल कूजति खेलति हंसावलिललिता शिव हंसावलिललिता रचयतिकलाकलापं रचयतिकलाकलापं नृत्यति मुदसहिता। ॐ हर हर हर महादेव ॥३॥

तस्मिँल्ललितसुदेशे शालामणिरचिता, शिव शालामणिरचिता, तन्मध्ये हरनिकटे तन्मध्ये हरनिकटे गौरी मुदसहिता। क्रीडां रचयति भूषां रंजितनिजमीशं, शिव रंजितनिजमीशं, इन्द्रादिकसुरसेवित ब्रह्मादिकसुरसेवित प्रणमति ते शीर्षम्। ॐ हर हर हर महादेव ॥४॥

विबुधवधूर्बहु नृत्यति हृदये मृदसहिता, शिव हृदये मृदसहिता, किन्नरगानं कुरुते किन्नरगानं कुरुते सप्तस्वरसहिता। धिनकत थै थै धिनकत मृदंग वादयते, शिव मृदंग वादयते, क्वणक्वणललिता वेणुं क्वणक्वणललिता वेणुं मधुरं नादयते। ॐ हर हर हर महादेव ॥५॥

कण कण-चरणे रचयति नूपुरमुज्ज्वलितं, शिव नूपुरमुज्ज्वलितं, चक्राकारं भ्रमयति चक्राकारं भ्रमयति कुरुते तां धिकताम्। तां तां लुप-चुप तालं नादयते, शिव तालं नादयते, अंगुष्ठांगुलिनादं अंगुष्ठांगुलिनादं लास्यकतां कुरुते। ॐ हर हर हर महादेव ॥६॥

कर्पूरद्युतिगौरं पंचाननसहितं, शिव पंचाननसहितं, त्रिनयन शशिधरमौले त्रिनयन शशिधरमौले विषधर कण्ठयुतं। सुन्दरजटाकलापं पावकयुतफालं, शिव पावकयुतफालं, डमरुत्रिशूलपिनाकं डमरुत्रिशूल पिनाकं करधृतनृकपालम्। ॐ हर हर हर महादेव ॥७॥

शंखनिनादं कृत्वा झल्लरि नादयते, शिव झल्लरि नादयते, नीराजयते ब्रह्मा नीराजयते विष्णुर्वेद-ऋचं पठते। इति मृदुचरणसरोजं हृदि कमले धृत्वा, शिव हृदि कमले धृत्वा, अवलोकयति महेशं शिवलोकयति सुरेशं, ईशं अभिनत्वा। ॐ हर हर हर महादेव॥८॥

रुण्डै रचयति मालां पन्नगमुपवीतं, शिव पन्नगमुपवीतं, वामविभागे गिरिजा वामविभागे गौरी रूपं अतिललितम्। सुन्दरसकलशरीरे कृतभस्माभरणं शिव कृतभस्माभरणं इति वृषभध्वजरूपं हर-शिव-शंकर-रूपं तापत्रयहरणम्। ॐ हर हर हर महादेव॥९॥

ध्यानं आरतिसमये हृदये इति कृत्वा शिव हृदये इति कृत्वा रामं त्रिजटानाथं शम्भुं त्रिजटानाथं ईशं अभिनत्वा। संगीतमेवं प्रतिदिन पठनं यः कुरुते शिव पठनं यः कुरुते शिवसायुज्यं गच्छति हरसायुज्यं गच्छति भक्त्या यः शृणुते। ॐ हर हर हर महादेव॥१०॥

जय गंगाधर हर शिव जय गिरिजाधीश, शिव जय गौरीनाथ। त्वं मां पालय नित्यं त्वं मां पालय शम्भो कृपया जगदीश। ॐ हर हर हर महादेव॥११॥

॥ इति श्री शिवनीराजनं सम्पूर्णम्॥

अथ शिवध्यानावलिः

ॐ वन्दे देवमुमापतिं सुरगुरुं वन्दे जगत्कारणं,
वन्दे पन्नगभूषणं मृगधरं वन्दे पशूनां पतिम्।
वन्दे सूर्यशशांकवह्निनयनं वन्दे मुकुन्दप्रियं,
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शंकरम्॥१॥

शान्तं पद्मासनस्थं शशिधरमुकुटं पंचवक्त्रं त्रिनेत्रं,
शूलं वज्रं च खड्गं परशुमभयदं दक्षिणांगे वहन्तम्।
नागं पाशं च घण्टां डमरुकसहितं चांकुशं वामभागे,
नानालंकारदीप्तं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं नमामि॥२॥

कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्।
सदावसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानीसहितं नमामि॥३॥

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।

लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥४॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्याद्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देव देव॥५॥

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसंवाऽपराधम्।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत् क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे श्री महादेव शम्भो॥६॥

चन्द्रोद्भासितशेखरे स्मरहरे गंगाधरे शंकरे
सर्पैर्भूषितकण्ठकर्णविवरे नेत्रोत्थवैश्वानरे।
दन्तित्वक्कृतसुन्दरांबरधरे त्रैलोक्यसारे हरे
मोक्षार्थं कुरु चित्तवृत्तिमचलामन्यैस्तु किं कर्मभिः॥७॥

॥ इति शिवध्यानावलिः सम्पूर्णा॥

अथ शिवपुष्पांजलिः

हरि ॐ। यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः तानि धर्माणि प्रथमा न्यासन्। ते ह नाकं महिमानः सचन्ते यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥

ॐ राजाधिराजाय प्रसह्य साहिने। नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे। स मे कामान् कामकामाय मह्यं। कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु। कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः॥

ॐ विश्वतक्ष्चक्षुरुत विश्वतो मुखं विश्वतो बाहुरुत विश्वस्तपात्। संबाहुभ्यां धमति सम्पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः॥

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥

नानासुगन्धपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च।
मयाऽहृतानि दिव्यानि गृहाण परमेश्वर॥

॥ इति शिवपुष्पांजलिः सम्पूर्णा॥

बिल्वाष्टकम्

त्रिदलं त्रिगुणाकारं त्रिनेत्रं च त्रियायुधम्।
त्रिजन्मपापसंहारमेकबिल्वं शिवार्पणम्॥१॥

त्रिशाखैर्बिल्वपत्रैश्च ह्यच्छिद्रैः कोमलैः शुभैः
शिवपूजां करिष्यामि ह्येकबिल्वं शिवार्पणम्॥२॥

अखण्डबिल्वपत्रेण पूजिते नन्दिकेश्वरे।
शुद्ध्यन्ति सर्वपापेभ्यो ह्येकबिल्वं शिवार्पणम्॥३॥

शालिग्रामशिलामेकां विप्राणां जातु अर्पयेत्।
सोमयज्ञमहापुण्यमेकबिल्वं शिवार्पणम्॥४॥

दन्तिकोटिसहस्राणि वाजपेयशतानि च।
कोटिकन्यामहादानमेकबिल्वं शिवार्पणम्॥५॥

लक्ष्म्याः स्तनत उत्पन्नं महादेवस्य च प्रियम्।
बिल्ववृक्षं प्रयच्छामि ह्येकबिल्वं शिवार्पणम्॥६॥

दर्शनं बिल्ववृक्षस्य स्पर्शनं पापनाशनम्।
अघोरपापसंहारमेकबिल्वं शिवार्पणम्॥७॥

मूलतो ब्रह्मरूपाय मध्यतो विष्णुरूपिणे।
अग्रतः शिवरूपाय ह्येकबिल्वं शिवार्पणम्॥८॥

बिल्वाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकमवाप्नुयात्॥९॥

॥ इति बिल्वाष्टकं सम्पूर्णम्॥

शिवमहिम्नः स्तोत्रम्

ॐ श्रीगणेशाय नमः।

हरि ॐ गजाननं भूतगणाधिसेवितं
कपित्थजम्बूफलसारभक्षणम्।
उमासुतं शोकविनाशकारणं
नमामि विघ्नेश्वरपादपंकजम्॥

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः।
अथाऽवाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममाप्येषः स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः ॥१॥

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
रतद्व्यावृत्या यं चकितमभिदत्ते श्रुतिरपि
स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः॥२॥

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत-
स्तव ब्रह्मन् किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम्।
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन्पुरमथन बुद्धिर्व्यवसिता॥३॥

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्
त्रयीवस्तु व्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु।
अभव्यानामस्मिन्वरद रमणीयामरमणीं
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः॥४॥

किमीहः किं कायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः
कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः ॥५॥

अजन्मानो लोका: किमवयववन्तोऽपि जगता-
मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति।
अनीशो वा कुर्याद्भुवनजनने क: परिकरो:
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे ॥६॥

त्रयी सांख्यं योग: पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमद: पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥७॥

महोक्ष: खट्वांगं परशुरनिजं भस्म फणिन:
कपालं चेतीयत्तव वरद तन्त्रोपकरणम्।
सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद्भ्रूप्रणिहितां
न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥८॥

ध्रुवं कश्चित्सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यंस्तविषये।
समस्तेऽप्येतस्मिपुरमथन तैर्विस्मित इव
स्तुवंजिह्वेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरत: ॥९॥

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरिंचिर्हरिरध:
परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कन्धवपुष: ।
ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश यत्
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ॥१०॥

अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं
दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान्।
शिर:पद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबले:
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम् ॥११॥

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनं
बलात्कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयत: ॥
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलितांगुष्ठशिरसि
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद्ध्रुवमुपचितो मुह्यति खल: ॥१२॥

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सती-
मधश्चक्रे बाण: परिजनविधेयस्त्रिभुवन:।
न तच्चित्रं तस्मिन्वरिवसितरि त्वच्चरणयो-
र्न कस्या उन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनति:॥१३॥

अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपा-
विधेयस्यासीद्यस्त्रिनयन विषं संहृतवत:।
स कल्माष: कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभंगव्यसनिन:॥१४॥

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखा:।
स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत्-
स्मर: स्मर्तव्यात्मा न हि वशिषु पथ्य: परिभव:॥१५॥

मही पादाघाताद्व्रजति सहसा संशयपदं
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम्।
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता॥१६॥

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचि:
प्रवाहो वारां य: पृषतलघुदृष्ट: शिरसि ते।
जगद्द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपु:॥१७॥

रथ: क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथांगे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणि: शर इति।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयै: क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्रा: प्रभुधिय:॥१८॥

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम्।
गतो भक्त्युद्रेक: परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम्॥१९॥

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते।
अतस्त्वां संप्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं
श्रुतौ श्रद्धां बद्धवा दृढपरिकर: कर्मसु जन: ॥२०॥

क्रियादक्षो दक्ष: क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता-
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्या: सुरगणा:।
क्रतुभ्रंशस्त्वत्त: क्रतुफलविधानव्यसनिनो
ध्रुवं कर्तु: श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखा: ॥२१॥

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा।
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभस: ॥२२॥

स्वलावण्याशंसा धृतधनुषमह्नाय तृणवत्
पुर: प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि।
यदि स्त्रैणं दैवी यमनिरत देहार्धघटना-
दवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतय: ॥२३॥

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचा: सहचरा-
श्चिताभस्मालेप: स्रगपि नृकरोटीपरिकर:।
अमंगल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथापिस्मर्तृणां वरद परमं मंगलमसि॥२४॥

मन: प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुत:
प्रहृष्यद्रोमाण: प्रमदसलिलोत्संगितदृश:।
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्यामृतमये
दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान्॥ २५॥

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरं
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि॥ २६॥

त्रयीं तिस्रो वृत्तींस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरान्-
अकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभि:
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम्॥२७॥

भव: शर्वो रुद्र: पशुपतिरथोग्र: सहमहां-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम्।
अमुष्मिन्प्रत्येकं प्रविरचति देव श्रुतिरपि।
प्रियायास्मै धाम्ने प्रणिहितनमस्योऽस्मि भवते॥२८॥

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो
नम: क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नम:।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो
नम: सर्वस्मै ते तदिदमिति सर्वाय च नम:॥२९॥

बहुलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नम:
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नम: ।
जनसुखकृते सत्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नम:
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नम:॥३०॥

कृशपरिणति चेत: क्लेशवश्यं क्व चेदं
क्व च तव गुणसीमोल्लंघिनी शश्वदृद्धि:।
इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधाद्-
वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम्॥३१॥

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥३२॥

असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले-
र्ग्रथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य।
सकलगणवरिष्ठ: पुष्पदन्ताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तै: स्तोत्रमेतच्चकार॥३३॥

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः ।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथाऽत्र
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान् कीर्तिमांश्च ॥३४॥

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानं यागादिकाः क्रियाः ।
महिम्नःस्तवपाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३५॥

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्य गन्धर्वभाषितं ।
अनौपम्यं मनोहारि शिवमीश्वरवर्णनम् ॥३६॥

महेशान्नपरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः ।
अघोरान्नपरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥३७॥

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः
शशिधरवरमौलेर्देवदेवस्य दासः ।
स खलु निज महिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात्-
स्तवनमिदमकार्षीद्दिव्यदिव्यं महिम्नः ॥३८॥

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं
पठति यदि मनुष्यः प्रांजलिर्नान्य चेताः ।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ॥३९॥

श्रीपुष्पदन्तमुखपंकजनिर्गतेन
स्तोत्रेण किल्बिषहरेण हरप्रियेण ।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ॥४०॥

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छंकरपादयोः ।
अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः ॥४१॥
यदस्तं पदं भ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर ॥४२॥

॥ इति श्रीपुष्पदन्ताचार्यविरचितं शिवमहिम्नःस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

अथ शिवस्तुति:

ॐ महादेव शिव शंकर शम्भो उमाकान्त हर त्रिपुरारे
मृत्युंजय वृषभध्वज शूलिन् गंगाधर मृड मदनारे।
हर शिव शंकर गौरीशं वन्दे गंगाधरमीशं
रुद्रं पशुपतिमीशानं कलये काशीपुरिनाथम्॥१॥

जय शम्भो जय शम्भो शिव गौरीशंकर जय शम्भो।
जय शम्भो जय शम्भो शिव गौरीशंकर जय शम्भो॥२॥

ॐ नम: पार्वतीपतये हर हर महादेव॥

वेदसार–शिवस्तव:

पशूनां पतिं पापनाशं परेशं
गजेन्द्रस्य कृत्तिं वसानं वरेण्यम्।
जटाजूटमध्ये स्फुरद्गांगवारिं
महादेवमेकं स्मरामि स्मरारिम्॥१॥

महेशं सुरेशं सुरारार्तिनाशं
विभुं विश्वनाथं विभूत्यंगभूषम्।
विरूपाक्षमिन्द्वर्कवह्नित्रिनेत्रं
सदानन्दमीडे प्रभुं पंचवक्त्रम्॥२॥

गिरीशं गणेशं गले नीलवर्णं
गवेन्द्राधिरूढं गुणातीतरूपम्।
भवं भास्वरं भस्मना भूषितांगं
भवानीकलत्रं भजे पंचवक्त्रम्॥३॥

शिवाकान्त शम्भो शशांकार्धमौले
महेशान शूलिन् जटाजूटधारिन्।
त्वमेको जगद्व्यापको विश्वरूप
प्रसीद प्रसीद प्रभो पूर्णरूप॥४॥

परात्मानमेकं जगद्बीजमाद्यं
निरीहं निराकारमोंकारवेद्यं

यतो जायते पाल्यते येन विश्वं
तमीशं भजे लीयते यत्र विश्वम्॥५॥

न भूमिर्न चापो न वह्निर्न वायु-
र्न चाकाशमास्ते न तन्द्रा न निद्रा।
न ग्रीष्मो न शीतं न देशो न वेषो
न यस्यास्ति मूर्तिस्त्रिमूर्तिं तमीडे॥६॥

अजं शाश्वतं कारणं कारणानां
शिवं केवलं भासकं भासकानाम्।
तुरीयं तमःपारमाद्यन्तहीनं
प्रपद्ये परं पावनं द्वैतहीनम्॥७॥

नमस्ते नमस्ते विभो विश्वमूर्ते
नमस्ते नमस्ते चिदानन्दमूर्ते।
नमस्ते नमस्ते तपोयोगगम्य
नमस्ते नमस्ते श्रुतिज्ञानगम्य॥८॥

प्रभो शूलपाणे विभो विश्वनाथ
महादेव शम्भो महेश त्रिनेत्र।
शिवाकान्त शान्त स्मरारे पुरारे
त्वदन्यो वरेण्यो न मान्यो न गण्यः॥९॥

शम्भो महेश करुणामय शूलपाणे
गौरीपते पशुपते पशुपाशनाशिन्।
काशीपते करुणया जगदेतदेक-
स्त्वं हंसि पासि विदधासि महेश्वरोऽसि॥१०॥

त्वत्तो जगद्भवति देव भव स्मरारे
त्वय्येव तिष्ठति जगन्मृड विश्वनाथ।
त्वय्येव गच्छति लयं जगदेतदीश
लिंगात्मकं हर चराचर विश्वरूपिन्॥११॥

॥ इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं वेदसारशिवस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

श्री शिवमानसपूजा

ॐ श्रीगणेशाय नम:

रत्नैः कल्पितमासनं हिमजलैः स्नानं च दिव्याम्बरम्।
नानारत्नविभूषितं मृगमदामोदांकित चन्दनम्।
जातीचम्पकबिल्वपत्ररचितं पुष्पं च धूपं तथा।
दीपं देव दयानिधे पशुपते हृत्कल्पितं गृह्यताम्॥१॥

सौवर्णे मणिखण्डरत्नरचिते पात्रे घृतं पायसम्।
भक्ष्यं पंचविधं पयोदधियुतं रम्भाफलं पानकम्।
शाकानामयुतं जलं रुचिकरं कर्पूरखण्डोज्ज्वलम्।
ताम्बूलं मनसा मया विरचितं भक्त्या प्रभो स्वीकुरु॥२॥

छत्रं चामरयोर्युगं व्यजनकं चादर्शकं निर्मलम्।
वीणा भेरिमृदंगकाहलकलागीतं च नृत्यं तथा।
साष्टांगं प्रणतिः स्तुतिर्बहुविधा ह्येतत्समस्तं मया।
संकल्पेन समर्पितं तव विभो पूजां गृहाण प्रभो ॥३॥

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहम्।
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः।
संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो।
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥४॥

इत्येवं हरपूजनं प्रतिदिनं यो वा त्रिसन्ध्यं पठेत्।
सेवाश्लोकचतुष्टयं प्रतिदिनं पूजा हरेर्मानसि।
सोयं सौख्यमवाप्नुयाद् द्युतिधरं साक्षाद्हरेर्दर्शनम्।
व्यासस्तेन महावसानसमये कैलासलोकं गतः॥५॥

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा।
श्रवणनयनजं वा मानसं वापराधम्।
विहितमहितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व।
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो॥६॥

॥ इति श्रीशिवमानसपूजा समाप्तम्॥

॥ रुद्रं चमकं च॥

ॐ अस्य श्रीरुद्राध्यायप्रश्नमहामन्त्रस्य, अघोर ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, संकर्षणमूर्तिस्वरूपो योऽसावादित्यः, परमपुरुषः स एष रुद्रो देवता। नमः शिवायेति बीजम्। शिवतरायेति शक्तिः। महादेवायेति कीलकम् । श्रीसाम्बसदाशिवप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ॥

ॐ अग्निहोत्रात्मने अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ दर्शपूर्णमासात्मने तर्जनीभ्यां नमः । ॐ चातुर्मास्यात्मने मध्यमाभ्यां नमः । ॐ निरूढपशुबन्धात्मने अनामिकाभ्यां नमः । ॐ ज्योतिष्टोमात्मने कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ सर्वक्रत्वात्मने करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

ॐ अग्निहोत्रात्मने हृदयाय नमः। ॐ दर्शपूर्णमासात्मने शिरसे स्वाहा । ॐ चातुर्मास्यात्मने शिखायै वषट् । ॐ निरूढपशुबन्धात्मने कवचाय हुं । ॐ ज्योतिष्टोमात्मने नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ सर्वक्रत्वात्मने अस्त्राय फट् । भूर्भुवस्सुवरोमिति दिग्बन्धः॥

ध्यानम्—

आपाताळनभःस्थलान्तभुवनब्रह्माण्डमाविस्फुर-
ज्ज्योतिःस्फाटिकलिङ्गमौळिविलसत्पूर्णेन्दुवान्तामृतैः ।
अस्तोकाप्लुतमेकमीशमनिशं रुद्रानुवाकाञ्जपन्
ध्यायेदीप्सितसिद्धये ध्रुवपदं विप्रोऽभिषिञ्चेच्छिवम् ॥

ब्रह्माण्डव्याप्तदेहा भसितहिमरुचा भासमाना भुजङ्गैः
कण्ठेकालाः कपर्दा कलितशशिकलाश्चण्डकोदण्डहस्ताः ।
त्र्यक्षा रुद्राक्षमालाप्रकटितविभवाः शाम्भवा मूर्तिभेदाः
रुद्राः श्रीरुद्रसूक्तप्रकटितविभवा नः प्रयच्छन्तु सौख्यम् ॥

ॐ गणानां त्वा गणपतिँ हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् । ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आनःश्रुण्वन्नूतिभिस्सीदसादनम् ॥ ॐ श्रीमहागणाधिपतये नमः ॥

शं च मे मयश्च मे प्रियं च मेऽनुकामश्च मे कामश्च मे सौमनसश्च मे भद्रं च मे श्रेयश्च मे वस्यश्च मे यशश्च मे भगश्च मे द्रविणं च मे यन्ता च मे धर्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे विश्वं च ॥१॥ मे महश्च मे सँविश्च मे ज्ञात्रं च मे सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे लयश्च म ऋतं च मेऽमृतं च मेऽयक्ष्मं च मेऽनामयच्च मे जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं च मेऽनमित्रं च मेऽभयं च मे सुगं च मे शयनं च मे सूषा च मे सुदिनं च मे ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

॥ श्रीरुद्रप्रश्नः ॥

प्रथमोऽनुवाकः

ॐ नमो भगवते रुद्राय ॥

ॐ नमस्ते रुद्र मन्यव उतोत इषवे नमः । नमस्ते अस्तु धन्वने बाहुभ्यामुत ते नमः । या त इषुः शिवतमा शिवं बभूव ते धनुः । शिवा शरव्या या तव तया नो रुद्र मृडय । या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी । तया नस्तनुवा शन्तमया गिरिशंताभिचाकशीहि । यामिषुं गिरिशंत हस्ते ॥१॥ बिभर्ष्यस्तवे । शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिँ्सीः पुरुषं जगत् । शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छावदामसि । यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मँ् सुमना असत् । अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक् । अहीँ्श्च सर्वाञ्जभयन्त्सर्वाश्च या तु धान्यः । असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः । ये चे माँ् रुद्रा अभितो दिक्षु ॥२॥ श्रिताः सहस्रशोऽवैषाँ् हेड ईमहे । असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः । उतैनं गोपा अदृशन्नदृशन्नुदहार्यः । उतैनं विश्वाभूतानि स दृष्टो मृडयाति नः । नमो अस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे । अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरन्नमः । प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्नियोर्ज्याम् । याश्चते हस्त इषवः ॥३॥ परा ता भगवो वप । अवतत्य धनुस्त्वँ्सहस्राक्ष शतेषुधे । निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव । विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ्उत । अनेशन्नस्येषव आभुरस्य निषङ्गतिः । या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः । तयाऽस्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परिब्भुज । नमस्ते अस्त्वायुधायानातताय धृष्णवे । उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने । परिते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः अथो य इषुधिस्तवारे अस्मन्निधेहि तम् ॥४॥ शम्भवे नमः ॥

नमस्ते अस्तु भगवन्विश्वेश्वराय महादेवाय त्र्यम्बकाय त्रिपुरान्तकाय त्रिकालाग्निकालाय कालाग्निरुद्राय नीलकण्ठाय मृत्युंजयाय सर्वेश्वराय सदाशिवाय श्रीमन्महादेवाय नमः ।

द्वितीयोऽनुवाकः ॥

नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमो नमो वृक्ष्येभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये नमो नमः सस्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनां पतये नमो नमो बभ्लुशाय विव्याधिनेऽन्नानां पतये नमो नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानां पतये नमो नमो भवस्य हेत्यै जगतां पतये नमो

नमो रुद्रायाततताविने क्षेत्राणां पतये नमो नमः सूतायाहन्त्याय वनानां पतये नमो नमः ॥५॥ रोहिताय स्थपतये वृक्षाणां पतये नमो नमो मन्त्रिणे वाणिजाय कक्षाणां पतये नमो नमो भुवंतये वारिवस्कृतायौषधीनां पतये नमो नम उच्चैर्घोषायाक्रन्दयते पत्तीनां पतये नमो नमः कृत्स्नवीताय धावते सत्त्वनां पतये नमः ॥६॥

तृतीयोऽनुवाकः

नमः सहमानाय निव्याधिन आव्याधिनीनां पतये नमो नमः ककुभाय निषङ्गिणे स्तेनानां पतये नमो नमो निषङ्गिण इषुधिमते तस्कराणां पतये नमो नमो वञ्चते परिवञ्चते स्तायूनां पतये नमो नमो निचेरवे परिचरायारण्यानां पतये नमो नमः सृकाविभ्यो जिघाँ सद्भ्यो मुष्णतां पतये नमो नमोऽसिमद्भ्यो नक्तंचरद्भ्यः प्रकृन्तानां पतये नमो नम उष्णीषिणे गिरिचराय कुलुञ्चानां पतये नमो नमः ॥७॥ इषुमद्भ्यो धन्वाविभ्यश्च वो नमो नम आतन्वानेभ्यः प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमो नम आयच्छद्भ्यो विसृजद्भ्यश्च वो नमो नम आसीनेभ्यः शयानेभ्यश्च वो नमो नमः स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यश्च वो नमो नमस्तिष्ठद्भ्यो धावद्भ्यश्च वो नमो नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमो नमो अश्वेभ्योऽश्वपतिभ्यश्च वो नमो नमः ॥८॥

चतुर्थोऽनुवाकः ॥

नम आव्याधिनीभ्यो विविध्यन्तीभ्यश्च वो नमो नम उगणाभ्यस्तृँहतीभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्यः क्षुल्लकेभ्यश्च वो नमो नमो रथिभ्योऽरथेभ्यश्च वो नमो नमो रथेभ्यः ॥९॥ रथपतिभ्यश्च वो नमो नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो नमः क्षतृभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमस्तक्षभ्योरथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कमरिभ्यश्च वो नमो नमः पुञ्जिष्टेभ्यो निषादेभ्यश्च वो नमो नम इषुकृद्भ्यो धन्वकृद्भ्यश्च वो नमो नमो मृगयुभ्यः श्वनिभ्यश्च वो नमो नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमः ॥१०॥

पञ्चमोऽनुवाकः ॥

नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशाय च

शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च संवृध्वने च ॥११॥ नमो अग्रियाय च प्रथमाय च नम आशवे चाजिराय च नमः शीघ्रियाय च शीभ्याय च नम ऊर्म्याय चावस्वन्याय च नमः स्रोतस्याय च द्वीप्याय च ॥१२॥

षष्ठोऽनुवाकः ॥

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्नियाय च नमः सोभ्याय च प्रतिसर्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय च नम उर्वर्याय च खल्याय च नमः श्लोक्याय चावसान्याय च नमो वन्याय च कक्ष्याय च नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च ॥१३॥ नम आशुषेणाय चाशुरथाय च नमः शूराय चावभिन्दते च नमो वर्मिणे च वरूथिने च नमो बिल्मिने च कवचिने च नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च ॥१४॥

सप्तमोऽनुवाकः ॥

नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च नमो दूताय च प्रहिताय च नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते च नमस्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च नमः स्वायुधाय च सुधन्वने च नमः स्तुत्याय च पथ्याय च नमः काट्याय च नीप्याय च नमः सूद्याय च सरस्याय च नमो नाद्याय च वैशन्ताय च ॥१५॥ नमः कूप्याय चावट्याय च नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च नमो मेघ्याय च विद्युत्याय च नम ईध्रियाय चातप्याय च नमो वात्याय च रेष्मियाय च नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च ॥१६॥

अष्टमोऽनुवाकः ॥

नमः सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च नमः शङ्गाय च पशुपतये च नम उग्राय च भीमाय च नमो अग्रेवधाय च दूरेवधाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय नमश्शंभवे च मयोभवे च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥१७॥ नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नम आतार्याय चालाध्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च ॥१८॥

नवमोऽनुवाकः ॥

नम इरिण्याय च प्रपथ्याय च नमः कि ँ् शिलाय च क्षयणाय च नमः कपर्दिने च पुलस्तये च नमो गोष्ठ्याय च गृह्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च नमो हृदय्याय च निवेष्प्याय च नमः पा ँ् सव्याय च रजस्याय च नमः शुष्क्याय च हरित्याय च नमो लोप्याय चोलप्याय च ॥१९॥ नम ऊर्व्याय च सूर्म्याय च नमः पर्ण्याय च पर्णशद्याय च नमोऽपगुरमाणाय चाभिघ्नते च नम आख्खिदते च प्रख्खिदते च नमो वः किरिकेभ्यो देवाना ँ् हृदयेभ्यो नमो विक्षीणकेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नम आनिर्हतेभ्यो नम आमीवत्केभ्यः ॥२०॥

दशमोऽनुवाकः ॥

द्रापे अन्धसस्पते दरिद्रन्नीललोहित । एषां पुरुषाणामेषां पशूनां मा भेर्माऽरो मो एषां किं चनाममत् । या ते रुद्र शिवा तनूश्शिवा विश्वाहभेषजी । शिवा रुद्रस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे ॥ इमा ँ् रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतिम् । यथा नः शमसद्द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन् ॥२१॥ अनातुरम् । मृडा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते । यच्छं च योश्च मनुरायजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतौ । मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् । मा नोऽवधीः पितरं मोत मातरं प्रिया मा नस्तनुवः ॥२२॥ रुद्ररीरिषः । मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मानो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः । वीरान्मा नो रुद्र भामितोऽवधीर्हविष्मन्तो नमसा विधेम ते। आरात्ते गोघ्न उत पूरुषघ्ने क्षयद्वीराय सुम्नमस्मे ते अस्तु । रक्षा च नो अधि च देव ब्रूह्यथा च नः शर्म यच्छद्विबर्हाः। स्तुहि ॥२३॥ श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगन्न भीममुपहत्नुमुग्रम् । मृडा जरित्रे रुद्र स्तवानो अन्यन्ते अस्मन्निवपन्तु सेनाः । परिणो रुद्रस्य हेतुर्वृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्मतिरघायोः। अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृडय । मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव। परमे वृक्ष आयुधन्निधाय कृत्तिं वसान आचर पिनाकम् ॥२४॥ बिभ्रदागहि । विकिरिद विलोहित नमस्ते अस्तु भगवः। यास्ते सहस्र ँ् हेतयोन्यमस्मन्निवपन्तु ताः । सहस्राणि सहस्रधा बाहुवोस्तव हेतयः । तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि ॥२५॥

एकादशोऽनुवाक: ॥

सहस्राणि सहस्रशो ये रुद्रा अधि भूम्याम् । तेषाँ्ँ सहस्रयोजनेऽवधन्वानि तन्मसि । अस्मिन् महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवा अधि । नीलग्रीवाश्शितिकण्ठाः शर्वा अधः क्षमाचराः । नीलग्रीवाश्शितिकण्ठा दिवँ्ँ रुद्रा उपश्रिताः । ये वृक्षेषु सस्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः । ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः । ये अन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् । ये पथां पथिरक्षय ऐलबृदा यव्युधः । ये तीर्थानि ॥२६॥ प्रचरन्ति सृकावन्तो निषङ्गिणः। य एतावन्तश्च भूयाँ्ँसश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे । तेषाँ्ँ सहस्रयोजनेऽवधन्वानि तन्मसि । नमो रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येऽन्तरिक्षे ये दिवि येषामन्नं वातो वर्षमिषवस्तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वास्तेभ्यो नमस्ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तं वो जम्भे दधामि ॥२७॥

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् । यो रुद्रो अग्नौ यो अप्सु य ओषधीषु यो रुद्रो विश्वा भुवनाविवेश तस्मै रुद्राय नमो अस्तु । तमु ष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा यो विश्वस्य क्षयति भेषजस्य । यक्ष्वामहे सौ मनसाय रुद्रं नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य । अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः । अयं मे विश्वभेषजोऽयँ्ँ शिवाभिमर्शनः । ये ते सहस्रमयुतं पाशा मृत्यो मर्त्याय हन्तवे । तान्यज्ञस्य मायया सर्वानव यजामहे । मृत्यवे स्वाहा मृत्यवे स्वाहाँ । ॐ नमो भगवते रुद्राय विष्णवे मृत्युर्मे पाहि । प्राणानां ग्रन्थिरसि रुद्रो मा विशान्तकः । तेनान्नेनाप्यायस्व ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

॥ चमकम् ॥

प्रथमोऽनुवाकः ॥

ॐ अग्नाविष्णू सजोषसेमा वर्धन्तु वां गिरः। द्युम्नैर्वाजेभिरागतम्। वाजश्च मे प्रसवश्च मे प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च मे धीतिश्च मे क्रतुश्च मे स्वरश्च मे श्लोकश्च मे श्रावश्च मे श्रुतिश्च मे ज्योतिश्च मे सुवश्च मे प्राणश्च मेऽपानः ॥१॥ च मे व्यानश्च मेऽसुश्च मे चित्तं च म आधीतं च मे वाक्च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे बलं च म ओजश्च मे सहश्च म आयुश्च मे जरा च म आत्मा च मे तनूश्च मे शर्म च मे वर्म च मेऽङ्गानि च मेऽस्थानि च मे परूँ षि च मे शरीराणि च मे ॥२॥

द्वितीयोऽनुवाकः ॥

ज्यैष्ठ्यं च म आधिपत्यं च मे मन्युश्च मे भामश्च मेऽमश्च मेऽम्भश्च मे जेमा च मे महिमा च मे वरिमा च मे प्रथिमा च मे वर्ष्मा च मे द्राघुया च मे वृद्धं च मे वृद्धिश्च मे सत्यं च मे श्रद्धा च मे जगच्च ॥३॥ मे धनं च मे वशश्च मे त्विषिश्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे जातं च मे जनिष्यमाणं च मे सूक्तं च मे सुकृतं च मे वित्तं च मे वेद्यं च मे भूतं च मे भविष्यच्च मे सुगं च मे सुपथं च म ऋद्धं च म ऋद्धिश्च मे क्लृप्तं च मे क्लृप्तिश्च मे मतिश्च मे सुमतिश्च मे ॥४॥

तृतीयोऽनुवाकः ॥

शं च मे मयश्च मे प्रियं च मेऽनुकामश्च मे कामश्च मे सौमनसश्च मे भद्रं च मे श्रेयश्च मे वस्यश्च मे यशश्च मे भगश्च मे द्रविणं च मे यन्ता च मे धर्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे विश्वं च ॥५॥ मे महश्च मे सँविश्च मे ज्ञात्रं च मे सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे लयश्च म ऋतं च मेऽमृतं च मेऽयक्ष्मं च मेऽनामयच्च मे जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं च मेऽनमित्रं च मेऽभयं च मे सुगं च मे शयनं च मे सूषा च मे सुदिनं च मे ॥६॥

चतुर्थोऽनुवाक: ॥

ऊर्क्च मे सूनृता च मे पयश्च मे रसश्च मे घृतं च मे मधु च मे सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रं च म औद्भिद्यं च मे रयिश्च मे रायश्च मे पुष्टं च मे पुष्टिश्च मे विभु च ॥७॥ मे प्रभु च मे बहु च मे भूयश्च मे पूर्णं च मे पूर्णतरं च मेऽक्षितिश्च मे कूयवाश्च मेऽन्नं च मेऽक्षुच्च मे व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे गोधूमाश्च मे मसुराश्च मे प्रियंगवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे ॥८॥

पञ्चमोऽनुवाक: ॥

अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च मेऽयश्च मे सीसं च मे त्रपुश्च मे श्यामं च मे लोहं च मेऽग्निश्च म आपश्च मे वीरुधश्च म ओषधयश्च मे कृष्टपच्यं च ॥९॥ मेऽकृष्टपच्यं च मे ग्राम्याश्च मे पशव आरण्याश्च यज्ञेन कल्पन्तां वित्तं च मे वित्तिश्च मे भूतं च मे भूतिश्च मे वसु च मे वसतिश्च मे कर्म च मे शक्तिश्च मेऽर्थश्च म एमश्च म इतिश्च मे गतिश्च मे ॥१०॥

षष्ठोऽनुवाक: ॥

अग्निश्च म इन्द्रश्च मे सोमश्च म इन्द्रश्च मे सविता च म इन्द्रश्च मे सरस्वती च म इन्द्रश्च मे पूषा च म इन्द्रश्च मे बृहस्पतिश्च म इन्द्रश्च मे मित्रश्च म इन्द्रश्च मे वरुणश्च म इन्द्रश्च मे त्वष्टा च ॥११॥ म इन्द्रश्च मे धाता च म इन्द्रश्च मे विष्णुश्च म इन्द्रश्च मेऽश्विनौ च म इन्द्रश्च मे मरुतश्च म इन्द्रश्च मे विश्वे च मे देवा इन्द्रश्च मे पृथिवी च म इन्द्रश्च मेऽन्तरिक्षं च म इन्द्रश्च मे द्यौश्च म इन्द्रश्च मे दिशश्च म इन्द्रश्च मे मूर्धा च म इन्द्रश्च मे प्रजापतिश्च म इन्द्रश्च मे ॥१२॥

सप्तमोऽनुवाक: ॥

अँ्शुश्च मे रश्मिश्च मेऽदाभ्यश्च मेऽधिपतिश्च म उपाँ्शुश्च मेऽन्तर्यामश्च म ऐन्द्रवायवश्च मे मैत्रावरुणश्च म आश्विनश्च मे प्रतिप्रस्थानश्च मे शुक्रश्च मे मन्थी च म आग्रयणश्च मे वैश्वदेवश्च मे ध्रुवश्च मे वैश्वानरश्च म ऋतुग्रहाश्च ॥१३॥ मेऽतिग्रह्याश्च म ऐन्द्राग्नश्च मे वैश्वदेवश्च मे मरुत्वतीयाश्च मे माहेन्द्रश्च म आदित्यश्च मे सावित्रश्च मे सारस्वतश्च मे पौष्णश्च मे पात्नीवतश्च मे हारियोजनश्च मे ॥१४॥

अष्टमोऽनुवाकः ॥

इध्मश्च मे बर्हिश्च मे वेदिश्च मे धिष्णियाश्च मे स्रुचश्च मे चमसाश्च मे ग्रावाणश्च मे स्वरवश्च म उपरवाश्च मेऽधिषवणे च मे द्रोणकलशश्च मे वायव्यानि च मे पूतभृच्च म आधवनीयश्च म आग्नीध्रं च मे हविर्धानं च मे गृहाश्च मे सदश्च मे पुरोडाशाश्च मे पचताश्च मेऽवभृथश्च मे स्वगाकारश्च मे ॥१५॥

नवमोऽनुवाकः ॥

अग्निश्च मे घर्मश्च मेऽर्कश्च मे सूर्यश्च मे प्राणश्च मेऽश्वमेधश्च मे पृथिवी च मेऽदितिश्च मे दितिश्च मे द्यौश्च मे शक्वरीरङ्गुलयो दिशश्च मे यज्ञेन कल्पन्तामृक्च मे साम च मे स्तोमश्च मे यजुश्च मे दीक्षा च मे तपश्च म ऋतुश्च मे व्रतं च मेऽहोरात्रयोर्वृष्ट्या बृहद्रन्थरे च मे यज्ञेन कल्पेताम् ॥१६॥

दशमोऽनुवाकः ॥

गर्भाश्च मे वत्साश्च मे त्यविश्च मे त्र्यवी च मे दित्यवाट् च मे दित्यौही मे पञ्चाविश्च मे पञ्चावी च मे त्रिवत्सश्च मे त्रिवत्सा च मे तुर्यवाट् च मे तुर्यौही च मे पष्ठवाट् च मे पष्ठौही च म उक्षा च मे वशा च म ऋषभश्च ॥१७॥ मे वेहच्च मेऽनड्वाश्च मे धेनुश्च म आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतामपानो यज्ञेन कल्पतां व्यानो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पता्ँ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् ॥१८॥

एकादशोऽनुवाकः ॥

एका च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे सप्त च मे नव च म एकादश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे नवदश च म एकवि्ँ शतिश्च मे त्रयोवि्ँ शतिश्च मे पञ्चवि्ँ शतिश्च मे सप्तवि्ँ शतिश्च मे नववि्ँ शतिश्च म एकत्रि्ँ शच्च मे त्रयस्त्रि्ँ शच्च मे चतस्रश्च ॥१९॥ मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे षोडश च मे वि्ँ शतिश्च मे चतुर्वि्ँ शतिश्च मेऽष्टावि्ँ शतिश्च मे द्वात्रि्ँ शच्च मे षट्त्रि्ँ शच्च मे चत्वारि्ँ शश्च मे चतुश्चत्वारि्ँ शश्च मेऽष्टाचत्वारि्ँ शश्च मे वाजश्च प्रसवश्चापिजश्च क्रतुश्च सुवश्च मूर्धा च व्यश्नियश्चान्त्यायनश्चान्त्यश्च भौवनश्च भुवनश्चाधिपतिश्च ॥१०॥

इडा देवहूर्मनुर्यज्ञनीर्बृहस्पतिरुक्थामदा निश ँ् सिषद्विश्वे देवाः सूक्तवाचःपृथिवि मातर्मा मा हि ँ् सीर्मधु मनिष्ये मधु जनिष्ये मधु वक्ष्यामि मधु वदिष्यामि मधुमतीं देवेभ्यो वाचमुद्यास ँ् शुश्रूषेण्यां मनुष्येभ्यस्तं मा देवा अवन्तु शोभायै पितरोऽनुमदन्तु ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ भवाय देवाय नमः । ॐ भवस्य देवस्य पत्नै नमः ।

ॐ शर्वाय देवाय नमः । ॐ शर्वस्य देवस्य पत्नै नमः ।

ॐ ईशानाय देवाय नमः । ॐ ईशानस्य देवस्य पत्नै नमः ।

ॐ पशुपतये देवाय नमः । ॐ पशुपतेर्देवस्य पत्नै नमः ।

ॐ रुद्राय देवाय नमः । ॐ रुद्रस्य देवस्य पत्नै नमः ।

ॐ उग्राय देवाय नमः । ॐ उग्रस्य देवस्य पत्नै नमः ।

ॐ भीमाय देवाय नमः । ॐ भीमस्य देवस्य पत्नै नमः ।

ॐ महते देवाय नमः । ॐ महतोर्देवस्य पत्नै नमः ।

ॐ निधनपतये नमः । ॐ निधनपतान्तिकाय नमः ।

ॐ ऊर्ध्वाय नमः । ॐ ऊर्ध्वलिङ्गाय नमः ।

ॐ हिरण्याय नमः । ॐ हिरण्यलिङ्गाय नमः ।

ॐ सुवर्णाय नमः । ॐ सुवर्णलिङ्गाय नमः ।

ॐ दिव्याय नमः । ॐ दिव्यलिङ्गाय नमः ।

ॐ भवाय नमः । ॐ भवलिङ्गाय नमः ।

ॐ शर्वाय नमः । ॐ शर्वलिङ्गाय नमः ।

ॐ शिवाय नमः । ॐ शिवलिङ्गाय नमः ।

ॐ ज्वलाय नमः । ॐ ज्वललिङ्गाय नमः ।

ॐ आत्माय नमः । ॐ आत्मलिङ्गाय नमः ।

ॐ परमाय नमः । ॐ परमलिङ्गाय नमः ।

एतत् सोमस्य सूर्यस्य सर्वलिङ्ग ँ् स्थापयति पाणिमन्त्रं पवित्रम् ॥

हरिः ॐ सद्यो जातं प्रपद्यामि सद्यो जाताय वै नमो नमः । भवे भवे नाति भवे भवस्य मां भवोद्भवाय नमः । वामदेवाय नमो, ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो, रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः ॥

अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः ।
सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि ।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥

ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदा शिवोम्॥

ॐ नमो हिरण्यबाहवे हिरण्यवर्णाय हिरण्यरूपाय हिरण्यपतयेऽम्बिकापतये उमापतये पशुपतये नमो नमः ॥

ॐ तच्छंयोरावृणीमहे । गातुं यज्ञाय। गातुं यज्ञपतये । दैवीस्वस्तिरस्तुनः । स्वस्तिर्मानुषेभ्यः । ऊर्ध्वं जिगातु भेषजम् । शं नो अस्तु द्विपदे । शं चतुष्पदे ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

जगदीश–आरती

ॐ जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे ।
भक्त जनन के सङ्कट, क्षण में दूर करे ॥ ॐ जय...

जो ध्यावे फल पावे, दुख विनसे मन का, स्वामी दुख विनसे मन का ।
सुख सम्पति घर आवे, कष्ट मिटे तन का ॥ ॐ जय...

मातु पिता तुम मेरे, शरण गहूँ किसकी, स्वामी शरण गहूँ किसकी ।
तुम बिन और न दूजा, आस करूँ किसकी ॥ ॐ जय...

तुम पूरण परमात्मा, तुम अन्तर्यामी, स्वामी तुम अन्तर्यामी ।
पारब्रह्म परमेश्वर, तुम सबके स्वामी ॥ ॐ जय...

तुम करुणा के सागर, तुम पालन-कर्ता स्वामी तुम पालन-कर्ता ।
मैं मूरख खल कामी, कृपा करो भर्ता ॥ ॐ जय...

तुम हो एक अगोचर, सबके प्राणपती, स्वामी सबके प्राणपती ।
किस विधि मिलूँ दयामय, तुम से मैं कुमती ॥ ॐ जय...

दीनबन्धु दुखहर्ता, तुम रक्षक मेरे, स्वामी तुम रक्षक मेरे ।
अपने हाथ उठाओ, द्वार पड़ा तेरे ॥ ॐ ज़य...

विषय विकार मिटाओ, पाप हरो देवा, स्वामी पाप हरो देवा ।
श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ, सन्तन की सेवा ॥ ॐ जय...

शिव–आरती

जय शिव ओङ्कारा, हर जय शिव ओङ्कार ।
ब्रह्मा विष्णु सदाशिव अर्धाङ्गी धारा ॥ जय शिव....

एकानन चतुरानन, पञ्चानन राजै, शिव पञ्चानन राजै ।
हंसासन गरुडासन, हंसासन गरुडासन, वृषभासन साजै ॥ जय शिव....

दो भुज चार चतुर्भुज, दशभुज ते सोहै, शिव दशभुज ते सोहै ।
तीनों रूप निरखता, तीनों रूप निरखता, त्रिभुवन जन मोहै । जय शिव...

अक्षमाला वनमाला, रुण्डमालाधारी, शिव रुण्डमालाधारी ।
चन्दनमृगमद चन्दा, चन्दनमृगमद चन्दा, भाले शुभकारी ॥ जय शिव...

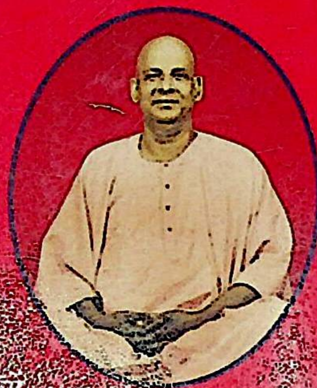
श्वेताम्बर पीताम्बर, बाघम्बर अङ्गे शिव बाघम्बर अङ्गे ।
सनकादिक प्रभुतादिक, सनकादिक प्रभुतादिक, भूतादिक सङ्गे ॥ जय शिव...

कर मध्ये करमण्डल चक्र त्रिशूल धर्ता, शिव चक्र त्रिशूल धर्ता ।
जगकर्ता जगभर्ता, जगकर्ता जगभर्ता, जग का संहर्ता ॥ जय शिव...

ब्रह्मा विष्णु सदाशिव जानत अविवेका, शिव जानत अविवेका ।
प्रणव अक्षरनु मध्ये, प्रणव अक्षरनु मध्ये, ये तीनों एका ॥ जय शिव...

त्रिगुण स्वामी जी की आरती जो कोई नर गावै, शिव जो कोई नर गावै ।
कहत शिवानन्द स्वामी, कहत शिवानन्द स्वामी, मनवाञ्छित फल पावै ॥
जय शिव...





इस पुस्तक के विषय में

भगवान् शिव [illegible] उनकी [illegible]राधना

समस्य जिज्ञासुओं, साधकों [illegible]शेष रूप [illegible]गवान् शिव के भक्तों के लिए यह पुस्तक अत्यधिक बहुमू[illegible] शिक्षाप्रद [illegible] इसमें पन्द्रह अध्याय हैं। शिव-तत्त्व अथवा ईश्वर-साक्षा[illegible] की प्राप्ति [illegible] लिए इसमें व्यावहारिक साधना के लिए पर्याप्त निर्देशन उप[illegible] है। यह इस[illegible] अध्याय स्वयं सिद्ध करते हैं। शिव-ताण्डव, शक्ति-योग तथा शिव-तत्त्व के रहस्यों का निरूपण अत्यन्त सौन्दर्यपूर्ण है। शैव उपनिषदों की प्रस्तुति और भी भव्य रूप से की गयी है। शिवाचार्यों, भक्तों तथा नायनारों की जीवनगाथाएँ अत्यन्त मर्मस्पर्शी हैं। उनके जीवन के अध्ययन से व्यक्ति का जीवन पावन और उदात्त हो सकता है।

इसका दार्शनिक भाग पाठकों के लिए अत्यधिक प्रबोधक तथा सहायक है। पुस्तक में समस्त शैवपुराणों—यथा पेरिय पुराण, लिंग पुराण, शिव पराक्रम और तिरुविलयडाल पुराण इत्यादि का सार निहित है। कतिपय शिव-स्तोत्रों को हिन्दी अनुवाद सहित सम्मिलित कर लेने ने इसके मूल्य में और वृद्धि कर दी है।

पुस्तक अत्यन्त सरल, बोधगम्य और स्पष्ट ढंग से लिखी गयी है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से पर्याप्त महत्त्वपूर्ण होने के कारण समस्त धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्तियों को इसका निश्चित रूप से अध्ययन करना चाहिए ।



द डिवाइन लाइफ सोसायटी पब्लीकेशन

HS 1

Rs. 90/-